भारतीय ज्योतिष का इतिहास

हिन्दी परामर्श समिति ग्रन्थमाला—१

भारतीय ज्योतिष का इतिहास

लेखक

गोरख प्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

रीडर, गणित विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
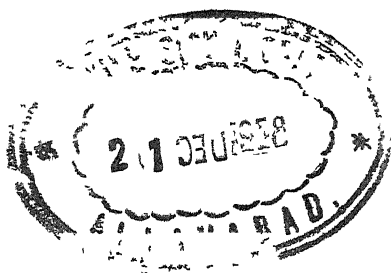
प्रकाशन ब्यूरो

उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ

प्रथम सस्करण
१९५६

मूल्य
चार रुपये

मुद्रक
टेकनिकल प्रेस प्रयाग

प्रकाशकीय

भारत की राजभाषा के रूप मे हिन्दी की प्रतिष्ठा के पश्चात यद्यपि इस देश के प्रत्येक जन पर उसकी समृद्धि का दायित्व है, किन्तु इससे हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रो के विशेष उत्तरदायित्व मे किसी प्रकार की कमी नही आती। हमे सविधान मे निर्धारित अवधि के भीतर हिन्दी को न केवल सभी राज कार्यो मे व्यवहृत करना है, उसे उच्चतम शिक्षा के लिए भी परिपुष्ट बनाना है। इसके लिए अपेक्षा है कि हिन्दी मे वाङमय के सभी अवयवो पर प्रमाणित ग्रन्थ हो और यदि कोई व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से ज्ञानार्जन करना चाहे तो उसका मार्ग अवरुद्ध न रह जाय।

इसी भवना से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश शासन ने अपने शिक्षा विभाग के अन्तर्गत साहित्य को प्रोत्साहन देने और हिन्दी के ग्रन्थो के प्रणयन की एक योजना परिचालित की है। शिक्षा विभाग की अवधानता मे एक हिन्दी परामर्श समिति की स्थापना की गयी है। यह समिति विगत वर्षो मे हिन्दी के ग्रन्थो को पुरस्कृत करके साहित्यकारो का उत्साह बढाती रही है और अब इसने पुस्तक प्रणयन का कार्य आरम्भ किया है।

समिति ने वाङमय के सभी अगो के सम्बन्ध मे पुस्तको का लेखन और प्रकाशन कार्य अपने हाथ मे लिया है। इसके लिए एक पच वर्षीय योजना बनायी गयी है जिसके अनुसार ५ वर्षो मे ३०० पुस्तको का प्रकाशन होगा। इस योजना के अन्तर्गत प्राय वे सब विषय ले लिये गये है जिन पर ससार के किसी भी उन्नतिशील साहित्य मे ग्रन्थ प्राप्त है। इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि इनमे से प्राथमिकता उसी विषय अथवा उन विषय मे दी जाय जिनकी हिन्दी मे नितान्त कमी है।

प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रकाशन का कार्य आरम्भ करने का यह आशय नही है कि व्यवसाय के रूप मे यह कार्य हाथ मे लिया गया है। हम केवल ऐसे ही ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहते हैं जिनका प्रकाशन कतिपय कारणो से अन्य स्थानो से नही हो पाता। हमारा विश्वास है कि इस प्रयास को सभी क्षेत्रो से सहायता प्राप्त होगी और भारती के भडार को परिपूर्ण करने मे उत्तर प्रदेश का शासन भी किंचित योगदान देने मे समर्थ होगा।

भगवती शरण सिंह
सचिव
हिन्दी परामर्श समिति

भूमिका

यह पुस्तक लोकप्रिय साहित्य की श्रेणी की है । इसमे निजी नवीन खोजो का या वर्तमान ज्ञान के सभी ब्योरो का विवरण देने की चेष्टा नही की गयी है । उद्देश्य यह रहा है कि पाठक विषय को सुगमता से समझ सके और सब महत्त्वपूर्ण बातो को जान सके । मुझे आशा है कि ज्योतिष न जानने वाले भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकेगे, क्योकि ज्योतिष के वे पारिभाषिक शब्द जो प्रयुक्त हुए है सरल रीति से समझा दिये गये है ।

इस पुस्तक के प्रथम सात अध्याय लिखने मे शकर बालकृष्ण दीक्षित के अपूर्व मराठी ग्रथ "भारतीय ज्योतिषशास्त्र अथवा भारतीय ज्योतिषशास्त्राचा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास" से विशेष सहायता मिली है । ज्योतिष के प्रकाड विद्वान स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने मेरे आग्रह से मेरी पुस्तक "सरल विज्ञान-सागर" के लिए एक लेख भारतीय ज्योतिष पर लिखा था । मैने उसका भी विशेष उपयोग किया है । अधिकाश सस्कृत श्लोको के जो अर्थ यहाँ छापे गये है उनके लिए मै श्री गगा प्रसाद उपाध्याय, श्री क्षेत्रेशचद्र चट्टोपाध्याय अथवा डाक्टर आद्या प्रसाद मिश्र का ऋणी हूँ । प्रूफ-सशोधन मे डाक्टर कृपाशकर शुक्ल ने बडी सहायता की है, जिसके लिए मै उनका आभारी हूँ । श्री के महोदय की "जयसिह की ज्योतिष वेधशालाएँ" नामक अँग्रेजी पुस्तक से मैने कुछ चित्र लिये है और मै उनका अनुगृहीत हूँ ।

गोरख प्रसाद

विषय-सूची

अध्याय १

प्रारम्भिक बातें

ज्योतिष की महत्ता

भारतीय ज्योतिष का प्राचीनतम इतिहास सुदूर भूतकाल के गर्भ मे छिपा हुआ है। केवल ऋग्वेद आदि अति प्राचीन ग्रथो के स्फुट वाक्याशो से आभास मिलता है कि उस समय ज्योतिष का ज्ञान कितना रहा होगा।

ज्योतिष का अध्ययन अनिवार्य था। जगली जातियो मे भी ज्योतिष का थोडा-बहुत ज्ञान रहता ही है क्योकि इसकी आवश्यकता प्रति दिन पडा करती है; इसलिए आर्यो के ज्योतिष-ज्ञान का समुन्नत दिशा मे पहुँचना आश्चर्य की बात नही है। ज्योतिष का विशेष रूप से अध्ययन उस समय भी होता था इसका प्रमाण यह है कि यजुर्वेद मे 'नक्षत्रदर्श' (=ज्योतिषी) की चर्चा है[1]। छादोग्य उपनिषद मे नक्षत्रविद्या का उल्लेख है[2]। ज्योतिष अति प्राचीन काल से वेद के छ अगो मे गिना जाता रहा है[3]।

ज्योतिष के ज्ञान की आवश्यकता कृषको को भी पडती है और पुजारियों को भी। यो तो सभी को समय-समय पर ऐसी बातो के जानने की आवश्यकता पड़ जाती है जिसे ज्योतिषी ही बता सकता है, परन्तु कृषक विशेष रूप से जानना चाहता है कि पानी कब बरसेगा, और खेतो के बोने का समय आ गया या नही। पुजारी तो बहुत-सी बाते जानना चाहता है। प्राचीन समय मे साल-साल भर तक चलनेवाले यज्ञ हुआ करते थे और अवश्य ही वर्ष मे कितने दिन होते है, वर्ष कब आरम्भ हुआ, कब समाप्त होगा, यह सब जानना बहुत आवश्यक था।

[1] ३०।१०।

[2] ७।१।२, ७।१।४, ७।२।१, ७।७।१।

[3] **आपस्तब धर्मसूत्र,** ४।२।८।१०।

आजकल पचाग इतना सुलभ हो गया है और उसके नियम इतने सुगम हो गये है कि इसकी कल्पना ही प्राय असम्भव है कि अत्यन्त प्राचीन समय मे क्या-क्या कठिनाइयाँ पडती रही होगी। इसलिए इस प्रश्न पर विचार करना कि प्राचीनतम ज्योतिषी का वातावरण कैसा रहा होगा लाभदायक होगा।

समय की तीन एकाइयाँ

प्राचीनतम मनुष्य ने भी देखा होगा कि दिन के पश्चात रात्रि, रात्रि के पश्चात दिन होता है। एक रातदिन—ज्योतिष की भाषा मे एक अहोरात्र और साधारण भाषा मे केवल दिन—समय नापने की ऐसी एकाई थी जो मनुष्य के ध्यान के सम्मुख बरबस उपस्थित हुई होगी। परन्तु कई कामो के लिए यह एकाई बहुत छोटी पडी होगी। उदाहरणत, बच्चे की आयु कौन जोडता चलेगा कि कितने दिन की हुई। सौ दिन के ऊपर असुविधा होने लगी होगी।

सौभाग्यवश एक दूसरी एकाई थी जो प्राय इतनी ही महत्वपूर्ण थी। लोगो ने देखा होगा कि चन्द्रमा घटता-बढता है। कभी वह पूरा गोल दिखायी पडता है, कभी वह अदृश्य भी रहता है। एक पूर्णिमा से दूसरी तक, या एक अमावस्या से दूसरी तक के समय को एकाई मानने मे सुविधा हुई होगी। यह एकाई—एक मास या एक चान्द्र मास—कई कालो के नापने मे सुविधाजनक रही होगी, परन्तु सबके नही। कुछ दीर्घ काल, जैसे बालक-बालिकाओ की आयु, बताने मे मासो का उपयोग भी असुविधाजनक प्रतीत हुआ होगा, इससे भी बडी एकाई की आवश्यकता पडी होगी।

परन्तु लोगो ने देखा होगा कि ऋतुएँ बार-बार एक विशेष क्रम मे आती रहती है—जाडा, गरमी, बरसात, फिर जाडा, गरमी, बरसात, और सदा यही क्रम लगा रहता है। इसलिए लोगो ने बरसातो की सख्या बताकर काल-मापन आरम्भ किया होगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वर्ष शब्द की उत्पत्ति वर्षा से हुई है, और वर्ष के पर्यायवाची शब्द प्राय सभी ऋतुओ से सम्बन्ध रखते है; जैसे शरद, हेमन्त, वत्सर, सवत्सर, अब्द, इत्यादि। शरद और हेमन्त दोनो का सम्बन्ध जाडे की ऋतु से है, वत्सर और सवत्सर से अभिप्राय है वह काल जिसमे सब ऋतुएँ एक बार आ जायँ। अब्द का अर्थ जल देने वाला या बरसात है।

समय की एकाइयो में सम्बन्ध

सैकडो वर्षो तक अहोरात्र, मास और वर्ष के सम्बन्ध को सूक्ष्म रूप से जाने बिना ही काम चल गया होगा, परन्तु जैसे-जैसे गणित का ज्ञान बढा होगा, जैसे-जैसे राजकाज मे क्रमबद्ध आय-व्यय का लेखा वर्षो तक रखने की आवश्यकता पडी होगी, या लम्बे-

लम्बे एक या अधिक वर्षों के यज्ञ होने लगे होंगे, तैसे-तैसे इन तीन एकाइयो के सम्बन्ध को ठीक-ठीक जानने की आवश्यकता तीव्र होती गयी होगी।

मनुष्य के दोनो हाथो मे कुल मिलाकर दस अँगुलियाँ होती है और इसी कारण गणित मे दस की विशेष महत्ता है। सारा गणित दस अको से लिख लिया जाता है—१ से ९ तक वाले अक और शून्य ०, इन्ही से बडी-से-बडी सख्याएँ लिख ली जाती है। प्राचीनतम मनुष्य ने जब देखा होगा कि एक मास मे लगभग तीस दिन होते है तो मास मे ठीक-ठीक तीस दिन मानने मे उसे कुछ भी सकोच न हुआ होगा। उसे मास मे तीस दिन का होना उतना ही स्वाभाविक जान पडा होगा जितना दिन के बाद रात का आना।

परन्तु सच्ची बात तो यह है कि एक मास मे ठीक-ठीक तीस दिन नही होते। सब मास ठीक-ठीक बराबर भी नही होते। इतना ही नही, सब अहोरात्र भी बराबर नही होते। इन सब एकाइयो का सूक्ष्म ज्ञान मनुष्य को बहुत पीछे हुआ। आज भी जब सेकेण्ड के हजारवे भाग तक वैज्ञानिक लोग समय नाप सकते है और डिगरी के दो हजारवे भाग तक कोण नाप सकते है, इन एकाइयो का इतना सच्चा ज्ञान नही है कि कोई ठीक-ठीक बता दे कि आज से एक करोड दिन पहले कौन-सी तिथि थी—उस दिन चन्द्रमा पूर्ण गोल था, या चतुर्दशी के चन्द्रमा की तरह कुछ कटा हुआ।

ऋग्वेद मे वर्षमान

निस्सन्देह इन तीन एकाइयो के सम्बन्ध की खोज ही से ज्योतिष की उत्पत्ति हुई और यदि किसी काल की पुस्तक मे हमे यह लिखा मिल जाता है कि उस समय मास मे और वर्ष मे कितने दिन माने जाते थे तो हमको उस समय के ज्योतिष के ज्ञान का सच्चा अनुमान लग जाता है।

ऋग्वेद हमारा प्राचीनतम ग्रथ है। परन्तु वह कोई ज्योतिष की पुस्तक नही है। इसलिए उसमे आनेवाले ज्योतिष-सम्बन्धी सकेत बहुधा अनिश्चित से है। परतु इसमे सदेह नही कि उस समय वर्ष मे बारह मास और एक मास मे तीस दिन माने जाते थे। एक स्थान पर लिखा है—

"सत्यात्मक आदित्य का, बारह अरो (खूँटो या डडो) से युक्त चक्र स्वर्ग के चारो ओर बार-बार भ्रमण करता है और कभी भी पुराना नही होता। अग्नि, इस चक्र मे पुत्रस्वरूप, सात सौ बीस (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ) निवास करते है[1]।"

[1] १।१६४।४८, रामगोविन्द त्रिवेदी और गौरीनाथ झा का अनुवाद।

परन्तु यह मानने मे कि मास मे बराबर ठीक तीस दिन के होते है एक विशेष कठिनाई पडती रही होगी। वस्तुत एक महीने मे लगभग २९½ दिन होते है। इसलिए यदि कोई बराबर तीस-तीस दिन का महीना गिनता चला जाय तो ३६० दिन मे लगभग ६ दिन का अन्तर पड जायगा। यदि पूर्णिमा से मास आरम्भ किया जाय तो जब बारहवे महीने का अन्त तीस-तीस दिन बारह बार लेने से आवेगा तब आकाश मे पूर्णिमा के बदले अधकटा चन्द्रमा रहेगा। इसलिए यह कभी भी माना नही जा सकता कि लगातार बारह महीने तक तीस-तीस दिन का महीना माना जाता था।

मास मे दिनो की सख्या

पूर्णिमा ऐसी घटना नही है जिसके घटित होने का समय केवल चन्द्रमा की आकृति को देखकर कोई पल-विपल तक बता सके। यदि इस समय चन्द्रमा गोल जान पडता है तो कुछ मिनट पहले भी वह गोल जान पडता रहा होगा और कुछ मिनट बाद भी वह गोल ही जान पडेगा। मिनटो की क्या बात, कई घण्टो मे भी अधिक अन्तर नही दिखायी पडता। इसलिए एक मास मे २९½ दिन के बदले ३० दिन मानने पर महीने, दो महीने तक तो कुछ कठिनाई नही पडी होगी, परन्तु ज्योही लोगो ने लगातार गिनाई आरम्भ की होगी, उनको पता चला होगा कि प्रत्येक मास मे तीस दिन मानते रहने से साल भर मे गणना और वेध मे एकता नही रहती। जब गणना कहती है कि मास का अन्त हुआ तब आकाश मे चन्द्रमा पूर्ण गोल नही रहता, जब वेध बताता है कि आज पूर्णिमा है तब गणना बताती है कि अभी महीना पूरा नही हुआ।

अवश्य ही कोई उपाय रहा होगा जिससे लोग किसी-किसी महीने मे केवल २९ दिन मानते रहे होगे। इन २९ दिन वाले महीनो के लिए ऋग्वेद के समय मे क्या नियम थे यह अब जाना नही जा सकता, परन्तु कुछ नियम रहे अवश्य होगे। पीछे तो भारतीय ज्योतिष मे ऐसे पक्के नियम बन गये कि लोग उन नियमो के दास बन गये, ऐसे दास कि आज भी हिन्दू ज्योतिषी तभी ही पूर्णिमा मानते है जब उनकी गणना कहती है कि पूर्णिमा हुई, चाहे वेध (आँख से देखी बात) कुछ बताये। मुसलमान वेध के भक्त है, हिन्दू गणित के। चाहे गणना कुछ भी कहे, जब तक मुसलमान ईद के चाँद को आँखो से देख न लेगा—चाहे निजी आँखो से, चाहे विश्वस्त पुजारियो की आँखो द्वारा—वह ईद मनायेगा ही नही। परन्तु आज का हिन्दू डेढ हजार वर्ष पहले के बने नियमो का इतना भक्त है कि वह वेध को भाड मे झोकने के लिए

उद्यत है। दृक्तुल्यता—गणना मे ऐसा सुधार करना कि उससे वही परिणाम निकले जो वेध से प्राप्त होता है—आज के प्राय सभी पडितो को पाप-सा प्रतीत होता है। वेध की अवहेलना अभी इसलिए निभी जा रही है कि सूर्य-सिद्धान्त के गणित से निकले परिणाम और वेध मे अभी घण्टे, दो घण्टे, से अधिक का अन्तर नही पडता, और घण्टे, दो घण्टे, आगे या पीछे पूर्णिमा बताने से साधारण मनुष्य साधारण अवसरो पर गलती पकड नही पाता। इसी से काम चला जा रहा है। ग्रहण के अवसरो पर अवश्य घण्टे भर की गलती सुगमता से पकडी जा सकती है[1], परन्तु पडितो ने, चाहे वे कितने भी कट्टर प्राचीन मतावलम्बी हो, ग्रहणो की गणना आधुनिक पाश्चात्य रीतियो से करना स्वीकार कर लिया है। अस्तु। चाहे आज का पडित कुछ भी करे, ऋग्वेद के समय के लोग साल भर तक किसी भी प्रकार तीस दिन ही प्रति मास न मान सके होगे। सम्भवत कोई नियम रहा होगा, ऐसे नियम वेदाग-ज्योतिष मे दिये है और उनकी चर्चा नीचे की जायगी। परन्तु यदि कोई नियम न रहे होगे तो कम-से-कम अपनी आँखो देखी पूर्णिमा के आधार पर उस काल के ज्योतिषी समय-समय पर एक-दो दिन छोड दिया करते रहे होगे।

वर्ष मे कितने मास

यह तो हुआ मास मे दिनो की सख्या का हिसाब। यह भी प्रश्न अवश्य उठा होगा कि वर्ष मे कितने मास होते है। यहाँ पर कठिनाई और अधिक पडी होगी। पूर्णिमा की तिथि वेध से निश्चित करने मे एक दिन, या अधिक से अधिक दो दिन, की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए बारह या अधिक मासो मे दिनो की सख्या गिनकर पडता बैठाने पर कि एक मास मे कितने दिन होते है अधिक त्रुटि नही रह जाती है।

परन्तु यह पता लगाना कि वर्षाऋतु कब आरम्भ हुई, या शरदऋतु कब आयी, सरल नही है। पहला पानी किसी साल बहुत पहले, किसी साल बहुत पीछे, गिरता है। इसलिए वर्षाऋतु के आरम्भ को वेध से, ऋतु को देख कर, निश्चित करने मे पन्द्रह दिन की त्रुटि हो जाना साधारण-सी बात है। बहुत काल तक पता ही न चला होगा कि एक वर्ष मे ठीक-ठीक कितने दिन होते है। आरम्भ मे लोगो की यही धारणा रही होगी कि वर्ष मे मासो की सख्या कोई पूर्ण सख्या होगी। बारह ही

[1] **क्योकि चन्द्रग्रहण का मध्य पूर्णिमा पर और सूर्यग्रहण का मध्य अमावस्या पर ही हो सकता है।**

निकटतम पूर्ण सख्या है। इसलिए वर्ष मे बारह महीनो का मानना स्वाभाविक था। दीर्घकाल तक होता यही रहा होगा कि बरसात से लोग मोटे हिसाब से महीनो को गिनते रहे होगे और समय बताने के लिए कहते रहे होगे कि इतने मास बीते।

तो भी, जैसे-जैसे ज्योतिष के ज्ञान मे तथा राज-काज, सभ्यता, आदि, मे वृद्धि हुई होगी, तैसे-तैसे अधिकाधिक दीर्घ काल तक लगातार गिनती रक्खी गयी होगी और तब पता चला होगा कि वर्ष मे कभी बारह, कभी तेरह, मास रखना चाहिए, अन्यथा बरसात उसी महीने मे प्रति वर्ष नही पडेगी। उदाहरणत, यदि इस वर्ष बरसात सावन-भादो मे थी और हम आज से बराबर बारह-बारह मासो का वर्ष मानते जायँ तो कुछ वर्षो के बाद बरसात कुआर-कार्तिक मे पडेगी; कुछ अधिक वर्षो के बीतने पर बरसात अगहन-पूस मे पडेगी। मुसलमानो की गणना-पद्धति आज भी यही है कि एक वर्ष मे कुल १२ मास (चान्द्र मास) रक्खे जायँ। इसका परिणाम यही होता है कि बरसात उनके हिसाब से प्रति वर्ष एक ही महीने मे नही पडती। उदाहरणत, उनके एक महीने का नाम मुहर्रम है। उसी महीने मे मुसलमानो का मुहर्रम नामक त्योहार पडता है। परन्तु यह त्योहार, जैसा सभी ने देखा होगा बरावर एक ही ऋतु मे नही पडता।

ऋग्वेद के समय मे अधिमास

हिन्दुओ ने तेरहवाँ मास लगाकर मासो और ऋतुओ मे अटूट सम्बन्ध जोडने की रीति ऋग्वेद के समय मे ही निकाल ली थी। ऋग्वेद मे एक स्थान पर आया है—

"जो व्रतावलम्बन करके अपने-अपने फलोत्पादक बारह महीनो को जानते है और उत्पन्न होनेवाले तेरहवे मास को भी जानते है, ..."।[1]

इससे प्रत्यक्ष है कि वे तेरहवाँ महीना बढाकर वर्ष के भीतर ऋतुओ का हिसाब ठीक रखते थे।

नक्षत्र

लोगो ने धीरे-धीरे यह देखा होगा कि पूर्णिमा का चन्द्रमा जब कभी किसी विशेष तारे के निकट रहता है तो एक विशेष ऋतु रहती है। इस प्रकार तारो के बीच चन्द्रमा की गति पर लोगो का ध्यान आकृष्ट हुआ होगा। तारो के हिसाब से चन्द्रमा एक चक्कर २७$\frac{1}{3}$ दिन मे लगाता है। मोटे हिसाब से प्राचीन लोगो

[1] १।२५।८। रामगोविन्द त्रिवेदी और गौरीनाथ झा का अनुवाद।

ने इसे २७ ही दिन माना होगा। इसलिए चन्द्रमा के एक चक्कर को २७ भागो मे बॉटना और उसके मार्ग मे २७ चमकीले या सुगमता से पहचान मे आनेवाले तारों या तारका-पुजो को चुन लेना उनके लिए स्वाभाविक था। ठीक-ठीक बराबर दूरियो पर तारो का मिलना असम्भव था, क्योकि चन्द्रमा के मार्ग मे तारो का जडना मनुष्य का काम तो था नही। इसलिए आरम्भ मे मोटे हिसाब से ही वेध द्वारा चन्द्रमा की गति का पता चल पाता रहा होगा, परन्तु गणित के विकास के साथ इसमे सुधार हुआ होगा और तब चन्द्र-मार्ग को ठीक-ठीक बराबर २७ भागो मे बॉटा गया होगा। चन्द्रमा २७ के बदले लगभग २७$\frac{१}{३}$ दिन मे एक चक्कर लगाता है, इसका भी परिणाम जोड लिया गया होगा।

चन्द्रमा के मार्ग के इन २७ बराबर भागो को ज्योतिष मे नक्षत्र कहते है। साधारण भाषा मे नक्षत्र का अर्थ केवल तारा है। इस शब्द से किसी भी तारे का बोध हो सकता है। आरम्भ मे नक्षत्र तारे के लिए ही प्रयुक्त होता रहा होगा। परन्तु चन्द्रमा अमुक नक्षत्र के समीप है कहने की आवश्यकता बार-बार पडती रही होगी। समय पाकर चन्द्रमा और नक्षत्रो का सम्बन्ध ऐसा घनिष्ठ हो गया होगा कि नक्षत्र कहने से ही चन्द्र-मार्ग के समीपवर्ती किसी तारे का ध्यान आता रहा होगा। पीछे जब चन्द्रमार्ग को २७ बराबर भागो मे बॉटा गया तो स्वभावत इन भागो के नाम भी समीपवर्ती तारो के अनुसार अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, आदि पड गये होगे।

ऋग्वेद मे कुछ नक्षत्रो के नाम आते है जिससे पता चलता है कि उस समय भी चन्द्रमा की गति पर ध्यान दिया जाता था[१]।

उदयकालिक सूर्य

कौषीतकी ब्राह्मण मे इसका सूक्ष्म वर्णन है कि उदयकाल के समय सूर्य किस दिशा मे रहता है। क्षितिज पर सूर्योदय-विन्दु स्थिर नही रहता, क्योकि सूर्य का वार्षिक मार्ग तिरछा है और इसका आधा भाग आकाश के उत्तर भाग मे पडता है, आधा दक्षिण मे। कौषीतकी ब्राह्मण ने सूर्योदय-विन्दु की गति का सच्चा वर्णन दिया है कि किस प्रकार यह विन्दु दक्षिण की ओर जाता है, कुछ दिनो तक वहॉ स्थिर-सा जान पडता है और फिर उत्तर की ओर बढता है[२]। यदि यज्ञ करनेवाला प्रति

[१] १०।८५।१३।

[२] १९।२।३।

दिन एक ही स्थान पर बैठकर यज्ञ करता था—और वह ऐसा करता भी रहा होगा—तो क्षितिज के किसी विशेष विन्दु पर सूर्य को उदय होते हुए देखने के पश्चात फिर एक वर्ष बीतने पर ही वह सूर्य को ठीक उसी स्थान पर (उसी ऋतु मे) उदय होता हुआ देखता रहा होगा। वस्तुत, क्षितिज के किसी एक विन्दु पर उदय होने से लेकर सूर्य के फिर उसी विन्दु पर वैसी ही ऋतु मे उदय होने तक के काल मे दिनो की सख्या गिनने से वर्ष का मान पर्याप्त अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है और सम्भव है कि इस रीति से भी उस समय वर्षमान निकाला गया हो। कम से कम इतना तो निश्चय है कि कौषीतकी ब्राह्मण के कर्त्ता ने सूर्योदय-विन्दु की गति को कई वर्षो तक अच्छी तरह देखा था।

तारो का उदय और अस्त होना

वर्षमान जानने की एक अन्य रीति भी थी। लोग सूर्य की उपासना करते थे। प्रात काल, सूर्योदय के पहले से ही, पूर्व दिशा की ओर ध्यान दिया करते थे। इस क्रिया मे उन्होने देखा होगा कि सूर्योदय के पहले जो तारे पूर्वीय क्षितिज के ऊपर दिखायी पडते है वे सदा एक ही नही रहते। उदाहरणत, यदि मान लिया जाय कि आज प्रात काल मघा नामक तारा लगभग सूर्योदय के समय पूर्वीय क्षितिज से थोडी-सी ही ऊँचाई पर दिखायी पड रहा था तो यह निश्चित है कि आज से बीस-पच्चीस दिन बाद यह तारा सूर्योदय के समय क्षितिज से बहुत अधिक ऊँचाई पर रहेगा, और बीस-पच्चीस दिन पहले सूर्योदय के समय यह क्षितिज से नीचे और इसलिए अदृश्य था। अवश्य कोई दिन ऐसा रहा होगा जिस दिन यह तारा पहले-पहल लगभग सूर्योदय के समय, या तनिक-सा पहिले, दिखायी पडा होगा। वह तारा उस दिन 'उदय' हुआ, ऐसा माना जाता था। लोगो ने देखा होगा कि विशेष तारो का उदय विशेष ऋतुओ मे होता है। तुलसीदास ने जो लिखा है "उदेउ अगस्त्य पथ जल सोखा" उसमे उदय होने का अर्थ यही है कि अगस्त्य पहले प्रात काल नही दिखायी पड रहा था, जब वह सूर्योदय के पहले दिखायी पडने लगा तो बरसात बीत गयी थी।

विशेष तारो के उदय होने के समयो को बार-बार देखकर और इस पर ध्यान रखकर कि कितने-कितने दिनो पर एक ही तारा उदय होता है लोगो ने वर्ष का स्थूल मान अवश्य जान लिया होगा। एक बरसात मे दूसरी बरसात तक के दिनो को गिनने की अपेक्षा तारो के एक उदय से दूसरे उदय तक या सूर्योदय-विन्दु के क्षितिज के किसी विशेष चिह्न पर फिर आ जाने तक के काल मे दिनो के गिनने से वर्ष का अधिक सच्चा ज्ञान हुआ होगा, परन्तु इसमे भी स्थूलता तब तक न मिटी होगी जब तक कई वर्षो तक दिनो की गिनती लगातार न की गयी होगी।

तारो का उदय प्राचीन काल मे भी देखा जाता था यह तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक स्थान से स्पष्ट है ।[1]

पूर्वोक्त प्रमाणो से प्रत्यक्ष है कि ऋग्वैदिक काल मे ज्योतिष की सच्ची नीव पड गयी थी ।

इस अध्याय मे हमने प्राचीन ज्योतिष पर विहगम दृष्टि डाल ली है । आगामी अध्याय मे प्राचीन साहित्य मे आयी हुई ज्योतिष सबधी चर्चा पर ब्योरेवार विचार किया जायगा ।

[1] १।५।२।१, लोकमान्य तिलक न अपनी पुस्तक ओरायन मे पृष्ठ १८ पर इसकी व्याख्या की है ।

अध्याय २

प्राचीनतम ज्योतिष

विषय-प्रवेश

ऋग्वेद तथा अन्य प्राचीनतम ग्रथो मे ज्योतिष से सबध रखने वाली कई बाते है। शकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपनी मराठी पुस्तक "भारतीय ज्योतिषशास्त्र" मे अनेक उद्धरण दिये है और उन पर पाडित्यपूर्ण विवेचन किया है। यहाँ थोडे-से चुने हुए उद्धरण दिये जायँगे, जिनसे पता चल जायगा कि हमारे प्राचीन ऋषियो को ज्योतिष का ज्ञान कैसा था। परतु इन उल्लेखो पर विचार करने के पहले यह समझ लेना भी अच्छा होगा कि हमारे प्राचीनतम साहित्य मे क्या-क्या ग्रथ उपलब्ध है।

हमारा प्राचीनतम साहित्य

हमारे प्राचीनतम ग्रथो मे वेद है। वेद का साधारण अर्थ ज्ञान है, परतु विशेष अर्थ है भारतीय आर्यो के सर्वप्रथम और सर्वमान्य धार्मिक ग्रथ। इनकी सख्या चार है। हिन्दी शब्द-सागर मे इनके सबध मे निम्न सूचना दी हुई है .

> आरभ मे वेद केवल तीन ही थे—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। इनमे से ऋग्वेद पद्य मे है और यजुर्वेद गद्य मे। सामवेद मे गाने योग्य गीत या साम है। इसलिए प्राचीन साहित्य मे "वेदत्रयी" शब्द का ही अधिक प्रयोग देखने मे आता है, यहाँ तक कि मनु ने भी अपने धर्मशास्त्र मे अनेक स्थानो पर "वेदत्रयी" शब्द का ही व्यवहार किया है। चौथा अथर्ववेद पीछे से वेदो मे सम्मिलित हुआ था, और तब से वेद चार माने जाने लगे। इस चौथे या अतिम वेद मे शाति तथा पौष्टिक अभिचार, प्रायश्चित्त, तत्र, मत्र आदि विषय है। वेदो के तीन मुख्य भाग है जो सहिता, ब्राह्मण और आरण्यक या उपनिषद कहलाते है। सहिता शब्द का अर्थ सग्रह है, और वेदो के सहिता भाग मे स्तोत्र, प्रार्थना, मत्र-प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त, यज्ञ-

विधि से सबध रखनेवाले मत्र और अरिष्ट आदि की शाति के लिए प्रार्थनाएँ आदि सम्मिलित है। वेदो का यही अश मत्र-भाग भी कहलाता है। ब्राह्मण-भाग मे एक प्रकार से बडे-बडे गद्य ग्रथ आते है जिनमे अनेक देवताओ की कथाएँ, यज्ञ-सबधी विचार और भिन्न-भिन्न ऋतुओ मे होनेवाले धार्मिक कृत्यो के व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक महत्व का निरूपण है। वनो मे रहने वाले यति, सन्यासी आदि परमेश्वर, जगत और मनुष्य इन तीनो के सबध मे जो विचार किया करते थे, वे उपनिषदो और आरण्यको मे सगृहीत है। इन्ही मे भारत का प्राचीनतम तत्त्वज्ञान भरा हुआ है। यह सब मानो वेदो का अतिम भाग है, और इसीलिए वेदात कहलाता है। वेदो का प्रचार बहुत प्राचीन काल से और विस्तृत प्रदेश मे रहा है, इसलिए काल-भेद, देश-भेद और व्यक्ति-भेद आदि के कारण वेदो के मत्रो के उच्चारण आदि मे अनेक पाठ-भेद हो गये है। साथ ही पाठ मे कही-कही कुछ न्यूनता और अधिकता भी हो गयी है। इस पाठ-भेद के कारण सहिताओ को जो रूप प्राप्त हुए है वे शाखा कहलाते है, और इस प्रकार प्रत्येक वेद की कई-कई शाखाएँ हो गयी है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छद ये छ वेदो के अग या वेदाग कहलाते है।

हिन्दू लोग वेदो को अपौरुषेय और ईश्वर-कृत मानते है। लोगो का विश्वास है कि ब्रह्मा ने (स्वय) वेद कहे है, और जिन-जिन ऋषियो ने जो मत्र सुनकर सगृहीत किये है वे उन मत्रो के द्रष्टा है। कहा जाता है कि वेदो का वर्तमान रूप मे सग्रह और सकलन महर्षि व्यास ने किया है, और इसीलिए वे वेदव्यास कहे जाते है।

वेदो के रचना-काल के सबध मे विद्वानो मे बहुत अधिक मतभेद है। मैक्समूलर आदि कई पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि वेदो की रचना ईसा से प्राय डेढ हजार वर्ष पहले उस समय हुई जिस समय आर्य लोग आकर पजाब मे बसे थे। परतु लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष-सबधी तथा अन्य कई आधारो पर वेदो का समय ईसा से लगभग ४,५०० वर्ष पूर्व स्थिर किया है। बूलर आदि विद्वानो का मत है कि आर्य सभ्यता ईसा से प्राय चार हजार वर्ष पहले की है और वैदिक साहित्य की रचना ईसा से प्राय तीन हजार वर्ष पहले हुई है, और अधिकाश लोग यही मत मानते है।

वेद 'श्रुति' कहलाते है क्योकि ऋषियो ने उन्हे ब्रह्मा के मुख से सुना था। 'स्मृति' ऐसी कृति को कहते है जो किसी पुरुष की रचना होती है। स्मृति

का अर्थ है वह जो स्मरण रह गया हो। श्रुति का अर्थ है वह जो सुना गया हो। स्मृतियो के कर्त्ता, कर्त्तार या स्रष्टार होते है, जिन्हे हम आज-कल की भाषा मे ग्रथकार या लेखक कहेगे। श्रुतियो के कर्त्ता नहो, द्रष्टा या द्रष्टार होते थे जो अपनी दिव्य दृष्टि से सत्य को देख सकते थे।

ब्राह्मण आदि

ऋग्वेद मे एक हजार से अधिक सूक्त है और एक सूक्त मे मध्यमानत (औसतन) लगभग १० ऋचाए (छद) है। सारे वेद को दस मडलो मे बॉटा गया है और हमने जहाँ-जहाँ ऋग्वेद की किसी पक्ति का निर्देश किया है वहा प्रथम सख्या मडल बताती है, दूसरी सूक्त, तीसरी मत्र या ऋचा। ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय के आर्य अधिकाश पजाब मे बसे थे जहाँ सिधु नदी तथा उसकी सहायक नदिया बहती थी। परतु वे गगा, यमुना और गोमती तक एक ओर और कुभा (काबुल) तक दूसरी ओर फैले हुए थे। पशु-पालन (विशेषत गो-पालन) और कृषि ये ही दो उनके प्रमुख काम थे।

ऋग्वेद के कई 'ब्राह्मण'[1] थे जिनमे से दो ही—ऐतरेय और कौषीतकी—अब उपलब्ध है। दोनो मे बहुत-सी बाते एक ही है, परतु प्रत्येक मे कई ऐसी बाते है जो दूसरे मे नही है। ऐतरेय ब्राह्मण के साथ ऐतरेय आरण्यक और ऐतरेय उपनिषद भी है, इसी प्रकार कौषीतकी ब्राह्मण के साथ कौषीतकी आरण्यक और कौषीतकी उपनिषद है। ताण्ड्य ब्राह्मण सामवेद का ब्राह्मण है।

सामवेद की अधिकाश ऋचाएँ (लगभग १६००) ऋग्वेद से ली गयी है और उनके गान दिये गये है।

यजुर्वेद की दो शाखाएँ है—कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद, जिनमे से कृष्ण यजुर्वेद अधिक प्राचीन है। यजुर्वेद के ऋषि थे वैशम्पायन, जिनके शिष्य के शिष्य थे तित्रि, और इन्ही के नाम से यजुर्वेद की एक शाखा तैत्तिरीय-सहिता है। परतु इस सहिता मे केवल ऋचाएँ नही है। वे सब विषय भी है जिन्हे साधारणत ब्राह्मणो मे जाना चाहिए। परतु तैत्तिरीय ब्राह्मण भी है जो सभवत कुछ काल बीतने पर तैयार हुआ। ऋचाओ और ब्राह्मण मे जाने योग्य विषयो का सम्मिश्रण यजुर्वेद

[1] वेद के उस खड को "ब्राह्मण" कहते है जो बताता है कि किस यज्ञ में कौन-से सूक्त का पाठ होना चाहिए, और जो ऋचाओ का अर्थ देता है और उन्हें स्पष्ट करने के लिए कथाएँ देता है।

की अन्य शाखाओ मे भी था—काठक, कालापक और मैत्रायणी-सहिता मे, परतु इस दोष को याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने दूर किया। उनके द्वारा प्रसारित सहिता वाजसनेयी-सहिता कहलायी। इसके साथ जो ब्राह्मण था उसका नाम शतपथ ब्राह्मण पडा। अधिक स्पष्ट होने के कारण वाजसनेयिओ ने अपनी सहिता को शुक्ल यजुर्वेद कहा और पहले वाली सहिताओ को कृष्ण कहा।

शतपथ ब्राह्मण मे ज्योतिष-सबधी कई एक सूचनाएँ है, परतु वर्तमान शतपथ ब्राह्मण का सब अग एक साथ नही बना है। प्राचीन वैयाकरण पाणिनि के वार्तिककार कात्यायन के अनुसार शतपथ के पिछले अश पाणिनि के काल मे या कुछ ही पहले तैयार हुए थे। समय पाकर तैत्तिरीय लोग नर्मदा की ओर बढे और वाजसनेयी लोग विदेह की ओर।

अथर्ववेद मे अन्य वेदो की भाति स्तोत्रो के अतिरिक्त शत्रु को नाश करने के भी मत्र है, दुर्घटना, पाप, विपत्ति आदि से बचने के लिए भी मत्र है। कुछ विद्वानो का मत है कि आदिम निवासियों के सपर्क का यह परिणाम है। अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम गोपथ ब्राह्मण है। अथर्ववेद से सबध रखने वाले उपनिषद कई एक है—प्रश्न, मुडक, माडूक्य, इत्यादि।

वैदिक साहित्य मे वर्ष, मास और अधिमास

तैत्तिरीय ब्राह्मण मे एक स्थान पर सूर्य, चद्रमा, नक्षत्र, सवत्सर, ऋतु, मास, अर्धमास, अहोरात्र, पौर्णमास, आदि शब्द एक साथ ही आये है। पाठ इस प्रकार है :—

> **लोकोसि स्वर्गोसि ।। अनतोस्यपारोसि ।। अक्षितोस्यक्षय्योसि ।। तपसः प्रतिष्ठा ।। त्वयीदमत ।। विश्व यक्ष विश्व भूत विश्व सुभत ।। विश्वस्य भर्ता विश्वस्य जनयिता ।। तंत्वोपदधे कामदुघमक्षित ।। प्रजापतिस्त्वा-सादयतु ।। तया देवतयागिरस्वध्रुवासीद ।। ।। तपोसि लोके श्रित ।। तेजसः प्रतिष्ठा ।। त्वयीद० ।। तेजोसि तपसि श्रितं ।। समुद्रस्य प्रतिष्ठा ।। समुद्रोसि तेजसि श्रितः ।। अपां प्रतिष्ठा ।। ।। आप स्थ समुद्रे श्रिताः।। पृथिव्या. प्रतिष्ठा युष्मासु ।। . ।। पृथिव्यस्यप्सुश्रिता ।। अग्ने प्रतिष्ठा ।। . ।। अग्निरसि पृथिव्यां श्रितः ।। अतरिक्षस्य प्रतिष्ठा ।। ।। अतरिक्षमस्यग्नौ श्रित ।। वायो प्रतिष्ठा ।। ।। वायुरस्यंतरिक्षे श्रितः ।। दिवः प्रतिष्ठा ।। .. ।। द्यौरसि वायौ श्रिता ।। आदित्यस्य प्रतिष्ठा ।। ।। आदित्योसि दिवि श्रित. ।। चद्रमसः प्रतिष्ठा ।। ... ।। चंद्रमा**

अस्यादित्ये श्रित. ।। नक्षत्राणा प्रतिष्ठा ।। ।। नक्षत्राणि स्थ चद्रमसि श्रितानि ।। सवत्सरस्य प्रतिष्ठा युष्मासु ।। ।। सवत्सरोसि नक्षत्रेषु श्रितः ।। ऋतूना प्रतिष्ठा ।। . ।। ऋतव स्थ सवत्सरे श्रिता· ।। मासाना प्रतिष्ठा युष्मासु ।। . ।। मासा स्थर्तुषु श्रिता. ।। अर्धमासाना प्रतिष्ठा युष्मासु ।। . . ।। अर्धमासा स्थ मा.सु श्रिता. ।। अहोरात्रयो. प्रतिष्ठा युष्मासु ।। ।। अहोरात्रे स्थोर्धमासेषु श्रिते ।। भूतस्य प्रतिष्ठे भव्यस्य प्रतिष्ठे ।। पौर्णमास्यष्टकामावास्या ।। अन्नादा स्थानदुघो युष्मासु ।। राडसि बृहती श्रीरसीद्रपत्नी धर्मपत्नी ।। ओजोसि सहोसि बलमसि भ्राजोसि ।। देवाना धामामृत ।। अमर्त्यस्तपोजा. ।। ।।

तै ब्रा ३ ११ १.

अर्थ—तू लोक है। तू स्वर्ग है। तू अनन्त है। तू अपार है। तेरा कभी नाश नही हुआ है। तू अविनाशी है। तू तप की प्रतिष्ठा (ठहरने की भूमि) है। तुझमे यह सब है। विश्व यक्ष है, विश्व भृत है, विश्व सुभृत है विश्व का धारण करने वाला। विश्व का उत्पन्न करने वाला। उस तुमको स्थापित करता हूँ। कामधेनु (कामनाओ के पूरक) और अनष्ट की। प्रजापति तुझको ठीक रक्खे। उस देवता के द्वारा अगिराओ मे विराजमान हो। तू तप है लोक मे ठहरा हुआ। तेज की प्रतिष्ठा है। तुझमे यह अन्त है। तू तेज है तप मे ठहरा हुआ। समुद्र की प्रतिष्ठा है। । तू समुद्र है तेज मे ठहरा हुआ, जलो की प्रतिष्ठा है। । तुम जल हो समुद्र मे ठहरे हुए। तुममे पृथ्वी की प्रतिष्ठा है। । तू पृथ्वी है जलो मे ठहरी हुई। अग्नि की प्रतिष्ठा है। . । तू अग्नि है पृथ्वी मे ठहरी हुई। अन्तरिक्ष की प्रतिष्ठा है। । तू अन्तरिक्ष है अग्नि मे ठहरी हुई। वायु की प्रतिष्ठा है। . । तू वायु है अतरिक्ष मे ठहरी हुई। द्यौलोक की प्रतिष्ठा है। । तू द्यौ है वायु मे ठहरी हुई। आदित्य की प्रतिष्ठा है। । तू आदित्य है द्यौ (आकाश) मे ठहरा हुआ। चद्रमा की प्रतिष्ठा है। । तू चद्रमा है आदित्य (=सूर्य) मे ठहरा हुआ। नक्षत्रो की प्रतिष्ठा है। ... । तुम नक्षत्र हो चद्रमा मे ठहरे हुए। तुम मे सवत्सर की प्रतिष्ठा है। .. । तू सवत्सर है नक्षत्रो मे ठहरा हुआ। तू ऋतुओ की प्रतिष्ठा है। ... । तुम ऋतु हो सवत्सर मे ठहरे हुए। महीनो की प्रतिष्ठा तुम मे है। .. । तुम महीने हो ऋतुओ मे ठहरे हुए। तुम मे आधे-महीनो की प्रतिष्ठा है। ... । तुम अर्धमास हो मासो मे ठहरे हुए। अहोरात्र (रातदिन) की प्रतिष्ठा तुम मे है। ... ।· तुम अहोरात्र हो अर्द्धमासो मे ठहरे हुए। तुम भूत की भी

प्रतिष्ठा हो और भव्य (वर्तमान) की भी । पूर्णमासी, अष्टमी, अमावस्या । अन्न को पचाने (खाने) वाली, कामनाओ को दुहने वाली, तुममे । तू राट है, बृहती है, श्री है, इन्द्रपत्नी है, धर्मपत्नी है । ओज है, सह है, बल है, भ्राज है । देवो का धाम है, अमृत है । अमर्त्य (नाशरहित) है । तप से उत्पन्न हुई है ।

इससे स्पष्ट है कि उस समय सवत्सर, मास आदि की प्रथा अच्छी तरह चालू थी । नक्षत्रो का भी वेध हुआ करता था ।

एक ही सूर्य

यह भी कि सूर्य से ऋतुएँ होती है लोग जानते थे । ऋक् सहिता मे यह है

पूर्वामनु प्रदिश पार्थिवानामृतून् प्रशासद्विदधावनुष्ठु ॥

ऋ सं १ ९५ ३.

अर्थ—(सूर्य ने) पृथ्वी के प्राणियो के लिए ऋतुओ का विभाग करके अच्छे प्रकार से पूर्व दिशा को बनाया ।

ऋक् सहिता की निम्न ऋचा से स्पष्ट है कि उस समय यह ज्ञात था कि विश्व मे एक ही सूर्य है, पता नही कैसे पीछे जैनियो का यह मत हो गया कि दो सूर्य है —

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ॥
एकैवोषा सर्वमिद विभाति ... ॥

ऋ सं. ८ ५८ २

एक ही अग्नि अनेक प्रकार से प्रदीप्त होती है । एक ही सूर्य विश्व भर मे प्रभाव डालता है । एक ही उषा इस समस्त (जगत) को प्रकाशित करती है ।

फिर एक ही सूर्य के उदय-अस्त से दिन-रात होने का भी उल्लेख है

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ॥
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥

ऋ सं ४ ५३ ३

अर्थ—सविता (सूर्य) देव तेज द्वारा द्यौलोक (आकाश) और पृथ्वी लोक को परिपूरित करते है, एव अपने कार्य को प्रशसित करते है । वे प्रति दिन जगत का अपने-अपने कार्य मे स्थापन करते है और प्रेरित करते है । वे सृजन कार्य के लिए दोनो बाहुओ (किरणो) को फैलाते है ।

महीने

अधिमास के सबध मे ऋक् सहिता की निम्न ऋचा ध्यान देने योग्य है :

वेदमासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ॥ वेदा य उपजायते ॥

ऋ सं १. २५ ८

इसका अर्थ पहले दिया जा चुका है (पृष्ठ ६)।

तैत्तिरीय सहिता मे ऋतुओ और मासो के नाम बताये गये है :

मधुश्च माधवश्च वासतिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमतिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ॥

त सं ४ ४ ११.

अर्थ—वसन्त ऋतु के दो महीने है, मधु और माधव, ग्रीष्म ऋतु के दो महीने है, शुक्र और शुचि, वर्षा के दो महीने है, नभ और नभस्य, शरद के दो महीने है, इष और ऊर्ज, हेमन्त के दो महीने है, सह और सहस्य, शिशिर के दो महीने है, तपस और तपस्य।

वाजसनेयी सहिता मे पूर्वोक्त १२ महीनो के नामो के अतिरिक्त तेरहवे महीने की भी चर्चा है। जान पडता है कि लौद के तेरहवे महीने को तब लोग अहसस्पति कहते थे—

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा
नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा
सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा
तपस्याय स्वाहांहसस्पतये स्वाहा ॥

वा स २२ ३१

अर्थ—मधु के लिए स्वाहा, माधव के लिए स्वाहा, शुक्र के लिए स्वाहा, शुचि के लिए स्वाहा, नभ के लिए स्वाहा, नभस्य के लिए स्वाहा, इष के लिए स्वाहा, ऊर्ज के लिए स्वाहा, सह के लिए स्वाहा, सहस्य के लिए स्वाहा, तपस के लिए स्वाहा, तपस्य के लिए स्वाहा, अहसस्पति (पाप के पति या मलमास) के लिए स्वाहा।

तैत्तिरीय ब्राह्मण मे भी तेरह महीनो के नाम है

अरुणोरुणरजाः पडरीको विश्वजिदभिजित् ॥
आर्द्र. पिन्वमानोन्नवान् रसवानिरावान् ॥
सर्वौषधः संभरो महस्वान् ॥

तै ब्रा ३ १०. १.

अर्थ—महीनो के १३ नाम ये है.—

(१) अरुण. (२) अरुणरज, (३) पुडरीक, (४) विश्वजित्, (५) अभिजित्, (६) आर्द्र, (७) पिन्वमान, (८) उन्नवान्, (९) रसवान्, (१०) इरावान्, (११) सर्वौषध, (१२) सभर, (१३) महस्वान् ॥

वर्ष में ३६० दिन होने का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में निम्न प्रकार से है .

त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहानि सप्त च वै शतानि विंशतिश्च सवत्सरस्याहोरात्रयः ॥

ऐ ब्रा ७. १७

अर्थ—तीन सौ साठ दिन का वर्ष होता है, वर्ष मे सात सौ बीस दिन और रात होते है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण मे भी तेरहवे मास की चर्चा है —

द्वादशारत्नी रशना कर्तव्या ३ त्रयोदशारत्नी३रिति ॥ ऋषभो वा एष ऋतूनां ॥ यत्सवत्सरः ॥ तस्य त्रयोदशो मासो विष्टप ॥ ऋषभ एष यज्ञानां ॥ यदश्वमेध ॥ यथा वा ऋषभस्य विष्टपं ॥ एवमतस्य विष्टपं ॥

तै ब्रा ३. ८ ३.

अर्थ—रस्सी को १२ हाथ की करे या १३ हाथ की ? सवत्सर जो है वह ऋतुओ का ऋषभ (साँड, स्वामी) है । तेरहवाँ महीना उसका विष्टप (=पूँछ) है । अश्वमेध जो है वह यज्ञो का ऋषभ है । जैसे ऋषभ का पुच्छ होता है उसी तरह यह अश्वमेध का पुच्छ है ।

ताण्डय ब्राह्मण मे वर्ष मे दिनो की सख्या ठीक रखने के सबध मे निम्न अति रोचक वाक्य है

यथा वै दृतिराध्मात एवं संवत्सरोनुत्सृष्टः ॥

तां ब्रा. ५. १०. २.

अर्थ—(यदि एक दिन न छोड दिया जायगा तो) वर्ष वैसे ही फूल जायगा जैसे चमडे की मशक ।

उत्तरायण और दक्षिणायन

अयन का अर्थ है चलना । ज्योतिष मे वर्ष को दो बराबर भागो मे विभाजित किया जाता है, जिनमे से एक को उत्तरायण और दूसरे को दक्षिणायन कहते है । जब क्षितिज पर का सूर्योदय-विन्दु दिनो-दिन उत्तर हटता रहता है तो उत्तरायण रहता है, अर्थात सूर्य उत्तर जाता रहता है । इसी प्रकार सूर्योदय-विन्दु को देखकर पता लगाया जा सकता है कि कब से कब तक दक्षिणायन है । परतु कभी-कभी उत्तरायण उस काल को मानते थे जिसमे सूर्योदय विंदु पूर्व विंदु से उत्तर रहता था और दक्षिणायन उसको जिसमे सूर्योदय पूर्व से दक्षिण हुआ करता था । इस सबध मे शतपथ ब्राह्मण यह लिखता है

वसंतो ग्रीष्मो वर्षाः। ते देवा ऋतवः। शरद्धेमंतः शिशिरस्ते पितरो स (सूर्यः) यत्रोदगावर्तते। देवेषु तर्हि भवति यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति ॥

शत ब्रा २ १ ३

अर्थ—वसंत, ग्रीष्म, वर्षा ये देव-ऋतु मे है। शरद, हेमंत और शिशिर ये पितर-ऋतु में है। जब उत्तर की ओर सूर्य रहता है तो ऋतुएँ देवो मे गिनी जाती है। जब दक्षिण की ओर रहता है तो पितरो मे।

इससे जान पडता है कि शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उत्तरायण तब होता था जब सूर्योदय पूर्व-विन्दु से उत्तर की ओर हट कर होता था।

तैत्तिरीय मे केवल इतना ही है कि ६ महीने तक सूर्य उत्तर जाता रहता है और ६ महीने तक दक्षिण —

तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण ॥

तै स ६ ५ ३

अर्थ—इसलिए आदित्य (सूर्य) छ मास दक्षिणायन रहता है और छ मास उत्तरायण।

अध्याय ३

मासों के नये नाम

नाम बदलने का कारण

महीनो के नाम तैत्तिरीय सहिता मे मधु, माधव, आदि थे। इसका प्रमाण पहले दिया जा चुका है। परतु इसमे सदेह नही कि महीनो के मधु, माधव, आदि, नामो का प्रचार धीरे-धीरे मिट गया और उनके बदले उनके नये नाम प्रचलित हो गये, जो तारो (नक्षत्रो) के नाम पर पडे थे। उदाहरणत, चैत्र (जिसे हिन्दी मे चैत कहते है) चित्रा नामक तारे पर पडा, जो रविमार्ग के समीप एक बहुत चमकीला तारा है। वस्तुत, सभी नाम इसी प्रकार पडे। नाम बदलने का कारण भी स्पष्ट है। मधु नाम का मास कौन-सा है, यह कैसे कोई बता सकता था? केवल गणना से। वह जोडता कि मधु नामक मास के बाद ग्यारह महीने और बीत गये है, इसलिए अब फिर मधु का महीना होना चाहिए। परतु यदि वह इसी तरह कई वर्षो तक लगातार प्रत्येक बारहवे महीने को मधु कहता चलता तो अवश्य ही ऋतुओ और महीनो मे कोई सबध न रहता, ठीक उसी प्रकार जैसे मुसलिम महीनो और ऋतुओं मे कोई सबध नही रहता। एक मुसलिम महीने का नाम मुहर्रम है और मुहर्रम का त्योहार उसी महीने मे पडता है। सभी ने देखा होगा कि यह त्योहार कभी गरमी मे पडता है, कभी जाडे मे, और कभी बरसात मे। ऋतु के हिसाब से त्योहार पहले ही पड जाता है। इसका कारण यह है कि पहले-जैसा ऋतु एक वर्ष मे, अर्थात लगभग ३६५¼ दिन मे, आता है; परतु बारह चाद्र मास लगभग ३५४ दिनो मे ही पूरे हो जाते है। यदि वर्ष मे सदा बारह ही चाद्र मास रक्खे जायें तो वर्ष का अत पुरानी ऋतु आने के लगभग ११ दिन पहले ही हो जायगा, जैसा मुसलिम वर्षो में होता है। परतु हमारे प्राचीन ऋषियो ने इस बात को स्वीकार नही किया कि महीनो और ऋतुओ मे सबध न रहे। उन्होने समुचित उपाय ढूँढ ही निकाला। उन्होने देखा कि पूर्णिमा के समय तारों के बीच चद्रमा की स्थिति और ऋतु मे प्रत्यक्ष

सबध है । इसलिए उन्होने तारो के हिसाब से महीना बताना आरभ किया और कुछ काल बीतने पर महीनो के नाम भी तारो के अनुसार पड गये । तैत्तिरीय सहिता के निम्न वाक्य से स्पष्ट है कि उस समय मास-निर्धारण के लिए तारो का वेध (अर्थात देखना) आरभ हो गया था —

> **न पूर्वयो फल्गुन्योरग्निमादधीत ।। एषा वै जघन्या रात्रि. सवत्सरस्य ।। यत् पूर्वेफल्गुनी ।। पृष्टित एव सवत्सरस्याग्निमाधाय ।। पापीयान् भवति ।। उत्तरयोरादधीत ।। एषा वै प्रथमा रात्रि. सवत्सरस्य ।। यदुत्तरेफल्गुनी ।। मुखत एव सवत्सरस्याग्निमाधाय ।। वसीयान् भवति ।।**
>
> **तै ब्रा १ १ २ ८**

अर्थ—पूर्वफल्गुनियो मे अग्नि की स्थापना न करे। यह वस्तुत सवत्सर की जघन्य (बुरी) रात है, जिसको पूर्वफल्गुनी कहते है । सवत्सर की पीठ की ओर अग्नि की स्थापना करने से पापी होता है । उत्तराफल्गुनी मे अग्नि.की स्थापना करे । यह सवत्सर की पहली (मुख्य) रात्रि है जिसे उत्तराफल्गुनी कहते है । जो सवत्सर के मुख की ओर अग्नि की स्थापना करता है वह श्रेष्ठ होता है ।

इसमे पूर्णिमा शब्द नही आया है, परतु निस्सदेह अर्थ यही है कि जब उत्तरा फाल्गुनी तारे के पास पूर्ण चन्द्र रहे तो समझना चाहिए कि वर्ष का आरभ हुआ और तब (यज्ञ के लिए) अग्नि जलानी चाहिए । अन्यथा, प्रत्येक मास मे चद्रमा कभी-न-कभी तो उत्तरा फाल्गुनी के पास पहुँचता ही है ।

नामकरण के नियम

आरभ मे नक्षत्र केवल चमकीले तारे या सुगमता से पहचाने जाने वाले छोटे तारका-पुज थे । परतु आकाश मे बराबर-बराबर दूरी पर तारे या तारका-पुजो के न रहने से असुविधा होती रही होगी। पीछे तो चद्रमार्ग (वस्तुत रविमार्ग) को ठीक बराबर २७ खडो मे विभाजित किया गया और प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा गया, जिससे नक्षत्र का पुराना अर्थ ही बदल गया । ऊपर दिये गये तैत्तिरीय ब्राह्मण के उद्धरण से यह स्पष्ट नही होता कि उस समय पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी आदि से तारे समझे जाते थे या रविमार्ग के सत्ताइसवे भाग । चाहे कुछ भी अभिप्राय रहा हो, इतना स्पष्ट है कि यज्ञादि धार्मिक कर्मो के लिए मधु, माधव, आदि मे से कोई एक नाम बताने के बदले ग्रथकार ने पूर्वा फाल्गुनी आदि का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा । यहाँ हम उस प्रथा को देख रहे है जिससे पीछे मासो के नवीन नामो का जन्म हुआ । यह कदापि न समझना चाहिए कि तैत्तिरीय सहिता या ब्राह्मण के

समय मे मासो के नाम फाल्गुन, चैत्र आदि पड गये थे। इन ग्रथो मे, और समकालीन अन्य ग्रथो मे फाल्गुन, चैत्र आदि शब्द कही आये ही नही है। ये नाम तो बहुत काल पीछे के साहित्य मे आते है। तब महीनो के नामकरण के लिए निम्न नियम था —

पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी मासे तु यत्र सा ।

नाम्ना स पौषो माघाद्याश्चैवमेकादशा परे ॥

अमरकोष, कालवर्ग १४

अर्थ—उस मास को जिसमे पूर्णिमा पुष्य नक्षत्र मे होती है पौष नाम दिया जाता है (और किसी मास को नही), इसी प्रकार शेष ग्यारह महीनो के, अर्थात माघ इत्यादि के, नाम भी पडते है।

सूर्य-सिद्धान्त मे निम्न नियम है

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ।

अर्थ—पूर्णिमा के अत मे चद्रमा जिस नक्षत्र मे रहता है उसी के नाम पर मासो के नाम पडे है।

चद्रमा की जटिल गति

यह भी देख लेना उचित होगा कि प्राचीन ऋषियो को चद्रमा की जटिल गति के कारण क्या-क्या कठिनाइयाँ पडी होंगी। पहली कठिनाई तो यह पडी होगी कि पूर्णिमा के अवसर पर मद तारे सभी छिप जाते है। इसलिए ठीक पता नही चलता रहा होगा कि तारो के बीच चद्रमा कहाँ है। यह अवश्य सत्य है कि चमकीले तारे पूर्णिमा पर भी दिखायी पडते रहते है। उन्ही से अनुमान करना पडता रहा होगा कि पूर्णिमा के अवसर पर चद्रमा तारो के सापेक्ष कहाँ पर है।

चतुर्दशी का चद्रमा।

चतुर्दशी का चद्रमा वृत्ताकार ही जान पडता है, यह चित्र पैमाने के अनुसार सावधानी से खीचा गया है।
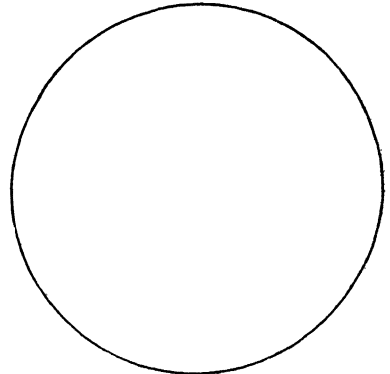
दूसरी कठिनाई इससे हुई होगी कि ठीक पता नही चलता कि पूर्णिमा कब हुई। पूर्णिमा के २४ घटे पूर्व या २४ घटे पश्चात भी चद्रमा का

आकार, जैसा बगल के चित्र मे दिखाया गया है, गोल (वृत्ताकार) ही जान पडता है।

परतु एक दिन मे चद्रमा आकाश मे लगभग १३° (अर्थात अपने व्यास का लगभग २६ गुना) चल लेता है। इसलिए ठीक पता नही लगता कि किस तारे के पास रहने पर पूर्णिमा हुई। कोई विशेष पूर्णिमा पूर्वा फाल्गुनी के पास हुई या उत्तरा फाल्गुनी के पास इसे ठीक-ठीक निर्णय कर सकने की शक्ति निस्सदेह सैकडो वर्षो मे आयी होगी।

फिर, इससे भी कठिनाई पडी होगी कि १२ चाद्र मास बीतने पर जब फिर पूर्णिमा होती है तो चद्रमा अपने पुराने स्थान पर नही रहता। कारण यह है कि ३६५¼ दिन के वर्ष मे और २९½ दिन के चाद्र मास मे सरल सबध नही है एक वर्ष मे पूरे-पूरे महीने नही है। इसलिए यदि गत वर्ष चैत मे पूर्णिमा तब हुई थी जब चद्रमा चित्रा नामक तारे के बहुत निकट था तो इस वर्ष चित्रा तक पहुँचने से लगभग ११° पहले ही (अर्थात चद्रमा के व्यास के लगभग बाईस गुनी दूरी रहने पर) पूर्णिमा होगी। इसी प्रकार प्रति वर्ष पूर्णिमा के क्षण पर चद्रमा का स्थान ११° पिछडता चला जाता है और तब जब बीच मे कभी एक अधिमास लग जाता है यह स्थान एकाएक लगभग ३०° आगे बढ जाता है (चित्र देखे)। स्थिति वैसी ही है जैसे आप
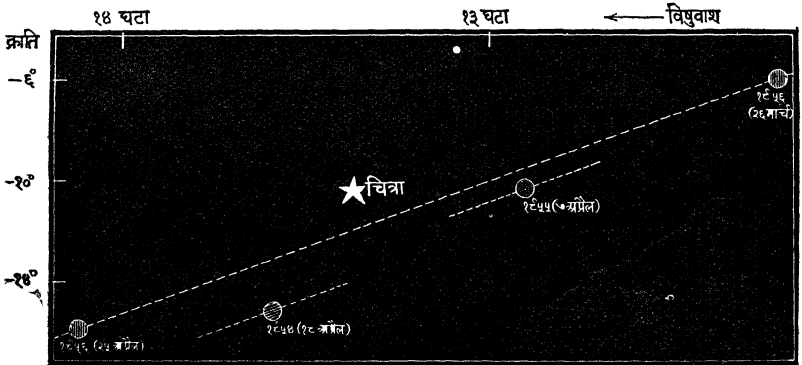
चैत्र मे पूर्णिमा

विविध वर्षो के एक ही मास मे भी पूर्णिमा पर चद्रमा एक स्थिति मे नही रहता है। यहाँ तीन वर्षो मे चित्रा नामक तारा के पास होने वाली पूर्णिमाओ पर चद्रमा की स्थितियाँ दिखायी गयी है।

की घडी प्रति दिन ११ मिनट सुस्त जाती हो और जब आप उसे मिलाये तो एकदम तीस मिनट तेज कर दे । घडी के सुस्त जाने का पता तो एक-आध दिन मे ही लग जाता है, परतु चद्रमा की स्थिति मे अतर जानने के लिए वर्ष भर तक ठहरना पडता है और स्मरण रखना पडता है कि पिछले वर्ष पूर्णिमा पर चद्रमा कहाँ था, ऊपर से कठिनाई यह भी रहती है कि ठीक पता नही चलता कि पूर्णिमा इस क्षण हुई, या कई घटे पहले हुई जब दिन था और तारे दिखायी न पडते थे, या कई घटे पीछे होगी, जब सूर्योदय हो जायगा और तारे दिखायी न पडेगे ।

चन्द्रमार्ग स्थिर नही है

केवल पूर्वोक्त ही कठिनाई होती तो भी कुशल होता । परतु एक दूसरे प्रकार की कठिनाई भी पडी होगी । वह इस कारण कि चद्रमार्ग आकाश मे स्थिर नही रहता । यदि चद्रमा का मार्ग स्थिर भी होता तो, जैसा हम ऊपर देख चुके है, कठिनाई से पता चलता कि चद्रमा के किस स्थान पर पहुँचने पर पूर्णिमा हुई, परतु जब मार्ग ही बदला करता है तो अवश्य ही कठिनाई बहुत बढ जाती है । इस बात को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए विचार करे कि यदि चद्रमार्ग अचल होता और मघा नामक तारा उसके पास इस प्रकार स्थित होता कि चद्रमा उसे प्राय छूता हुआ जाता तो अवश्य ही चद्रमा उसे छूता हुआ प्रति मास जाता और प्रति वर्ष एक मास ऐसा आता जब उस तारे के आस-पास ही कही चद्रमा के रहने पर पूर्णिमा होती। उस तारे तक पहुँचने मे अधिक से अधिक चौदह-पद्रह अश पूर्णिमा पर बचे रहते या इतना ही अधिक तय हो गया रहता। परतु चद्रमा का मार्ग स्थिर नही है । इसलिए यदि चद्रमा इस वर्ष किसी तारे को छूता हुआ निकलना है तो सभव है आगामी वर्ष वह उस तारे को छू न पाये और उसकी बगल से निकल जाय । तब एक वर्ष और बीतने पर चद्रमा उस तारे से अधिक दूरी से होता हुआ निकल जायगा, इत्यादि, ९ वर्ष बाद वह उस तारे से लगभग १०° (अर्थात चद्र-व्यास की बीस गुनी दूरी) पर से निकल जायगा, तब दूरी कम होने लगेगी और लगभग १८½ वर्ष बाद चद्रमा फिर उस तारे को छूता हुआ चलेगा, और पुराना कार्य-क्रम फिर दोहराया जायगा । ऊपर के चित्र मे ३ वर्षो के लिए चद्रमार्ग दिखाया गया है जिससे पूर्वोक्त बाते अधिक स्पष्ट हो जायँगी ।

चद्रमार्ग ठीक-ठीक किस प्रकार हटता-बढता है इसे समझने के लिए चद्रमार्ग और रविमार्ग मे अतर समझ लेना अच्छा होगा । तारो के बीच सूर्य भी चलता है और चद्रमा भी । परतु सूर्य का मार्ग निर्धारित करना कठिन है, क्योकि सूर्य के

उदित होने पर तारे अदृश्य हो जाते हैं। सूर्य का मार्ग इसे देखकर निर्धारित किया गया होगा कि सूर्योदय के पहले चमकीले तारे कहाँ रहते हैं। रविमार्ग तारो के हिसाब से अचर है, प्रतिवर्ष विशेष तारो से उतना ही दाये या बाये हट कर रविमार्ग रहता है। बरसो तक देखते रहने पर कुशाग्र-बुद्धि ऋषियो मे से कुछ को रविमार्ग का ठीक पता (या प्राय ठीक पता) लग ही गया होगा।

चद्रमा के एक मास के मार्ग को निर्धारित करना अपेक्षाकृत बहुत सरल है। कोई भी दो-चार महीने तक चद्रमा को प्रति रात्रि देखता रहे तो उसे चद्र-मार्ग का अनुमान हो सकता है। यदि तारो का चित्र बना लिया जाय और उसमे चद्रमा की स्थितियो को प्रति रात्रि अकित किया जाय तो और भी शीघ्र पता चल जायगा कि चद्रमार्ग क्या है। चद्रमा तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगभग २७$\frac{1}{3}$ दिन मे लगाता है। यही कारण है कि एक चक्कर को सत्ताइस (या कभी-कभी अट्ठाइस) भागो में बाँटा गया, जिनमे से प्रत्येक एक नक्षत्र कहलाया।

आकाश को हम गोले से निरूपित कर सकते हैं जिसे खगोल कहते हैं। इसका चित्र बगल मे दिखाया गया है। आकाश को देखने वाला इस गोले के केंद्र द्र पर रहता है, परतु चित्र मे हम खगोल को बाहर से देख रहे हैं। रविमार्ग इस गोले को दो बराबर भागो में बाँटता है। चद्रमार्ग भी खगोल को दो बराबर भागो मे बाँटता है, परतु चद्रमार्ग रवि-मार्ग को ५° के कोण पर काटता है[1]। इसका परिणाम यह होता है कि चद्रमार्ग का आधा भाग रविमार्ग के उत्तर

खगोल।
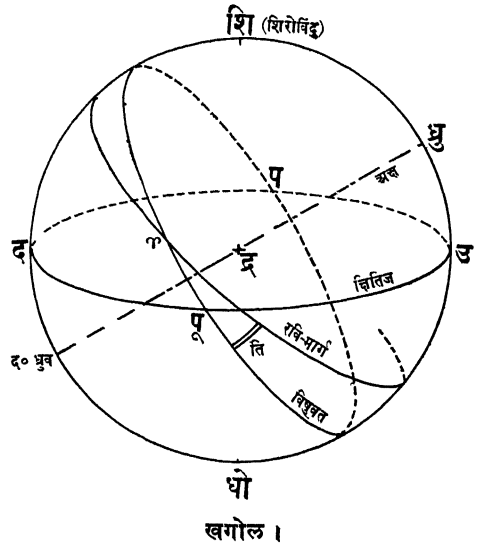
रविमार्ग विषुवत को लगभग २३$\frac{1}{2}$ अश के कोण पर काटता है।

[1] चित्र मे स्पष्टता के लिए इसे नही दिखाया गया है।

रहता है, आधा दक्षिण। इसलिए प्रत्येक मास चद्रमा आधे समय तक रविमार्ग के उत्तर रहता है, आधे समय तक दक्षिण।

खगोल पर बने चित्र मे चद्रमार्ग रविमार्ग को दो विदुओ मे काटता है। इनमे से प्रत्येक को 'पात' कहते है। यदि इन्हे पृथक-पृथक बताना हो तो एक को आरोही पात और दूसरे को अवरोही पात कहा जा सकता है[1]।

अब हम बता सकते है कि चद्रमार्ग किस प्रकार अपनी स्थिति बदलता रहता है। रविमार्ग और चद्रमार्ग के बीच का कोण नही बदलता, और न रविमार्ग चलता है, केवल दोनो पात पीछे मुँह धीरे-धीरे बराबर चलते रहते है और प्रत्येक पात एक चक्कर लगभग १८½ वर्ष मे लगाता है। इससे सारा चद्रमार्ग अपना स्थान बदलता रहता है।

इसका एक परिणाम यह होता है कि यदि आज चद्रमार्ग का उत्तरतम भाग किसी तारे के पास है तो आज से ९ वर्ष बाद, जब आरोही पात आधा चक्कर लगाकर उलटी ओर पहुँच जायगा, चद्रमा उस तारे के निकटतम तब पहुँचेगा जब वह उससे लगभग १०° (दस अश) पर रहेगा (इस पन्ने की पीठ पर चित्र देखे)।

एक ही तारे के कभी समीप रहने और कभी दूर रहने से तारो को देखकर महीनो के बताने मे कठिनाई पडती रही होगी। परतु पर्याप्त काल बीतने पर सब बाते स्पष्ट हो गयी होगी।

सभवत एक कठिनाई और पडी होगी। चद्रमा अपेक्षाकृत हमारे बहुत निकट है, तारे बहुत दूर है। इससे कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई-कोई तारा चद्रमा की आड मे पड जाता है और तब छिप जाता है। बात वैसी ही है कि किसी दूरस्थ मदिर का किसी निकटस्थ पेड के पीछे छिपना। एक स्थान से मदिर पेड के ठीक पीछे पड सकता है, दूसरे स्थान से वह पेड की बगल मे दिखायी पड सकता है। इसी प्रकार दस-बीस मील के ही अतर पर ऐसा हो सकता है कि एक स्थान से कोई तारा चद्रमा के पीछे छिप जाय और दूसरे स्थान से वह छिप न पाये। इन सब बातो से चद्रमा के विषय मे पर्याप्त कठिनाई हमारे प्राचीन नक्षत्र-दर्शो को पडी होगी।

इन सब कठिनाइयो को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, आदि, से वर्ष का अत और आरभ बताना सैकडो वर्षो मे आया होगा।

[1] इनके विशेष नाम भी है (राहु और केतु), परतु उनसे पाठको को कुछ भ्रम हो सकता है। इसलिए उनका प्रयोग यहाँ नही किया जायगा।
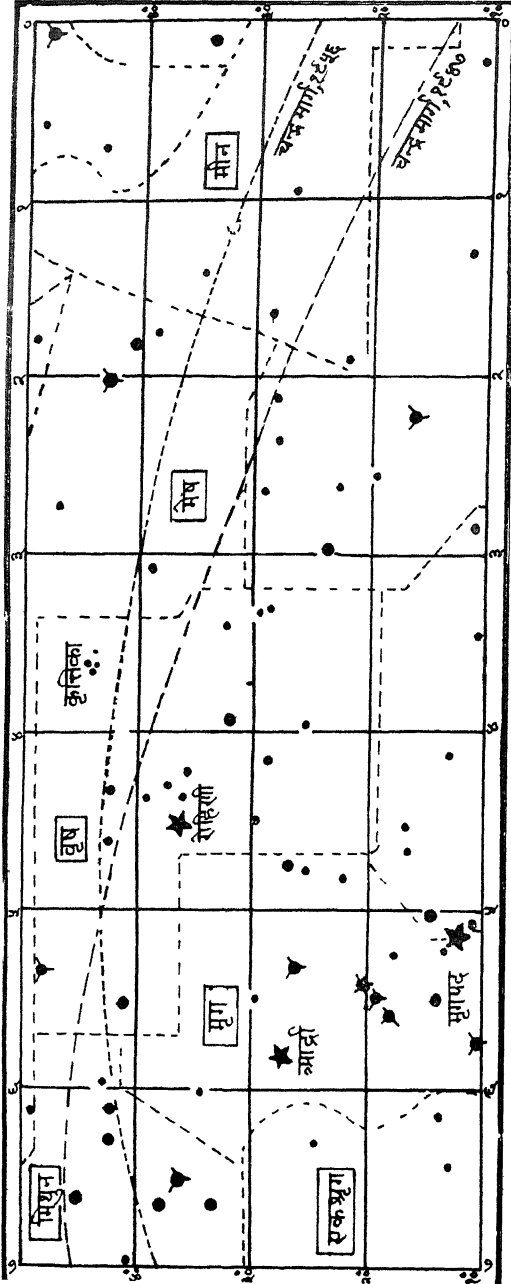
चद्रमार्ग, १९४७ और १९५६ में

देखे कि ९ वर्ष मे चद्रमार्ग की स्थिति बहुत बदल जाती है। १९५६ के चद्रमार्ग पर चद्रमा विदुमय वृत्त से पैमाने के अनुसार दिखाया गया है, जिससे इसका अच्छा अनुमान किया जा सकता है कि चद्रमार्ग कितना हटता है। चद्रमार्ग की स्थितियो मे ९$\frac{1}{4}$ वर्ष मे महत्तम अतर पडता है। १८$\frac{1}{2}$ वर्ष मे चद्रमार्ग अपनी पुरानी स्थिति पर पहुँच जाता है।

और तैत्तिरीय ब्राह्मण के काल के बहुत पहले से चद्रमा का नियमित रूप से वेध आरभ हो गया रहा होगा।

अमांत या पूर्णिमात ?

महीने का आरभ अमावस्या से होता था या पूर्णिमा से ? यदि महीने का अत अमावस्या से हो तो उसे अमात मास कहते है, पूर्णिमा से हो तो उसे पूर्णिमात कहते है। पूर्णिमात मासो मे यह विशेषता है कि इधर चद्रमा पूर्ण हुआ तो उधर मास भी। अमात मास का आरभ तब होता है जब सूर्य और चद्रमा के भोगाशो (मोटे हिसाब से दिशाओ) का अतर शून्य होता है, और शून्य अतर से मास आरभ करना अधिक स्वाभाविक जान पडता है। सारे ज्योतिष मे अमात मासो की गणना होती है। अधिमास (लौद का महीना) भी अमावस्या से आरभ होता है और उसका अत आगामी अमावस्या पर होता है। परतु उत्तर प्रदेश मे, और कई अन्य प्रदेशो मे भी, पूर्णिमात मास ही चलते है।

प्राचीन साहित्य मे भी पूर्णिमात प्रथा का वर्णन मिलता है। पूर्णमासी या पौर्णमासी शब्द से ही स्पष्ट है कि मास के पूर्ण होने का यह दिन था।

तैत्तिरीय सहिता कहता है

बर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावास्यायां ॥

तै स १ ६ ७.

अर्थ—पूर्णमासी के व्रत को बर्हि (कुशो) से ग्रहण करना चाहिए और अमावस्या के व्रत को वत्सो (=बछडो) से।

इससे स्पष्ट है कि मास पूर्णिमा पर पूर्ण होता था।

परतु तैत्तिरीय सहिता के एक अन्य स्थान पर पूर्णिमात और अमात दोनो पद्धतियो का आभास मिलता है

अमावास्यया मासान्सपाद्याहरुत्सृजति अमावास्यया हि मासान् सपश्यति
पौर्णमास्या मासान्संपाद्याहरुत्सृजति पौर्णमास्या हि मासान्सपश्यति ॥

तै सं ७ ५ ६. १५.

अर्थ—अमावस्या से मासो को समाप्त करके एक दिन को कुछ लोग छोड[1] देते है, क्योकि वे अमावस्या से ही मासो को देखते है। (कुछ लोग) पूर्णमासी से

[1] अर्थात उस दिन कोई अनुष्ठान नही करते।

मासो को समाप्त करके एक दिन छोड देते हैं क्योकि वे पूर्णमासी से मासो को देखते हैं ।

एक आगामी अध्याय मे प्रमाण दिया जायगा कि सभवत तैत्तिरीय सहिता ३००० ई० पू० के पहले का सगृहीत ग्रथ है । ब्राह्मण इस दिनाक के बाद के ग्रथ हैं । न तो तैत्तिरीय सहिता मे और न किसी ब्राह्मण मे चैत्र, वैशाख आदि नाम हैं । परतु ये नाम वेदाग ज्योतिष मे हैं जो सभवत. १२०० ई० पू० का ग्रथ है । इससे अनुमान किया जा सकता है कि महीनो के नाम मे परिवर्तन लगभग २००० ई० पू० मे हुआ होगा ।

अध्याय ४

वैदिक काल में दिन, नक्षत्र, आदि

पक्ष

अति प्राचीन समय मे सप्ताह का कुछ महत्त्व नही था, और न रविवार, सोमवार आदि नाम ही प्रचलित थे। ये नाम तो ग्रहो के आधार पर पडे है और वेद, ब्राह्मण, सहिता आदि मे इन नामो का कही उल्लेख नही है। उस काल मे पक्ष और उसके उपविभाग चलते थे। पक्ष महीने मे दो होते थे। इनका उल्लेख कई स्थानो मे मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण मे पक्ष के उपविभागो के नाम इस प्रकार है —

संज्ञानं विज्ञान दर्शा दृष्टेति ॥ एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयाति ॥ प्रस्तुत विष्टुतं सुतासुन्वतांति ॥ एतावनुवाकावपरपक्षस्याहोत्राणां नामधेयानि ॥

तै० ब्रा० ३. १०. १०. २.

अर्थ—सज्ञान, विज्ञान, दर्शा, दृष्टा ये दो-दो करके पूर्व पक्ष के अहोरात्र (= दिनरात) के नाम है। प्रस्तुत, विष्टुत, सुत, असुन्वत ये दो-दो करके अपर पक्ष के अहोरात्र के नाम है।

अन्य स्थानो मे कुछ भिन्न नाम है, परतु सब सूचियो को यहाँ देना आवश्यक नही जान पडता।

वैदिक काल में तिथि

वैदिक काल के साहित्य मे तिथि शब्द उस अर्थ मे कही नही आया है जिसमे इसे हम आज लेते है। ऐतरेय ब्राह्मण मे तिथि की परिभाषा यो दी गयी है

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः ॥

ऐ. ब्रा. ३२. १०.

अर्थ—जहाँ चद्रमा अस्त होता और उदित होता है वह तिथि है।

इससे स्पष्ट है कि उस काल मे तिथि का कुछ और ही अर्थ था। पीछे तिथि का अर्थ वह समय हो गया जितने मे चद्रमा सूर्य के सापेक्ष १२° चलता है और इसी

अर्थ मे यह शब्द आज भी प्रयुक्त होता है। सामविधान ब्राह्मण मे कृष्ण चतुर्दशी, कृष्ण पचमी, शुक्ल चतुर्दशी आदि शब्द आये है[1]। बहुत सभव है कि पचमी आदि से यही बताया जाता रहा होगा कि यह महीने का पाँचवाँ आदि दिन है। पाठक जानते होगे कि तिथियो मे यह विशेषता है कि बीच-बीच मे एक तिथि छोड दी जाती है। वैदिक काल मे ऐसा न होता रहा होगा। क्षय तिथि की चर्चा कही भी वैदिक साहित्य मे नही है। पचदश का भी कही-कही उल्लेख है। उदाहरणार्थ, तैत्तिरीय ब्राह्मण मे यह है

चंद्रमा वै पंचदश ॥ एष हि पचदश्यामपक्षीयते ॥ पंचदश्यामापूर्यते ॥

तै. ब्रा. १. ५. १०.

अर्थ—चद्रमा का नाम पचदश है, यह पन्द्रह दिन मे क्षीण होता है और पद्रह दिन मे पूरा होता है।

परतु इन सब उद्धरणो से भी यह नही सिद्ध होता कि ब्राह्मणो के समय मे तिथियो का उपयोग होता था। शकर बालकृष्ण दीक्षित का मत है[2] कि पहले पतिपदा, द्वितीया इत्यादि शब्द पहली, दूसरी, इत्यादि, रातो के लिए प्रयुक्त होते रहे होगे। पीछे उनका अर्थ बदल गया होगा और उनका अर्थ वह हो गया होगा जो अब ज्योतिष मे दिया जाता है।

चद्रमा क्यो चमकता है?

तैत्तिरीय सहिता के समय मे भी लोग जानते थे कि चद्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है, क्योकि उसे सूर्य-रश्मि कहा गया है, जिसका अर्थ है वह पिड जिस पर सूर्य की रश्मियाँ पडती हो

सूर्यरश्मिश्चंद्रमा गंधर्वः ॥

तै सं ३ ४ ७ १

अर्थ—चद्रमा या गधर्व (=चद्रमा) को सूर्यरश्मि कहते है।

ऐतरेय ब्राह्मण मे अमावस्या का भी कारण वताया गया है। लिखा है कि—

चंद्रमा वा अमावास्यामादित्यमनुप्रविशति　आदित्याद्वै चंद्रमा जायते।

ऐ ब्रा ४० ५

अर्थ—चद्रमा अमावस्या पर आदित्य मे प्रवेश करता है। आदित्य से ही चन्द्रमा उत्पन्न होता है।

[1] **सा० वि० ब्रा०, २।६, २।८, ३।३।** [2] **भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ ४४।**

दिन के विभाग

दिन को कभी दो भागो मे बॉट कर उन्हे पूर्वाह्ण और अपराह्ण कहते थे और कभी तीन भागो मे बॉट कर उन्हे पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण कहते थे। दिन को चार भागो मे विभाजित करने की प्रथा भी थी और तब प्रत्येक को एक प्रहर कहते थे (जिसे अब हिन्दी मे पहर कहते है)। इनके नाम तब पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्ण थे। दिन को १५ भागो मे बॉट कर प्रत्येक को एक मुहूर्त भी कहते थे। ये सब शब्द वैदिक काल से ही चले आ रहे है। परन्तु अब कुछ अर्थ बदल गया है। अब तो फलित ज्योतिष के आधार पर कुछ मुहूर्तो को शुभ और शेष को अशुभ मानते है, और साधारणत मुहूर्त से शुभ मुहूर्त समझा जाता है। सिनेमा-पत्रिकाओ मे बहुधा नवीन फिल्मो के "मुहूर्त" की सूचना रहती है और जान पडता है कि मुहूर्त का अर्थ सिनेमा-निर्देशको मे वह जलसा हो गया है जो नवीन फिल्म के आरभ के सबध मे किया जाता है।

नक्षत्र

आरभ मे नक्षत्र शब्द सभी तारो के लिए प्रयुक्त होता था। उदाहरणत ऋक् सहिता मे यह है

अपत्ये तायवो यथा नक्षत्रा यंत्यक्तुभिः ॥ सूराय विश्वचक्षसे ॥

ऋ सं १ ५० २, अथ स १३ २ १७; २० ४७ १४

अर्थ—सर्व शक्तिमान सूर्य के आगमन से नक्षत्र (=तारे) और रात चोर की तरह भागते है।

परतु धीरे-धीरे अवश्य ही नक्षत्र शब्द उन तारो के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगा होगा जो चद्रमार्ग मे पडते है। सभवत. निम्न अवतरण मे नक्षत्र से उन तारो को समझना चाहिए जो चद्रमार्ग मे है

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥

ऋ सं १० ८५ २, अथ स १४ १ २

अर्थ—चद्रमा तारो के बीच रहता है।

तैत्तिरीय सहिता के निम्न अनुवाक मे सब नक्षत्रो के नाम गिनाये गये है। अवश्य ही यहॉ नक्षत्र शब्द से उन तारका-पुजो को समझना चाहिए जो चद्रमार्ग मे पडते है

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताग्नेरुचस्थ प्रजापतेर्धातुः सोमस्यर्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता मृगशीर्षं नक्षत्र सोमो देवतार्द्रानक्षत्रं रुद्रो देवता पुनर्वसूनक्षत्रमदितिर्देवता तिष्यो

नक्षत्र बृहस्पतिर्देवताश्रेषा नक्षत्र सर्पा देवता मघा नक्षत्र पितरो देवता फल्गुनी नक्षत्र भगो देवता फल्गुनी नक्षत्रमर्यमा देवता हस्तो नक्षत्र सविता देवता चित्रा नक्षत्रमिद्रो देवता स्वाती नक्षत्र वायुर्देवता विशाखे नक्षत्रमिद्राग्नी देवतानूराधा नक्षत्र मित्रो देवता ज्येष्ठा नक्षत्रमिद्रो देवता विचृतौ नक्षत्र पितरो देवताषाढानक्षत्रमापो देवताषाढा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता श्रोणा नक्षत्र विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्र वसवो देवता शतभिषङ्नक्षत्रमिद्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमजएकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता रेवती नक्षत्र पूषा देवताऽश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवतापभरणीनक्षत्र यमो देवता . .॥

तै, सं ४.४.१०

(तू है) (१) कृत्तिका नक्षत्र, अग्नि देवता। तू अग्नि की चमक है, प्रजापति की, विधाता की, सोम की। त्वारुचे (तुझको प्रकाश के लिए), त्वा द्युते (तुझको द्युति के लिए), त्वा भासे (तुझको काति के लिए), त्वा ज्योतिषे (तुझको ज्योतिष के लिए)। (तू है) (२) रोहिणी नक्षत्र, प्रजापति देवता। (३) मृगशीर्ष नक्षत्र, सोम देवता। (४) आर्द्रा नक्षत्र, रुद्र देवता। (५) दोनो पुनर्वसु नक्षत्र, अदिति देवता। (६) तिष्य नक्षत्र, बृहस्पति देवता। (७) आश्लेषा नक्षत्र, सर्प देवता। (८) मघा नक्षत्र, पितर देवता। (९) पूर्वा फल्गुनी नक्षत्र, भग देवता। (१०) उत्तरा फल्गुनी नक्षत्र, अर्यमा देवता। (११) हस्त नक्षत्र, सविता देवता। (१२) चित्रा नक्षत्र, इद्र देवता। (१३) स्वाती नक्षत्र, वायु देवता। (१४) दो विशाखाओ का नक्षत्र, इन्द्राग्नी देवता। (१५) अनुराधा नक्षत्र, मित्र देवता। (१६) ज्येष्ठा नक्षत्र, इद्र देवता। (१७) दो विचृत्तो का नक्षत्र, पितर देवता। (१८) आषाढा नक्षत्र, आप देवता। (१९) आषाढा नक्षत्र, विश्वेदेवा देवता। (२०) श्रोणा नक्षत्र, विष्णु देवता। (२१) श्रविष्ठा नक्षत्र, वसु देवता। (२२) शतभिषक् नक्षत्र, इन्द्र देवता। (२३) प्रोष्ठपदा नक्षत्र, अजएकपात् देवता। (२४) प्रोष्ठपदा नक्षत्र, अहिर्बुध्नि देवता। (२५) रेवती नक्षत्र, पूषा देवता। (२६) अश्वयुज नक्षत्र, अश्विन् देवता। (२७) अपभरणी नक्षत्र, यम देवता।

तारा समूह

निम्न उद्धरण से नक्षत्र का अर्थ तारा-समूह होना अधिक निश्चित हो जाता है

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
अष्टाविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्र मृगशिर शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयन मघा मे ।। २ ।।
पुण्य पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति· सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ।। ३ ।।
अन्न पूर्वा रासंतां मे अषाढा ऊर्ज ये ह्युत्तर आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवण· श्रविष्ठा· कुर्वता सुपुष्टिम् ।। ४ ।।
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयि भरण्य आ वहन्तु ।। ५ ।।

अथ स १९ ७

भावार्थ—मै अपने कल्याण के लिए वाणी से आकाश की पूजा करता हूँ जहाँ अट्ठाइस सुमति (=तारापुज ?) सर्प के रूप मे चमकते है[१] ।। १ ।।

कृत्तिका और रोहिणी मेरे निमत्रण को सुगमता से स्वीकार करे । मृगशिर और आर्द्रा कल्याणकारी हो । पवित्र पुनर्वसू, पुष्य, ज्योतिर्मय आश्लेषा, मघा मेरे लिए अच्छे मार्ग को दिखाये ।। २ ।।

दोनो पूर्व फल्गुनियाँ, हस्त नक्षत्र, चित्रा, स्वाति मेरे लिए सुखकारी हो । पूजा रूप विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और अच्छा नक्षत्र मूल मेरे लिए कल्याणप्रद हो ।। ३ ।।

पहली अषाढा नक्षत्र मुझे अन्न दे । उत्तर अषाढा मुझे तेज दे । शुभ अभिजित् मुझे पुण्यशील बनाये । श्रवण और श्रविष्ठ मुझे शक्ति दे ।। ४ ।।

बडे शतभिषक् मुझे स्वतत्रता दे । दोनो प्रोष्ठपद कल्याण करे । रेवती और अश्वयुज मुझे भाग्यशाली करे और भरणी नक्षत्र मुझे धन दे ।। ५ ।।

[१] चंद्रमा तारों के सापेक्ष एक चक्कर २७$\frac{1}{3}$ दिन में लगाता है । २७$\frac{1}{3}$ से निकटतम पूर्ण सख्या २७ है । इसलिए चद्रमार्ग में या उसकी अगल-बगल में पड़ने वाले तारो में से २७ तारे चुन लिये गये थे जिनके बताने से सूचित किया जाता था कि आज आकाश में चंद्रमा किस तारे के पास है, परंतु कभी-कभी अट्ठाइस तारे इस काम के लिए चुने जाते थे, जैसे यहाँ, क्योकि २८ भी २७$\frac{1}{3}$ के निकट ही है । बाद में केवल इन्हीं तारो को लोग नक्षत्र कहते थे, यद्यपि नक्षत्र का अर्थ है कोई तारा । इसके बहुत बाद नक्षत्र का अर्थ हुआ चंद्रमार्ग (अथवा रविमाग) का ठीक सत्ताइसवाँ भाग, और इन भागो के नाम भी कृत्तिका, रोहिणी आदि ही पड़े ।

इति० ३

ऋक् सहिता मे ऋक्ष (=सप्तर्षि ?) की भी चर्चा है :

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्त ददृशे कुह चिद्दिवेयुः ॥

ऋ. सं. १. २४. १०

अर्थ—ये जो ऋक्ष है, जो ऊपर आकाश मे स्थित है और रात मे दिखायी पडते है, वे दिन मे कहाँ चले जाते है ?

इसपर शतपथ ब्राह्मण ने यह टीका की है कि—

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते ॥

श ब्रा २ १. २ ४

अर्थ—सप्तर्षियो को ही पहले ऋक्ष कहते थे ।

एक बात यहाँ देखने योग्य है कि पाश्चात्य ज्योतिष मे सप्तर्षि तारामडल को अब भी उर्सा मेजर या ग्रेट बेयर (=ऋक्ष=भालू)[1] कहते है ।

कुछ अन्य तारो की भी चर्चा मिलती है । परतु सब उद्धरण यहाँ देना आवश्यक नही जान पडता ।

ग्रहण

ग्रहणो की चर्चा भी वेदो मे है, परतु कही कोई ऐसी बात नही लिखी है जिससे पता चले कि वेदकालीन ऋषियो को ग्रहण के कारण का कितना पता था । परतु एक स्थान मे यह है

यं वै सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः ॥

अत्रयस्तमन्वविंदन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥

ऋ सं. ५. ४० ९

जिस सूर्य को असुर के पुत्र स्वर्भानु ने अधकार मे छिपा दिया था उसे अत्रि लोगो ने पा लिया । यह शक्ति दूसरो मे तो थी नही ।

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सभवत अत्रि के पुत्र ग्रहण की किसी प्रकार की गणना कर सकते रहे होगे और पहले से बता सकते रहे होगे कि सूर्यग्रहण का अत कब होगा ।

[1]ऋक्ष शब्द के संस्कृत में दो अर्थ थे: (१) तारा (२) रीछ । संभवतः कभी भूल से ऋक्ष रीछ का पर्याय समझ लिया गया होगा ।

ग्रह

चद्रमार्ग मे अथवा उसके पास ही ग्रह रहते है। वे तारो के ही समान होते है, परतु कुछ ग्रह उनसे बहुत चमकीले होते है। इसलिए अवश्य ही ग्रहो को प्राचीन ऋषियो ने देखा होगा। उन्होंने यह भी देखा होगा कि ये अन्य तारो के सापेक्ष चलते रहते है। कोई भी व्यक्ति जो चद्रमा की स्थिति जानने के लिए तारो को देखा करेगा अवश्य ही इसका पता पा जायगा। इसलिए ग्रहो की चर्चा स्वाभाविक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण मे बृहस्पति के जन्म का भी उल्लेख है। लिखा है कि—

बृहस्पति. प्रथम जायमान. ॥ तिष्यं नक्षत्रमभिसंबभूव ॥

तै ब्रा ३ १ १

अर्थ—जब बृहस्पति पहले प्रकट हुआ वह तिष्य (=पुष्य) नक्षत्र के पास था।

दीक्षित ने इसका अर्थ यह लगाया है कि कभी पुष्य तारा बृहस्पति ग्रह की ओट मे हो गया होगा (आधुनिक ज्योतिष बताता है कि यह सभव है)। अपनी गति के कारण जब दो-चार घटे मे बृहस्पति पुष्य से पृथक हुआ होगा तो लोगो ने समझा होगा कि बृहस्पति का जन्म हुआ। तब बृहस्पति पुष्य के निकट रहा होगा।

शतपथ ब्राह्मण मे शुक्र की चर्चा यो है

चक्षुषी हवा अस्य शुक्रामथिनौ। तद्वा एष एव शुक्रो य एष तपति तद्य देष एतत्तपति तेनैषशुक्रश्चद्रमा एव मथी ॥ १ ॥ . इमामु हैके शुक्रस्य पुरोरुचं कुर्वंति। अय वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जराय् रजसो विमान इति तदेतस्य रूपं कूर्मो य एष तपतीति यदाहज्योतिर्जरायूरिति ॥ ८ ॥

शत ब्रा ४ २ १

अर्थ—शुक्र और मथी उसकी दो आँखे है। शुक्र वही है जो चमकता है। यह चमकता है इसलिए इसको शुक्र कहा गया है। चद्रमा मथी है। कुछ लोग 'अय वेन.' इन शब्दो से आरभ होने वाली ऋचा को 'शुक्र' के लिए पुरोरुवा मत्र (अर्थात आरभ मे पढे जाने वाले मत्र) बनाते है। वह ऋचा यह है "अय वेनश्चोदयति पृश्निगर्भा, ज्योतिर्जराय रजसो विमान"।

तैत्तिरीय सहिता मे शुक्र और चद्रमा के साथ ही बृहस्पति का नाम आया है

वस्व्यसि रुद्रास्यदितिस्यादित्यासि शुक्रासि चंद्रासि बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वतु।

तै. सं. १. २. ५.

अर्थ—(हे सोम को खरीदने वाले!) तू वस्वी है, अर्थात वसु आदि देवो का रूप है। रुद्र है, अदिति है, आदित्य है, शुक्र है, चद्र है, बृहस्पति है। तू सुख से रह।

अथर्व सहिता मे 'ग्रह' शब्द आया है —

उत्पाताः पार्थिवातरिक्षाछनो दिविचरा ग्रहा· ॥७॥
श नोभूमिर्वेपमाना शमुल्कानिर्हत च यत् ॥८॥
नक्षत्रमुल्काभिहत शमस्तु ॥९॥
श नो ग्रहाश्चाद्रमसा शमादित्याश्च राहुणा ॥
श नो मृत्युर्धूमकेतु श रुद्रास्तिग्मतेजस· ॥१०॥

अथ सं १९. ९.

पृथ्वी और अन्तरिक्ष के उत्पात और द्यौलोक के ग्रह हमारे लिए कल्याणकारी हो जायँ। काँपती हुई भूमि कल्याणकारक हो। और वह भी जो उल्का के साथ है। उल्का सहित नक्षत्र कल्याण कारक हो। राहु के साथ चाद्र ग्रह और सौर ग्रह कल्याणकारक हो। अनर्थकारी धूमकेतु कल्याणकारी हो। तीक्ष्ण प्रकाश वाले रुद्र कल्याणकारी हो।

जरमन आचार्य प्रोफेसर वेबर की सम्मति है कि भारत मे ही ग्रहो का आविष्कार हुआ होगा, क्योकि इनके नाम विशेष रूप से भारतीय है[1]।

वैदिक काल मे ही ज्योतिष के विशेषज्ञ दूसरो से कुछ पृथक-से हो गये थे। वाजसनेयी सहिता मे लिखा है

प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शं ॥ वा. सं. ३०. १०.

अर्थ—विशेष ज्ञान के लिए नक्षत्रदर्श के पास जाओ।

साराश

अब स्पष्ट हो गया होगा कि वैदिक काल मे ज्योतिष की सच्ची नीव पड गयी थी। मास चाद्र था और वर्ष का आरभ और अत ज्ञात करने के लिए ऐसी रीति का पता लगा लिया गया था कि कभी भी अधिक त्रुटि नही उत्पन्न हो सकती थी। वर्ष का आरभ लगभग पद्रह दिन इधर-उधर हो सकता था, परतु इससे अधिक नही। पूजा-पाठ के लिए अमावस्या और पूर्णिमा का बडा महत्त्व था। इस पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था कि वर्षारभ से सबध रखने वाले कर्म उचित समय पर ही हो।

वेद के छ· अगो मे एक ज्योतिष भी था और इस वेदाग की एक प्राचीन पुस्तक आज भी उपलब्ध है, जिसका विवेचन आगामी अध्याय मे किया जायगा।

[1] **वेबर: भारतीय साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी में); पृष्ठ २५१।**

अध्याय ५

वेदांग-ज्योतिष

वेदाग (अर्थात वेद का अग) होने के कारण वेदाग-ज्योतिष नामक ग्रथ पवित्र माना जाता था और इसे स्मरण रखना तथा पढना पुण्य का काम समझा जाता था। इसी से यह पुस्तक लुप्त होने नही पायी है। परतु इसे ग्रथ या पुस्तक कहना बहुत उपयुक्त नही है, क्योकि इसमे कुल ४४ श्लोक है, इसे पुस्तिका कहना अधिक उचित होगा।

दो पाठ

वदाग-ज्योतिष के दो पाठ मिलते है, एक ऋग्वेद ज्योतिष और दूसरा यजुर्वेद ज्योतिष। दोनो मे विषय प्राय एक-से है, परतु यजुर्वेद ज्योतिष मे ४४ श्लोक है[1] और ऋग्वेद ज्योतिष मे केवल ३६। दोनो मे अधिकाश श्लोक एक ही है, परतु उनका क्रम दोनो मे विभिन्न है। कुछ श्लोको मे शब्दो का भी कुछ अतर है, यद्यपि अर्थ एक ही है। ऋग्वेद ज्योतिष के सात श्लोक यजुर्वेद ज्योतिष मे नही है और यजुर्वेद ज्योतिष के १४ श्लोक ऋग्वेद ज्योतिष मे नही है। ऐसा सभव है कि ज्योतिष की ये दोनो पुस्तिकाएँ किसी बडे ग्रथ से सकलित की गयी है और उस बडे ग्रथ का अब लोप हो गया है। आधुनिक भाष्यकारो मे से कुछ की यही सम्मति है, परतु डाक्टर शामशास्त्री का मत है कि ऋग्वेद ज्योतिष और यजुर्वेद ज्योतिष के श्लोको की गिनतियो मे अतर इसलिए है कि यजुर्वेद ज्योतिष मे टीका के रूप मे कुछ श्लोक बढा दिये गये है।

[1] **कुछ सस्करणो में केवल ४३ श्लोक है, परतु डाक्टर शामशास्त्री द्वारा सपादित पुस्तक में ४४ श्लोक है।**

टीकाओ का इतिहास

वेदाग-ज्योतिष के श्लोको को समझना बहुत कठिन है। कारण यह है कि अधिकाश श्लोको की भाषा बहुत सक्षिप्त है और उनमे अनेक शब्द छोड दिये गये है। सच्ची बात तो यह है कि ये श्लोक सूत्र है जिनका उद्देश्य यह है कि गणना के नियम जानने वाले को आवश्यकता पडने पर नियम स्मरण हो आये, उनका यह अभिप्राय नही ह कि नौसिखिये को पूरा-पूरा नियम बताया जाय। वे तो ऐसे ही है जैसे गणित-पुस्तको के अत मे दी गयी सूत्रो की सूची, जिसे वे ही समझ सकते है जो विषय को अच्छी तरह मनन कर चुके है।

वेदाग-ज्योतिष पर एक भाष्य सोमाकर का है, परतु यह अच्छा नही है। इस भाष्य से स्पष्ट है कि भाष्यकार स्वय कई एक श्लोक का अर्थ नही समझता था। आधुनिक समय मे वेदाग-ज्योतिष का पहला सस्करण वेबर का था। उसके बाद सर विलियम जोन्स, व्हिटनी, कोलब्रुक, बेटली, डेविस, मैक्स म्यूलर, थीबो और कुछ अन्य विद्वानो ने श्लोको के अर्थ लगाने की ओर ध्यान दिया, परतु तब भी कुछ श्लोको का अर्थ सतोषजनक रीति से नही लग सका। थीबो ने इस विषय पर अपनी टिप्पणियाँ सन १८७९ मे प्रकाशित की। इसके बाद कृष्ण शास्त्री गोडबोले, जनार्दन बालाजी मोडक और शकर बालकृष्ण दीक्षित ने उन श्लोको को समझाने की चेष्टा की जिनका अर्थ पूर्व टीकाकारो से नही लग पाया था, परतु पूर्ण सफलता नही मिली। सन १९०६ मे लाला छोटे लाल ने, अपना उपनाम बार्हस्पत्य रख कर, हिदुस्तान रिव्यू मे कई लेख छपाये, जिनमे इन श्लोको के चातुर्यपूर्ण अर्थ थे, परतु वे विद्वानो को सतोषजनक नही जँचे। १९०८ मे महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने पडित नामक पत्रिका मे कई लेख प्रकाशित किये जिनमे उन्होने छोटे लाल के मतो का खडन किया और अपने मतानुसार पाठ का सशोधन करके अर्थ लगाया। १९३६ मे डाक्टर आर० शामशास्त्री ने मैसूर सरकार के यत्रालय से एक सस्करण छपाया जिसमे वेदाग-ज्योतिष के श्लोको को सूर्यप्रज्ञप्ति आदि जैन ज्योतिष ग्रथो तथा ज्योतिष-करड मे आये उन्ही विषयो पर दिये गये नियमो की सहायता से समझाया गया है। इन जैन पुस्तको ने वेदाग-ज्योतिष के नियमो को अपनाया था और उनकी विस्तृत व्याख्या दी थी। डाक्टर शामशास्त्री अपनी पूर्वोक्त पुस्तक मे लिखते है:

"ग्यारहवाँ श्लोक, जो विद्वानो को बराबर चक्कर मे डाले था, सूर्यप्रज्ञप्ति मे प्राकृत मे पूर्ण रूप से अनुवादित है।"

इस प्रकार अब वेदाग-ज्योतिष के सब श्लोको का पर्याप्त अच्छा अर्थ लग गया है।

वेदाग-ज्योतिष की विषय-सूची

वेदाग-ज्योतिष मे पचाग बनाने के प्रारभिक नियम दिये गये है। इन नियमो से प्राचीन समय मे यज्ञादि के लिए उचित समय का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। बाद मे ये श्लोक पवित्र माने जाते थे और जब सूर्य-सिद्धात या अन्य सिद्धातों के अनुसार अधिक शुद्ध पचाग बनने लगे तब भी, जैसा पहले बताया जा चुका है, लोग इन श्लोको का पाठ करते थे। इसी कारण ये अब भी उपलब्ध है।

यजुर्वेद ज्योतिष के ४४ श्लोको मे से प्रथम चार और अतिम दो मे कोई गणित नही है। प्रथम श्लोक मे प्रजापति की वदना है और दूसरे मे काल की। तीसरे मे ज्योतिष-शास्त्र का उद्देश्य बताया गया है और चौथे मे बताया गया है कि वेदागो मे ज्योतिष सर्वश्रेष्ठ है। लिखा है:

यथा शिखा मयूराणां नागाना मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणा ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

अर्थ—जैसे मोरो मे शखा है और नागो (सर्पो) मे मणि, इसी प्रकार वेदाग-शास्त्रो मे ज्योतिष चोटी पर है।

अतिम श्लोक मे ज्योतिषी के लिए आशीर्वाद है। लिखा है कि

"वह विद्वान जो चद्रमा, सूर्य और नक्षत्रो की गतियो को जानता है इस लोक मे बाल-बच्चे पा कर सुखी होगा और (मृत्यु के पश्चात) चद्रमा, सूर्य और नक्षत्रों के लोक मे जायगा।"

श्लोक ४२ ज्योतिष विषयक नही है। उसमे त्रैराशिक का प्रसिद्ध नियम है जो अकगणित मे अत्यत उपयोगी है।

इस प्रकार ३७ श्लोक बच जाते है जिनमे ज्योतिष-सबधी विषय है।

युग

जैसा पहले बताया जा चुका है समय के लिए तीन प्राकृतिक एकाइयाँ है। वे है (१) अहोरात्र (अर्थात दिन-रात), (२) चाद्र मास, और (३) वर्ष। प्रत्येक प्राचीन पद्धति मे प्रधानत इसी समस्या का हल रहता था कि इन एकाइयो मे क्या सबध है। पृथ्वी के अपने अक्ष के परित एक बार घूमने से हमे अहोरात्र मिलता है, चद्रमा की एक पूर्णिमा (या अमावस्या) से आगामी पूर्णिमा (या अमावस्या) तक एक चाद्र मास होता है और यह पृथ्वी के परित चद्रमा के परिक्रमण के कारण उत्पन्न होता है। सूर्य पृथ्वी के परित चक्कर लगाता हुआ दिखायी पडता है, एक चक्कर का समय एक वर्ष होता है और यह एक बरसात से आगामी बरसात तक का समय है।

इन तीन एकाइयो के अतिरिक्त लोग यह भी जानना चाहते थे कि तारो के बीच चद्रमा आज कहाँ पर है। इसके लिए चद्रमार्ग को सत्ताइस बराबर भागो मे बाँट कर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा गया है, जिनके नाम पहले बताये जा चुके है।

देखने की बात है कि एक चाद्र मास मे पूरे-पूरे दिन नही होते। वस्तुत, आधुनिक नापो के अनुसार एक चाद्र मास मे २९ ५३०५८८ दिन होते है। इसी प्रकार वर्ष में दिनो की सख्या भी पूर्ण सख्या नही है। एक वर्ष मे ३६५ २४२ दिन होते हैं। प्राचीन समय मे दशमलव पद्धति चली नही थी और भिन्नो का ज्ञान भी सीमित ही था। इसलिए तब लोग युगो का प्रयोग करते थे जो बहुत ही सुदर प्रथा है। वे कई वर्षो की अवधि चुन कर उसे युग कहते थे और तब बताते थे कि इस युग मे कितने वर्ष, कितने मास और कितने दिन होते है। इस प्रकार भिन्नों की आवश्यकता नही पडती थी। जब फल बेचने वाला कहता है कि पाँच आने मे दो आम मिलेंगे तो वह भिन्नो से बचने की उसी रीति का प्रयोग करता है जिसे वेदाग-ज्योतिष ने मास मे दिनो की सख्या बताने के लिए अपनाया था।

प्रत्यक्ष है कि युग जितना ही लबा चुना जायगा, चाद्र मास की लबाई उतनी ही अधिक सूक्ष्मता से बनायी जा सकेगी। उदाहरणत, हम चाहे तो केवल दो चाद्र मासो का युग चुन कर कह सकते है कि एक युग मे दो चाद्र मास होते हैं और उतने ही मे ५९ दिन होते है। तो इस प्रकार एक चाद्र मास मे ठीक-ठीक २९ ५ दिन होगे। परतु चाद्र मास इससे कुछ लबा होता है। तो भी इससे अधिक सूक्ष्मता इस छोटे से युग मे मासो और दिनो की सख्या को पूर्ण सख्याएँ रख कर हम ला ही नही सकते। यदि एक युग मे केवल एक दिन अधिक रक्खा जाय तो एक चाद्र मास मे दिनो की सख्या तुरत ३० हो जायगी, जो वास्तविकता से बहुत अधिक है। इससे स्पष्ट है कि अधिक सूक्ष्मता के लिए आवश्यक है कि अधिक लबा युग चुना जाय।

पंचवर्षीय युग

वेदाग-ज्योतिष मे ५ वर्ष का युग चुना गया है और बताया गया है कि एक युग में १८३० दिन होते है और ६२ चाद्र मास होते है। १८३० को ६२ से भाग देकर हम देख सकते है कि वेदाग-ज्योतिष के अनुसार एक चाद्र मास मे २९ ५१६ दिन होते है। यह सख्या वास्तविकता से छोटी है। यदि एक युग मे १८३० के बदले १८३१ दिन रक्खे जाते तो चाद्र मास की लबाई वास्तविकता से कुछ अधिक, तो भी पहले मान की अपेक्षा शुद्धतर, निकलती, परतु एक युग मे १८३१ दिन मानने से वर्ष मे दिनो की सख्या ३६६ २ हो जाती, जो वास्तविकता से

अधिक दूर है । स्पष्ट है कि वेदाग-ज्योतिष ने भी पर्याप्त लबा युग नही चुना । अवश्य ही, चाद्र मास के लिए वेदाग-ज्योतिष का मान (२९.५१६ दिन) साढे उनतिस दिन की तुलना मे बहुत अच्छा है, परतु यह मान इतना सच्चा नही है कि वर्षो तक इसी मान से लगातार गणना की जाय और अतर न पडे । उदाहरणत, २० वर्ष में साढे तीन दिन की अशुद्धि पड जायगी और यदि कोई प्राचीन ज्योतिषी २० वर्ष तक ठीक २९.५१६ दिन पर मास का अत मानता चला जाता तो वह देखता कि जब उसकी गणना से अमावस्या होती तो आकाश मे चद्रमा हँसिया-सा दिखायी पडता रहता और वह तुरत देख लेता कि उसकी गणना मे लगभग ३½ दिन की अशुद्धि है ।

अब स्पष्ट है कि वेदाग-ज्योतिष मे एक मौलिक त्रुटि थी, यह कि युग बहुत छोटा चुना गया था । पीछे जो ज्यौतिष ग्रथ लिखे गये उनमे युग अत्यत लबा रक्खा गया । उदाहरणत, आर्यभटीय मे (जिसकी रचना पॉचवी शताब्दी ई० मे हुई) ४३,२०,००० वर्षो का युग माना गया था ।

भिन्न

ऐसा नही समझना चाहिए कि वेदाग-ज्योतिष मे कही भिन्न है ही नही । परतु जहॉ-जहॉ भिन्नो की आवश्यकता पडी है वहॉ सब से छोटे भिन्न को कोई विशेष नाम दे दिया गया है । उदाहरणत, एक नक्षत्र के एक सौ चौबीसवे भाग को एक भाश कहा गया है । जिसे हम अब $\frac{११}{१२४}$ भाश लिखेगे उसे वेदाग-ज्योतिष मे ११ भाश कहा गया है । इसी प्रकार एक दिन को ६०३ भागो मे बॉट कर प्रत्येक को एक कला कहा गया है । फिर एक कला को १२४ भागो मे बॉट कर प्रत्येक को एक काष्ठ कहा गया है और एक काष्ठ को पॉच भागो मे बॉट कर प्रत्येक को एक अक्षर कहा गया है । यह तो प्रत्यक्ष है कि ये नाम इसलिए नही रक्खे गये थे कि समय की पूर्वोक्त एकाइयॉ महत्त्वपूर्ण है । इन एकाइयो की कल्पना केवल इसलिए की गयी थी कि ग्रथकार को दिन के ऐसे भिन्नो की आवश्यकता पड गयी थी जिनके हर मे ६०३ × १२४ × ५ आता है और उस समय भिन्नो का प्रचलन कम था, और सभवत इसलिए भी कि छद रचने मे नामयुक्त भिन्नो से सुगमता होती थी। सौभाग्यवश भिन्नो की आवश्यकता बहुत कम पडी, अन्यथा नामो का एक बृहत समूह खडा हो जाता, जिसे गढने मे भी कठिनाई पडती और स्मरण रखने मे भी ।

वेदाग ज्योतिष मे क्या है

जैसा पहले बताया गया है यजुर्वेद ज्योतिष के ६ श्लोको का गणित से कोई सबध नही है । शेष श्लोको मे से २१ मे या तो परिभाषाएँ है या तथ्य बताये

गये हैं । शेष १६ श्लोको मे ज्योतिष घटनाओ की गणना के लिए नियम दिये गये हैं ।

परिभाषाओ मे आढक, द्रोण, कुडव, नाडिका, पाद, काष्ठ, कला, मुहूर्त और ऋतुशेष की परिभाषाएँ है । तथ्यो मे यह बताया गया है कि युग मे कितने वर्ष, मास और दिन होते हैं , एक युग मे तारो का उदय कितनी बार होता है , युग मे जो दो अधिमास (लौद के महीने) लगते है उन्हे कब-कब लगना चाहिए, और इसी प्रकार की कुछ अन्य बाते । युग के आरभ वाले क्षण पर सूर्य और चद्रमा की क्या स्थितियाँ रहती है इनका भी स्पष्ट उल्लेख है । यह भी बताया गया है कि उत्तरायण और दक्षिणायन का आरभ कब-कब होता है । पाठक को ज्ञात होगा कि इन क्षणो पर सूर्य अपनी वार्षिक परिक्रमा मे[1] क्रमानुसार उत्तर और दक्षिण जाना आरभ करता है । तीन श्लोको मे २७ नक्षत्रो के देवताओ के नाम गिनाये गये है । यह नही समझना चाहिए कि यह गणित-ज्योतिष के लिए बेकार है, क्योकि आगे चलकर एक श्लोक मे सत्ताइसो नक्षत्रो को एक विशेष क्रम मे प्रदर्शित किया गया है और सक्षिप्तता के विचार से यह आवश्यक था कि एक-एक अक्षर से ही एक-एक नक्षत्र को इगित किया जाय । इस काम मे जहाँ दुविधा पडने का भय था वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम से कोई लाक्षणिक अक्षर लेकर काम बडी सुन्दरता से पूरा किया गया है । इसलिए, यदि देवताओ का नाम न बताया जाता तो उस श्लोक को समझना ही असभव हो जाता; यही पूर्वोक्त श्लोको की महत्ता है । एक श्लोक का सबध विशुद्ध फलित ज्योतिष से है , उसमे बताया गया है कि कौन-कौन से नक्षत्र अशुभ है ।

एक श्लोक मे बताया गया है कि सबसे लबे दिन का मान क्या है । यह महत्त्वपूर्ण है, क्योकि इससे हम पता चला सकते है कि लेखक के निवास-स्थान का अक्षाश क्या था । इस पर विचार आगे चलकर किया गया है ।

शेष १६ श्लोको मे, जैसा ऊपर बताया गया है, गणना के नियम है । इनमे से एक श्लोक मे बताया गया है कि किन तिथियो का क्षय होता है । पाठक को ज्ञात होगा कि भारतीय पद्धति मे तिथियाँ क्रमानुसार सभी नही आती । बहुधा एक

[1] संभवत कोई पाठक आपत्ति करेगा कि सूर्य तो स्थिर है, पृथ्वी परिक्रमा करती है । परंतु इस बात को जानते हुए भी सुविधा रहने पर ज्योतिष में यह कह देने की प्रथा है कि "सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है" । यह सूर्य की आभासी गति है और किसी को इससे भ्रम नहीं होता ।

तिथि छूट जाती है , छूटी हुई तिथि को ही क्षय तिथि कहते है । उदाहरणत , एक दिन तृतीया हो सकती है और आगामी दिन चतुर्थी न होकर पचमी हो सकती है । तब कहा जायगा कि चतुर्थी का क्षय हुआ । तिथियो के क्षय होने का कारण यह है कि एक चाद्र मास मे लगभग २९½ दिन होते है और ३० तिथियाँ होती है । इसलिए दो महीने मे ५९ दिन और ६० तिथियाँ होती है । इससे स्पष्ट है कि लगभग दो महीने मे औसतन एक तिथि का क्षय तो होगा ही , अन्यथा तिथियो और मास का सबध टूट जायगा ।

आठ श्लोको मे बताया गया है कि पूर्णिमा या अमावस्या पर अपने नक्षत्र मे चद्रमा किस स्थान पर रहता है । तीन श्लोको मे बताया गया है कि नक्षत्र मे सूर्य के स्थान का पता कैसे लगाया जाय । तीन श्लोको मे बताया गया है कि विषुव की गणना कैसे की जाय (विषुव पर दिन और रात दोनो बराबर होते है) । एक श्लोक मे बताया गया है कि योग का कैसे पता लगाया जाय । योग सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का जोड है, और इस जोड के न्यूनाधिक होने के अनुसार इसे कई विशेष नाम दे दिये गये है । पीछे योग के अनुसार शुभाशुभ विचार होने लगा, जो फलित ज्योतिष के अतर्गत है ।

वेदाग-ज्योतिष के अनुसार तिथि-नक्षत्र

वेदाग-ज्योतिष मे पचाग-पद्धति स्थूल रूप से वही है ,जो वर्तमान समय मे हिदुओ मे प्रचलित है । महीने चद्रमा के अनुसार चलते थे, जैसे अब भी चलते है । एक मास को ३० भागों मे बाँटा जाता था और प्रत्येक को एक तिथि कहते थे । तिथि और चद्रमा की आकृति का सबध बनाये रखने के लिए कोई-कोई तिथियाँ छोड दी जाती थी, जिसका कारण ऊपर समझाया जा चुका है । वर्ष मे साधारणत १२ महीने होते थे, परतु आवश्यकतानुसार वर्ष मे एक महीना बढा दिया जाता था, जिसमे वर्ष के आरभ और ऋतु का सबध न टूटने पाये ।

एक अद्भुत सूत्र

दो पक्तियो के एक सूत्र मे सत्ताइसो नक्षत्र एक विशेष क्रम मे इगित किये गये है । उस श्लोक मे कोई नक्षत्र किस स्थान मे आता है इसे गिन कर तुरत जाना जा सकता है कि जब सूर्य उस नक्षत्र मे रहता है तो पूर्णिमा या अमावस्या के क्षण नक्षत्र के आदि बिंदु से सूर्य कितना हटा रहता है । २७ अक्षरो को इस प्रकार चुनना कि उनसे बिना किसी प्रकार की दुविधा के सत्ताइसो नक्षत्रो का पता चले, फिर उन्हे उस क्रम मे रखना जो गणना के अनुसार प्राप्त होता है, और उनसे एक श्लोक

बना देना सूत्र बनाने की कला मे अवश्य ही आश्चर्यजनक निपुणता है। श्लोक यह है

जौद्राग खे श्वे ही रो षा चिन्मूषक्ण्यः सूमा धानः
रेमृघास्वापोज. कृष्योहज्येष्ठा इत्यृक्षालिगै. या।

इस श्लोक मे नक्षत्र-सूचक अक्षर नक्षत्र के नाम का आदि, मध्य, या अत वाला अक्षर है। जहाँ ऐसा करने पर भ्रम होने का डर था, या जहाँ एक ही नाम के दो नक्षत्र थे, वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम से अक्षर चुना गया है। नीचे प्रत्येक अक्षर का तात्पर्य दिया जाता है[1]

१ ज्यौ = अश्वयुजौ = अश्विनी,
२ द्रा = आर्द्रा,
३ ग = भग (पूर्वा फाल्गुनी के देवता),
४ खे = विशाखे,
५. श्वे = विश्वेदेवा (उत्तराषाढा के देवता),
६ हि = अहिर्बुध्न्य (उत्तरा भाद्रपदा के देवता),
७ रो = रोहिणी,
८ षा = आश्लेषा,
९ चित् = चित्रा,
१० मू = मूल,
११ षक् = शतभिषक्,
१२ ण्ये = भरण्य, भरणी,
१३ सू = पुनर्वसू,
१४ मा = अर्यमा (उत्तरा फाल्गुनी के देवता),
१५ धा = अनुराधा,
१६. न = श्रवण,
१७ रे = रेवती,
१८ मृ = मृगशिरा,
१९. घा = मघा,
२० स्व = स्वाती,
२१ प = अप (पूर्वाषाढा के देवता),

[1] विज्ञान, दिसम्बर, १९४४, पृष्ठ ५४।

२२ अज = अजएकपात् (पूर्वा भाद्रपदा के देवता),
२३ कृ = कृत्तिका,
२४ ष्य = पुष्य,
२५ ह = हस्त,
२६ ज्ये = ज्येष्ठा,
२७ ष्ठा = श्रविष्ठा।

वेदाग-ज्योतिष का काल

वेदाग-ज्योतिष मे यह बताया गया है कि विषुव के अवसर पर (जब दिन और रात दोनो बराबर होते है) तारो के सापेक्ष सूर्य कहाँ रहता है। देखने की बात है कि यह स्थिति सदा एक-सी नही बनी रहती। यह धीरे-धीरे बदलती रहती है और विषुव के इस चलने को 'अयन' कहते है। इसलिए वेदाग-ज्योतिष मे बतायी गयी स्थिति से उस ग्रथ का काल-निर्णय हो सकता है। गणना से पता चलता है कि यह लगभग १२०० ई० पू० की बात होगी। यूरोपीय विद्वानो मे से कई एक वेदाग-ज्योतिष की इतनी प्राचीनता स्वीकार करने को तैयार नही है। उनका कहना है कि तारो के सापेक्ष सूर्य की स्थिति नापना कठिन है और इसलिए इसमे अधिक त्रुटि हो जाने की सभावना है। फिर यह भी सभव है कि वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार ने अपने समय मे स्वय विषुव पर सूर्य की स्थिति का वेध न किया हो। उसने किसी प्राचीन प्रमाण के आधार पर सुनी-सुनायी बात लिख दी हो। यह तो मानना पडेगा कि त्रुटि की सभावना है और पुरानी बात के लिखे जाने की सभावना है, परतु निष्पक्ष विचार मे यह भी मानना पडेगा कि त्रुटि ऐसी भी हो सकती है जिसके कारण वेदाग-ज्योतिष की प्राचीनता कुछ कम निकली हो। कुछ भी हो, अन्य प्रमाण के अभाव मे यही मानना उचित होगा कि वेदाग-ज्योतिष का काल लगभग १२०० ई० पू० है। आगामी अध्याय मे इन बातो पर अधिक विस्तार से विचार किया जायगा।

वेदाग ज्योतिष का लेखक

ऋग्वेद ज्योतिष के श्लोक २ मे[1] और यजुर्वेद ज्योतिष के श्लोक ४३ मे यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि पुस्तक के ज्योतिष का ज्ञान लेखक को महात्मा लगध से मिला है। यद्यपि इन दो श्लोको की रचना विभिन्न है तो भी अर्थ एक ही है।

[1] **कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।**

परतु स्वय लेखक कौन है इस विषय पर मतभेद है। पुस्तक के प्रथम श्लोक से कुछ लोग यह कहते है कि लेखक का नाम 'शुचि' था, परतु इस अर्थ के बदले कि "मै, शुचि, बताऊँगा . " यह अर्थ भी लग सकता है कि "मै, शुद्ध हो कर, बताऊँगा "।

यह कहना कठिन है कि लगध महात्मा कौन थे, क्योकि सस्कृत साहित्य मे उनका नाम अन्यत्र कही नही आता। परतु लगध शब्द सस्कृत मूल से उत्पन्न हुआ नही जान पडता। इससे कुछ लोगो की धारणा है कि वे कोई विदेशी रहे होगे और भारत मे ज्योतिष का ज्ञान विदेश से आया होगा।

वेदाग-ज्योतिष मे यह दिया हुआ है कि बडे-से-बडे दिन की लबाई क्या थी। इससे हम इसका पता लगा सकते है कि जिस स्थान मे ग्रथकार रहता था वहाँ का अक्षाश क्या था। गणना से पता चलता है कि अक्षाश लगभग ३५° रहा होगा। उत्तर काश्मीर या अफगानिस्तान के स्थानो मे यह अक्षाश सभव है। इसलिए सभावना यह है कि वेदाग-ज्योतिष का ग्रथकार कही वही का निवासी था। दिन-मान को, अर्थात दिन की लबाई को, लोग छेद वाली पेदी के बरतन का पानी मे डूबना गिनकर सुगमता से नाप सकते थे। इसलिए ऐसा मानने मे कोई आपत्ति नही दिखायी पडती कि दिनमान त्रुटिहीन होगा और इसलिए उसके आधार पर निकाले गये अक्षाश पर भरोसा किया जा सकता है।

केवल मध्यक गतियाँ

कुछ बाते वेदाग-ज्योतिष मे नही है जिनको रहना चाहिए था। ग्रथकार ने कही इसकी चर्चा नही की है कि चद्रमा और सूर्य समान कोणीय वेग से नही चलते। यह मानकर कि चद्रमा और सूर्य समान कोणीय वेग से चलते है, जो यथार्थ नही है, सब गणना की गयी है। इसलिए वेदाग-ज्योतिष मे सब तिथियाँ बराबर लबाई की मानी गयी है। पीछे के सब ज्यौतिष ग्रथो मे (सूर्य-सिद्धात, आदि मे) चद्रमा और सूर्य के असमान कोणीय वेगो पर विचार किया गया है, तिथियाँ छोटी-बडी मानी गयी है और उनकी गणना के लिए आवश्यक नियम दिये गये है। सभवत वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार को इसका पता न रहा होगा कि चद्रमा और सूर्य असमान कोणीय वेग से चलते है। यह भी हो सकता है कि उसने गणना की सुगमता के लिए माना हो कि ये पिंड समान वेग से चलते है, परतु ऐसा अधिक सभव नही जान पडता।

वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार को अयन का पता नही था और इसमे कुछ आश्चर्य भी नही है कि उस प्राचीन काल मे इस सूक्ष्म गति का ज्ञान नही था।

वेध और गणना मे अतर

एक बात अवश्य विचित्र है। यह कही नही बताया गया है कि यदि वेध और गणना मे अतर पड जाय तो उसका समाधान कैसे करना चाहिए। हम देख चुके है कि युग के छोटा होने के कारण, और सभवत वेधो के पर्याप्त सूक्ष्म न होने के कारण, वर्ष और मास की लबाइयो मे त्रुटियाँ थी, और वेदाग-ज्योतिष के नियमो के लगातार प्रयोग से कुछ वर्षो मे इतना अतर पड सकता था कि उसकी अवहेलना नही हो सकती थी। इसलिए कोई इस प्रकार का नियम अवश्य होना चाहिए था कि इतने वर्षो मे इतने दिन छोड दो, या वेध करके देख लो और आवश्यक दिन छोड दो।

हम अब केवल अनुमान कर सकते है कि क्या होता रहा होगा। या तो ऐसे नियम थे और अब उनका लोप हो गया है, जैसा लाला छोटे लाल का मत है, या कोई नियम नही थे और समय-समय पर गणना मे सशोधन करके गणना के परिणाम को ऑख से देखी बातो के अनुसार कर दिया जाता था, जैसा डाक्टर शामशास्त्री का मत है। लाला छोटे लाल ने बहुत जोरदार शब्दो मे अपने मत का **समर्थन** किया है कि वेदाग-ज्योतिष किसी बडे ज्योतिष-ग्रथ का साराश-मात्र है, परतु मुझे भी ऐसा लगता है कि सपूर्ण नियम न रहे होगे। केवल कभी-कभी गणना मे कुछ घटती-बढती कर दी जाती रही होगी, जैसे पीछे बीज-सस्कार करके दृक्-तुल्यता लायी जाती थी। डाक्टर शामशास्त्री का मत है कि एक श्लोक मे इसका संकेत है कि आवश्यकता पडने पर गणना मे घटती-बढती कर देनी चाहिए, परतु दूसरो को यह अर्थ स्वीकार नही है और निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा नही जा सकता।

व्रत आदि के लिए दिन निश्चित करने वालो को इसका पता अवश्य रहा होगा कि वेदाग-ज्योतिष के नियम स्थूल है और वे आवश्यकता के अनुसार, ऑख से देख कर, गणना मे सशोधन कर लेते रहे होगे, परतु सभवत वे ऐसे नियम नही बना पाये होगे जिससे अधिक सच्ची गणना हो सके।

यह भी आश्चर्य की बात है कि वेदाग-ज्योतिष मे एक वर्ष मे ३६६ दिन माने गये है, जब वर्ष की सच्ची लबाई लगभग ३६५$\frac{१}{४}$ दिन है। यह तो अवश्य सत्य है कि वर्ष का आरभ या अत ऋतु देखकर बताना बहुत कठिन है, एक वेध मे कई दिनो का अतर पड सकता है। परतु कई वर्षो का पडता बैठाने पर (औसत लेने पर) अधिक शुद्ध मान सुगमता से निकल सकता था। वर्षमान अशुद्ध रहने से ऋतु और वर्ष के आरभ मे अतर लगातार बढता जाता है। यदि १०० वर्षो तक सदा ३६६ दिन

के वर्ष रक्खे जायँ तो अत मे गणना मे प्राप्त और परपरागत ऋतुओ मे लगभग ७५ दिन का अतर पड जायगा, अर्थात बरसात का आरभ तभी हो जायगा जब गणना के अनुसार केवल वैशाख या जेठ बीता रहेगा, और जब लू चलनी चाहिए। अवश्य ही वर्ष को ठीक रखने के लिए कुछ अन्य भी नियम रहे होंगे, या वेदाग-ज्योतिष के बाद बने होंगे, परतु वे अब लुप्त हो गये है।

दुर्भाग्य की बात है कि १२०० ई० पू० और लगभग ५०० ई० के बीच बने ज्यौतिष ग्रथो का, या इस दीर्घ काल मे ज्योतिष की उन्नति का, हमे कुछ भी पता नही है। ५०० ई० के लगभग कई ग्रथ बने और उनमे से महत्त्वपूर्ण ग्रथो का वर्णन आगामी अध्यायो मे दिया जायगा।

अध्याय ६

वेद और वेदांग का काल

कृत्तिकाओ का पूर्व मे उदय

इस अध्याय मे वैदिक साहित्य के उन उल्लेखो पर विवेचन किया जायगा जिनसे वेद तथा अन्य ग्रथो के काल पर कुछ प्रकाश पडता है। कुछ उल्लेख इस सबंध मे विशेष महत्त्वपूर्ण है। इनमे सब से अधिक निश्चयात्मक शतपथ ब्राह्मण का वह वाक्य[1] है जो बताता है कि कृत्तिकाएँ "पूर्व दिशा से नही हटती, अन्य नक्षत्र पूर्व दिशा से हटते है।"[2] इसमे तो कोई सदेह है नही कि कृत्तिकाएँ तारो के उसी छोटे समूह की सदस्याएँ है जिसे आज भी वही नाम दिया जाता है और जिसे अँग्रेजी मे प्लाइडीज़ कहते है[3]। सभी इसे स्वीकार करते है कि दिशा उस समय की बतायी गयी है जब कृतिकाएँ उदित होती है[4]। फिर, पूर्वोक्त नियम इस अभिप्राय से बताया गया है कि उसकी सहायता से यज्ञ की वेदी की दिशा ठीक की जाय। इसलिए इसमे कोई सदेह नही रह जाता कि ठीक पूर्व दिशा जानने के लिए ही कृत्तिकाओ के उदित होने की दिशा पूर्व दिशा बतायी गयी है। यह बात और भी पक्की

[1] २।१।२।३।

[2] एर्गालग के अनुवाद के आधार पर (देखो सेकरेड बुक्स ऑव दी ईस्ट, १२।

[3] वेदिक इडेक्स, १। पृष्ठ ४१५।

[4] दीक्षित: इंडियन ऐंटीक्वेरी, २५।२४५, और उसके बाद के लोग। जहाँ तक मैंने देखा है, केवल एक व्यक्ति ने इस उद्धरण से दूसरा परिणाम निकाला है। दीनानाथ चुलैट ने अपने 'वेदकाल-निर्णय' नामक (इंदौर से प्रकाशित) ग्रंथ में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यह ३,००,००० ई० पू० की बात है। इस पुस्तक का सारांश आई० एच० क्यू० ९(१९३३)।९२३ में छपा है।

इसमे हो जाती है कि कहा गया है कि अन्य नक्षत्र पूर्व से हटे रहते हैं। कृत्तिकाओ के पूर्व मे उदित होने से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि यह किस काल की बात है; क्योकि अयन के कारण (पृष्ठ ७२ देखो) कोई तारा पूर्व मे थोडे ही काल तक उदित होगा, और जैसे-जैसे समय बीतेगा तैसे-तैसे वह पूर्व से अधिक हट कर उदित होगा। अतर साढे छ हजार वर्ष तक बढता जायगा और तब घटने लगेगा। लगभग १३,००० वर्ष बाद तारा फिर पूर्व मे उदित होगा। इसलिए इस बात की गणना सुगमता से हो सकती है कि कृतिकाएँ कब पूर्व मे उदित होती थी। परिणाम यह निकलता है कि ऐसा २५०० ई० पू० मे होता था[१]।

इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक कठिन है कि शतपथ ब्राह्मण अपने समय की बात बता रहा है या केवल किसी प्राचीन बात को दोहरा रहा है। दीक्षित[२] का विचार है कि यह बात लगभग शतपथ ब्राह्मण के ही समय की है, प्राचीन नही। उनका कहना है कि यह बात तब लिखी गयी होगी जब कृत्तिकाएँ वस्तुत पूर्व मे उदित होती थी, क्योकि वर्तमान काल का प्रयोग करके लिखा गया है कि कृत्तिकाएँ पूर्व मे उदित होती हैं। यदि केवल इसी एक तर्क पर भरोसा करना होता तो परिणाम को पक्का मानना कठिन होता, परतु, जैसा नीचे दिखाया गया है, अन्य तर्कों से भी यही समय प्राप्त होता है, और यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि प्रत्येक बार ब्राह्मण ग्रथ पुरानी ही बात दोहरा रहे हैं। परतु नवीन तर्कों पर विचार करने के पहले यह देख लेना अच्छा होगा कि पूर्वोक्त रीति से प्राप्त समय के विरुद्ध औरो को क्या आपत्तियाँ हैं।

आपत्तियाँ

मैकडॉनेल और कीथ[३] ने आपत्तियो को इस प्रकार सक्षेप मे दर्शाया है —

शतपथ ब्राह्मण के पूर्वोक्त कथन पर इसलिए भरोसा न करना चाहिए कि (क) बौधायन श्रौत सूत्र[४] में भी ऐसी ही सूचना है, जिसके साथ एक अन्य सूचना

[१] दीक्षित ने, आई० ए०, २४। २४५-२४६ में, गणना करके ३,००० ई० पू० प्राप्त किया है, परतु अयन का जो मान उन्होने लिया था वह कुछ अशुद्ध था। २,५०० ई० पू० अधिक ठीक तिथि है। देखो के: हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी मेमॉयर्स ऑव दि आर्किओलॉजिकल सरवे ऑव इडिया, १८ (१९२४)।

[२] वही, २४६।

[३] वेदिक इंडेक्स, १।४२७।

[४] १८।५।

भी है, जो, बार्थ के अनुसार[1], केवल छठवी शताब्दी ई० या उसके बाद सच हो सकती है, और (ख) वही बात जो शतपथ ब्राह्मण मे है माध्यदिन पाठ[2] मे भी है, परतु उसके साथ यह भी लिखा है कि कृत्तिकाओं की सख्या अन्य नक्षत्रो के तारो की सख्या से अधिक है, अन्य नक्षत्रो मे केवल एक, दो, तीन, या चार तारे होते है, या काण्व पाठ[3] के अनुसार, चार तारे होते है ।

मैकडॉनेल और कीथ यह भी कहते है कि ब्राह्मण ग्रथो के इन उल्लेखो पर पूर्णतया विश्वास नही किया जा सकता, क्योकि हस्त मे पॉच तारे थे[4] (नाम भी हस्त इसलिए पडा कि हाथ मे पॉच ॲगुलियाँ होती है) और सभवत ऋग्वेद[5] मे भी हस्त मे पॉच तारो के होने का सकेत है ।

बौधायन श्रौत सूत्र

परतु ये आपत्तियाँ सबल और ग्राह्य नही जान पडती । बौधायन श्रौत सूत्र मे जिस वाक्य का उल्लेख किया है वह यों है —

"शाला को यहाँ नापना चाहिए, जिसकी छानी की बल्लियाँ पूर्व की दिशा मे रहती है । कृत्तिकाएँ पूर्व की दिशा से नही हटती । उनकी ही दिशा मे इसे नापना चाहिए, यह एक रीति है । श्रोण की दिशा मे नापे यह दूसरी है, चित्रा और स्वाती के मध्य नापे यह तीसरी ।"

यहाँ पहली रीति तो वही है जो शतपथ ब्राह्मण मे दी हुई है । परतु यह नियम वर्ष के सात-आठ महीनो तक लागू नही हो सकता था, क्योकि इतने समय तक कृत्तिकाओ का उदय प्रतिवर्ष दिन मे या उषा अथवा सध्या काल में होता है । इसीलिए बौधायन श्रौत सूत्र ने दो अन्य वैकल्पिक रीतियाँ भी बता दी है । शतपथ को आदर के साथ देखने के कारण, और साथ ही अयन का ज्ञान न रहने के कारण, यह मान लिया गया होगा कि उदय होती हुई कृत्तिकाओ की दिशा मे शाला की बल्ली रखना ठीक है ही, और तब दो अन्य तारो को चुना होगा जो ठीक उसी दिशा मे उदित होते रहे होंगे जिसमें कृत्तिकाएँ उदित होती थी । इससे हमे यह बहुमूल्य सूचना मिलती

[1] देखो कैलड : यीबर डास रिचुयेल सूत्र डेस बोधायन, ३७-३९ ।

[2] शतपथ ब्राह्मण, २।१।२।२ ।

[3] देखो एगलिंग : सेकरेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, १२।२८२। टिप्पणी २ ।

[4] तुलना करो : वेबर : नक्षत्र, २।३६८।३८१ ।

[5] १।१०५।१० ।

है कि बौधायन श्रौत सूत्र के समय मे श्रोण और कृत्तिकाओ का उदय एक ही दिशा मे होता था। इससे पता चलता है कि बौधायन श्रौत सूत्र का समय लगभग १३३० ई० पू० रहा होगा[1]। तीसरा विकल्प भी इस दिनाक के अनुसार ही है। उस समय चित्रा और स्वाती के ठीक बीच का विदु भी उसी दिशा मे क्षितिज पर आता था जिस पर कृत्तिकाएँ आती थी। कृत्तिकाएँ, श्रोण और चित्रा-स्वाती का मध्यविदु ये तीनो आकाश मे ऐसी स्थितियो मे है कि वर्ष के प्रत्येक महीने मे इनमे से एक-न-एक का उदय देखा जा सकता था।

सूत्र ग्रथ [illegible][2]। इसलिए बौधायन श्रौत सूत्र के लिए १३३० ई० पू० शतपथ के लिए २५०० ई० पू० का समर्थन ही करता है।

इससे प्रत्यक्ष है कि बौधायन श्रौत सूत्र मे दिये गये तीन विकल्प यह नही सिद्ध करते कि शतपथ का नियम भ्रममूलक था। फिर, विविध नक्षत्रो मे तारो की गिनतियो से भी यह नहीं सिद्ध होता कि शतपथ अविश्वसनीय है, क्योकि मौलिक कथन कि कृत्तिकाओ मे अन्य नक्षत्रो से अधिक तारे है सत्य है ही। और यह भी नही कहा जा सकता कि अन्य नक्षत्रो के तारो की गिनती बताने मे शतपथ ने गलती की है, क्योकि यह ज्ञात नही है कि उस समय हस्त मे कितने तारे माने जाते थे। चीन वाले नक्षत्रो को स्यू कहते थे और हस्त वाले तारिका-पुज मे वे केवल चार तारे गिनते थे[3]। वेद मे हस्त नक्षत्र मे पाँच तारो के बारे मे जिस वाक्य का सकेत किया गया है वह यो है

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिव।
देवत्रा नु प्रवाच्य सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१०॥

ऋग्वेद १।१०५

इसका अर्थ रामगोविंद त्रिवेदी और गौरीनाथ झा ने यह लगाया है —

विशाल आकाश मे ये जो (अग्नि, वायु, सूर्य, इद्र और विद्युत आदि) पाँच अभीष्टदाता है, वे मेरे इस प्रशसनीय स्तोत्र को शीघ्र देवों के पास ले जाकर लौट आयें। द्यावा-पृथिवी, मेरी यह बात जानो।

[1] देखो गोरखप्रसाद : जरनल, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लंडन, जूलाई, १९३६।
[2] मैकडॉनेल ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर (१९००), ३५।
[3] ह्विटनी : ओरियंटल ऐंड लिंग्विस्टिक स्टडीज, २।३५३।

दूसरो ने भी इस ऋचा के अनुवाद मे हस्त मे पॉच तारो के होने की बात नही लिखी है[1]। जान पडता है कि हस्त के तारो और इस ऋचा से कोइ सबध है ही नही, पॉच की सख्या आ जाने से यह समझना कि उस समय हस्त मे पाँच तारे होते थे भ्रम है।

स्वय बार्थ का यही कहना है कि शतपथ की बात उस समय के वेधो के आधार पर है जब कृत्तिकाएँ पूर्व मे उदित होती थी[2]। इस प्रकार मैकडॉनेल और कीथ की सब आपत्तियॉ निर्मूल ही जान पडती है।

विटरनिट्स की आपत्तियॉ

विटरनिट्स[3] ने शतपथ ब्राह्मण के पूर्वोक्त वाक्य का अर्थ यह लगाया है कि कृत्तिकाएँ पूर्व की ओर बहुत अधिक समय तक—कई घटो तक—प्रति रात्रि दिखायी पडती है, और इसलिए यह बात लगभग ११०० ई० पू० की है। उनका कथन है की इस अर्थ की सत्यता का प्रमाण बौधायन श्रौत सूत्र के वाक्य मे मिलता है।

परतु विटरनिट्स का अर्थ निस्सदेह ठीक नही है। कारण यह है कि यदि स्थूल रूप से ही पूर्व दिशा बतानी होती तो किसी भी ऐसे तारे, या तारका-पुज, से काम चल जाता जो विषुवत के आस-पास होता। यदि स्थूल रूप से ही पूर्व दिशा जाननी होती तो शतपथ ब्राह्मण यह क्यो कहता कि अन्य नक्षत्र पूर्व दिशा मे हटे रहते है, और बौधायन श्रौत सूत्र यह कहने का कष्ट क्यो उठाता कि चित्रा और स्वाती का मध्य विदु भी एक विकल्प है ? स्थूल माप के लिए केवल चित्रा से ही काम चल जाता, या स्वाती से काम चल जाता, और बीसो अन्य तारे इस काम के लिए उपयुक्त होते। फिर विंटरनिट्स का यह कहना कि शतपथ मे बतायी बात लगभग ११०० ई० पू० की है बहुत ही भ्रममूलक है। यदि उदय के बदले कई घटो तक की कृत्तिकाओं की औसत स्थिति ली जाय तो २५०० ई० पू० के दो-चार हजार वर्ष इधर या इतना ही उधर से भी काम चल जायगा !

[1] देखो ग्रिफिथ : दि हिम्स ऑव दि ऋग्वेद, १।१७९; ग्रासमान : ऋग्वेद यीबरट्जेसुंग, २।१०६।

[2] वही, ३८।

[3] ए हिस्ट्री ऑव इडियन लिटरेचर, श्रीमती केतकर द्वारा अनुवादित, १, २९८। विटरनिट्स के अर्थ की आलोचना सेनगुप्त ने भी की है: आई० एच० क्यू०, १० (१९३४), ५३९।

वैदिक काल मे वेध

अत मे, इस पर भी जोर दिया गया है[१], यद्यपि दिशा ज्ञान करने के सबध म नही, कि वैदिक काल के हिंदू ज्योतिषी अच्छे वेधकर्ता न थे, क्योकि वे वर्ष मे दिनो की सख्या को भी ठीक-ठीक न नाप सके थे, यहाँ तक कि वेदाग-ज्योतिष मे भी वर्ष मे ३६६ दिन माने गये है और सूर्य-सिद्धात तक मे अयन का ज्ञान नही है। परतु यदि ये सब आक्षेप ठीक भी हो[२], तो इनसे यह नही समझा जा सकता कि पूर्व दिशा ज्ञात करना, जो अपेक्षाकृत अति सरल है, वैदिक कालीन आर्यो को ठीक-ठीक न आता था। यदि कोई व्यक्ति सदा एक ही स्थान मे वेध करे[३] (स्मरण रहे कि यज्ञ के लिए प्राचीन समय मे वेदी नियत स्थान मे बनी ही रहती थी) और क्षितिज मील भर पर या अधिक दूरी पर रहे (जैसा भारतवर्ष मे साधारणत रहता ही है), तो उदित होते समय सूर्य या चमकीले तारे की दिशा बिना किसी यत्र के ही कम-से-कम आधे अश (डिगरी) तक ज्ञात तो की ही जा सकती है[४]। इसमे भी सदेह नही कि क्षितिज के उस विदु को ध्यान से देखा जाता था जहाँ सूर्य का उदय होता था, क्योकि कौषीतकी ब्राह्मण मे इस विदु के उत्तर-दक्षिण हटने का सूक्ष्म वर्णन है[५]। वहाँ बताया गया है कि किस प्रकार यह विदु दक्षिण हटता है, फिर कुछ समय तक स्थिर जान पडता है और तब उत्तर जाता है। यदि सूर्योदय के उन दो विदुओं को देख लिया जाय जो महत्तम उत्तर और महत्तम दक्षिण की ओर रहते है, और

[१] मकडॉनेल और कीथ . वेदिक इडेक्स, १।४२३-२४।

[२] देखो बार्हस्पत्य (छोटे लाल), ज्योतिष वेदाग (१९०७), १९, जहाँ उन्होंने सिद्ध किया है कि ३६६ दिन विशेष प्रयोजन से चुना गया था। फिर, सूर्य-सिद्धान्त में अयन की चर्चा है (३।९) और जितना लिखा है उस समय के लिए पर्याप्त था, परतु गुरुत्वाकर्षण न जानने के कारण सूर्य-सिद्धात यह नही बता सकता था कि सुदूर भविष्य में क्या होगा।

[३] तीस फुट इधर-उधर हटने से कोई हानि न होगी। यदि क्षितिज एक मील पर हो तो इतने से एक-तिहाई अश (डिगरी) से कम का अंतर पड़ेगा और यदि क्षितिज अधिक दूरी पर हो तो उसी हिसाब से और कम अतर पड़ेगा।

[४] चंद्रमा का व्यास लगभग आधे अश का है।

[५] ९।२।३।

क्रियात्मक ज्यामिति[1] से, या दिनो की सख्या गिनकर, या केवल अनुमान से ही, पूर्व दिशा का निर्धारण किया जाय तो इस निर्धारण मे एक-दो अश से अधिक की त्रुटि न रहेगी[2]। यह भी सभव है कि शतपथ के काल मे शकु की परछाइयो को प्रात और सध्या समय ऐसे क्षणो पर देखकर जब वे बराबर रहती है उत्तर दिशा को निर्धारित करने की रीति ज्ञात रही हो, और ठीक पूर्व दिशा का निर्धारण किया जा सकता रहा हो। परतु शकु के प्रयोग मे झझट रहता है और अधिक समय लगता है, इसलिए सर्वसाधारण के लिए बता दिया गया हो कि कृत्तिकाओ के उदय-विदु से शाला की बल्ली को ठीक दिशा मे रक्खो, क्योकि इस रीति मे कोई असुविधा नही रहती।

ब्राह्मण-ग्रथो का काल

हम देखते है कि कोई कारण है ही नही जिससे शतपथ के वाक्य पर विश्वास करने मे बाधा पडे, और इसलिए यह मानना पूर्णतया न्यायसगत होगा कि ब्राह्मण ग्रथो का काल लगभग २५०० ई० पू० है।

यजुर्वेद सहिताओ[3] और ब्राह्मण ग्रथो[4] मे जहाँ कही भी नक्षत्रो की सूचियाँ है सब कृत्तिका (या कृत्तिकाओ) से आरभ होती है। अवश्य ही इसके लिए कोई कारण होगा। यह कल्पना और भी प्रत्यक्ष तब हो जाती है जब हम विचार करते है कि कई बाते जो अन्य देशो मे मनमानी रीति से चुन ली गयी थी भारत मे वैज्ञानिक

[1] शुल्व-सूत्र के काल में पुरोहितो को सरल क्रियात्मक ज्यामिति का अच्छा ज्ञान था। देखो थीबो . दि पडित, पुरानी श्रेणी, ९ और १० (१८७४-७५), अथवा दत्त सायस ऑव दि शुल्ब, कलकत्ता, १९३२। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि यह ज्ञान एक-दो वर्ष में उत्पन्न नही हुआ होगा। इसलिए बहुत संभव है कि इनमे से कई एक रीतियाँ अति प्राचीन है।

[2] पूर्व दिशा के निर्धारण में एक अश की अशुद्धि से उससे निकाले गये दिनाक मे लगभग १७५ वर्ष का अतर पडेगा। इसमें यह मान लिया गया है कि स्थान लगभग २४ अश के अक्षाश में है।

[3] तैत्तिरीय संहिता, ४।४।१०।१-३, मैत्रायणी स०, २।१३।२०; काठक सहिता, ३९।१३।

[4] तैत्तिरीय ब्राह्मण, १।५।१; ३।१।४।१ और तत्पश्चात; अथर्ववेद, १९।७।१ और तत्पश्चात।

सिद्धातो पर निर्धारित की गयी थी। उदाहरणत, भारत मे वर्णमाला बहुत सोच-विचार के बाद स्वर और व्यजनो को पृथक करके और उनको उच्चारण के अनुसार क्रमबद्ध करके रक्खा गया था[१]। अन्य देशो की वर्णमाला मे यह गुण नही पाया जाता। फिर, ऋग्वेद मे ऋचाओ का क्रम एक विशेष पद्धति पर है, अनियमित रूप से उनको नही रक्खा गया है[२]। फिर, पचाग वैज्ञानिक ढग से बना था[३], जिसकी तुलना मे वर्तमान यूरोपीय पचाग भी अशिष्ट जान पडता है। वैदिक पचाग मे मासो का निर्धारण ठीक-ठीक चद्रमा से होता था और वर्ष का निर्धारण सूर्य से।

अब ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ काल बाद अश्विनी नक्षत्र से आरभ करके नक्षत्र-सूचियाँ बनने लगी और यह निश्चित है कि ऐसा इसलिए किया गया कि उस समय विषुव-विदु (अर्थात वह विदु जहाँ सूर्य के रहने पर दिन और रात दोनो बराबर होते है और वसत की ऋतु रहती है) अश्विनी के आरम्भ मे था[४]। नवीन शैली लगभग छठवी शताब्दी ई० मे चली। इससे अवश्य ही यह धारणा होती है कि सभवत पहली सूची भी कृत्तिका से इसलिए आरभ होती थी कि उस समय विषुव-विदु कृत्तिका के आरभ मे था। वेबर[५] का भी यही मत था।

यदि वसत विषुव-विदु वही था जहाँ कृत्तिकाएँ थी तो अवश्य ही कृत्तिकाएँ ठीक उत्तर मे उदित होती रही होगी। इसलिए नक्षत्र-सूचियो का कृत्तिकाओ से आरभ होना शतपथ ब्राह्मणो मे कृत्तिकाओ के पूर्व मे उदित होने की बात का पूर्ण समर्थन करता है और हम इससे परिणाम निकाल सकते है कि नक्षत्र-सूचियाँ लगभग २५०० ई० पू० मे बनी।[६]

[१] इसे तो सभी जानते है; तो भी देखो मैकडॉनेल: ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, १७।

[२] मैकडॉनेल; ए हिस्ट्री ऑव सस्कृत लिटरेचर, ४१-४५।

[३] व्हिटनी, ओरियंटल ऐंड लिंग्विस्टिक स्टडीज़, २।३४५।

[४] देखो कोलब्रुक: इसेज़ २।२४६; वेबर: इंडिशे स्टुडीन, १०।२३४।

[५] नक्षत्र, २।३६२-३६४; इडिशे स्टुडीन, १०।२३५; इंडियन लिटरेचर, २, संख्या २, इत्यादि।

[६] देखो वेबर, वही, बूलर, आई० ए० २३।२४८, संख्या २०; तिलक: ओरायन, ४० और तत्पश्चात।

कुछ पाश्चात्य विद्वानो[1] का विश्वास है कि कृत्तिकाएँ नक्षत्र-सूचियो के आरभ मे केवल सयोगवश रक्खी गयी, या सभवत वे आरभ मे इसलिए रक्खी गयी कि उनकी पहचान बहुत सरल थी। यह स्वीकार करने मे कि कृत्तिकाएँ और वसत विषुव दोनो साथ थे उन्हे निम्नलिखित आपत्तियाँ है —

(क) इस बात को स्वीकार करने मे कि कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर थी यह मानना पडेगा कि उस समय नक्षत्रो का सबध सूर्य से रहता था, न कि चंद्रमा से।[2] परतु यह स्पष्ट है कि इस कल्पना की आवश्यकता ही नही है। केवल यह मानना पर्याप्त होगा कि चद्रमा और सूर्य दोनो का सबध नक्षत्रो से था। आज भी तो यही बात ठीक है। यह कि प्राचीन समय मे भी सूर्य और नक्षत्रो मे सबध माना जाता था प्राचीन ग्रथों से सिद्ध किया जा सकता है। जैसा याकोबी[3] ने बताया, नक्षत्रो का देव और यम इन दो वर्गो मे तैत्तिरीय ब्राह्मण[4] का विभाजन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है[5]।

इसके अतिरिक्त, तैत्तिरीय ब्राह्मण मे[6] वेध से तारो के बीच सूर्य की स्थिति ज्ञात करने की रीति बतायी गयी है। अवश्य ही, नक्षत्रो और सूर्य के बीच सबध पर विचार उस समय मे किया जाता रहा होगा।

(ख) थीबो[7] का कहना है कि वैदिक साहित्य मे विषुवो की चर्चा कही नही की गयी है और तिलक ने विषुवत का अर्थ जो विषुव लगाया है उसके लिए कोई प्रमाण

[1] थीबो, आई० ए० २४।९६; ओल्डेनबर्ग, ज़ेड० डी० एम० जी०, ४८, ६३१; ४९, ४७३; ५०, ४५१-५२; गोटिंगेन नाखरख्टेन, ६१९०९, ५६४; कीथ, जे० आर० ए० एस०, १९०९, ११०३; बार्थ, कैलांड के यीबर डास रिचुएल सूत्रडेस बौधायन, ३७-३९।

[2] मैकडॉनेल और कीथ, वेदिक इडेक्स, १।४२१।

[3] जेड० डी० एम० जी० ५०।७२।

[4] १।५।२।८।

[5] दूसरे मत के लिए देखें ओल्डेनबर्ग : ज़ेड० डी० एम० जी०, ३८।६३१।

[6] १।५।२।१। तिलक ने अपने ग्रथ ओरायन मे इसका उल्लेख किया है; पृष्ठ १८।

[7] आई० ए०, २४।९६।

नही है, पीछे विषुवो को महत्त्व इसलिए दिया जाने लगा कि भारतीय ज्योतिषियो पर यूनानियो का प्रभाव पडा, वेदाग-ज्योतिष मे तारो का भोगाश अयनात से नापा गया था, न कि विषुव से, और यह कि पीछे की नक्षत्र-सूचियाँ विषुव से आरभ हुई थी कोई कारण नही है कि पहले की भी नक्षत्र-सूचियाँ इसी प्रकार से आरभ होती रही होगी।

यह कहना कठिन है कि इन नकारात्मक तर्को को कितना महत्त्व दिया जाय, परतु यह स्मरण रखना चाहिए कि याकोबी और तिलक ने विवेचन करके सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कृत्तिकाओ से आरभ होने वाली नक्षत्र-सूची पुनर्व्यवस्थित सूची है, और उसमे कृत्तिकाओ को जान-बूझ कर सर्वप्रथम इसलिए रक्खा गया था कि वे उस समय विषुव पर थी और बूलर[1] का विश्वास है कि याकोबी और तिलक ने अपना कथन सतोषजनक रीति से सिद्ध कर दिया है कि कृत्तिकाओ से आरभ होने वाली सूची हिंदुओ की प्राचीनतम सूची नही है, इससे भी एक प्राचीन सूची कभी थी जिसमे वसत विषुव पर मृगशिरस था।

(ग) व्हिटनी[2] और थीबो[3] दोनो के मत मे यदि कृत्तिकाएँ नक्षत्रो मे सर्व-प्रथम इसलिए रक्खी गयी थी कि वसत विषुव से उनका सबध था, तो सभवत वे केवल वसत विषुव के समीप थी, ठीक वसत विषुव पर नही थी। वेदाग-ज्योतिष बताता है कि शिशिर अयनात[4] तब होता है जब सूर्य श्रविष्ठा के आदि विंदु पर रहता है। इसलिए उस समय कृत्तिकाएँ वसत विषुव से कुल १८ अश पर थी। व्हिटनी और थीबो कहते है कि वसत विषुव से कृत्तिकाओ का इतना समीप रहना उनके सर्वप्रथम रक्खे जाने के लिए पर्याप्त है। इसलिए वे यह मानने के लिए तैयार नही है कि नक्षत्र-सूचियाँ अवश्य ही वेदाग-ज्योतिष से पुरानी है। वेदाग-ज्योतिष का काल, जैसा हम पहले देख चुके है, लगभग बारहवी शताब्दी ई० पू० है, और, जैसा नीचे बताया जायगा, व्हिटनी और थीबो कहते है कि इस दिनाक में लगभग

[1] आई० ए०, २३।२३९। इस लेखक के नाम का उच्चारण वस्तुत लगभग बीलर है, परतु अक्षर-विन्यास के अनुसार लोग इसे साधारणत बूलर ही लिखते है।

[2] ओरियटल एड लिंग्विस्टिक, स्टडीज २।३८३।

[3] आई० ए० २४।९७।

[4] शिशिर अयनांत तब होता है जब रात सब से छोटी होती है। इसके बाद सूर्य उत्तर जाने लगता है और दिन धीरे-धीरे बढना आरभ करता है।

१००० वर्ष की अशुद्धि हो सकती है । इसलिए वे कहते है कि ऐसा हो सकता है कि ब्राह्मण-ग्रथ ८००-६०० ई० पू० से अधिक प्राचीन न हो[1]।

उनका तर्क वस्तुत यह है कि यदि कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर रही हो तो भी सभव है कि वेध की सब त्रुटियाँ इस प्रकार एकत्रित हो गयी हो कि जिन वेधो से साधारणत २५०० ई० पू० का समय निकलता उनसे केवल ७०० ई० पू० या ऐसा ही कोई दिनाक निकले । यद्यपि सब विपरीत परिस्थितियो के एक ओर जा जुटने की सभावना बहुत ही कम होती है, तो भी यह कहा नही जा सकता कि ऐसा होना पूर्णतया असभव है । परतु स्मरण रखना चाहिए कि ७०० ई० पू० मे कृत्तिकाएँ पूर्व से ११ अश हटकर उदित होती थी, और ऐसी परिस्थिति मे अग्निशालाओ की बल्लियो को कृत्तिकाओ की दिशा मे रखने का विचार ही किसी के मन मे न उठता ।

विवाह-सस्कार का साक्ष्य

कृत्तिकाओ के पूर्व मे उदित होने तथा नक्षत्र-सूचियो मे उनके सर्वप्रथम रहने से जो दिनाक प्राप्त होता है उसका समर्थन पूर्णतया स्वतत्र रीति से एक दूसरी बात से होता है । विवाह-सस्कार के वर्णनो मे इस प्रथा का भी उल्लेख मिलता है कि वर, वधू को, स्थैर्य के प्रतीक रूप, ध्रुवतारा को दिखाये । सब प्रधान गृह्य सूत्रो में[2] इस बात का आदेश दिया गया है । इसलिए अवश्य ही यह प्रथा सारे भारत मे प्रचलित रही होगी और इसलिए यह विशेष नवीन प्रथा न रही होगी[3] । ध्रुव शब्द का अर्थ है वह जो अपने स्थान से न हटे । इसलिए अवश्य ही उस काल मे कोई तारा ऐसा रहा होगा जो अपने स्थान से न हटता रहा होगा । परतु अयन के कारण ध्रुवतारा कभी रहता है, कभी नही रहता । इसलिए हम यह ज्ञात कर सकते है कि पूर्वोक्त प्रथा का आरभ कब हुआ होगा ।

इस प्रश्न को अच्छी तरह समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि वह गणितीय विदु जिसके परित आकाश के सब तारे चक्कर लगाते है ध्रुव कहलाता है, और अयन के कारण यह विदु तारो के बीच धीरे-धीरे चलता रहता है (पृष्ठ ९७ का

[1] **मैकडॉनेल और कीथ : वैदिक इडेक्स, ४२४ ।**

[2] **पारस्कर गृह्य सूत्र, १।८।१९; आपस्तब गृह्य सूत्र, २।६।१२; हिरण्यकेशी गृह्य सूत्र, १।२२।१४; मानव गृह्य सूत्र, १।१४।९; बौधायन गृह्य सूत्र, १।५।१३; गोभिल गृह्य सूत्र, २।३।८ ।**

[3] **याकोबी : जे० आर ए० एस० (१९१०), ४६१ ।**

चिन देखे जहाँ ध्रुव का मार्ग अकित है)। जब कभी यह विदु किसी चमकीले तारे के पास रहता है तो हम उस तारे को ध्रुव-तारा (या सक्षेप मे केवल ध्रुव) कहते है। अब महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तीसरी श्रेणी[१] का प्रथम कालिय (ऐल्फा ड्रैकोनिस) नामक तारा गणितीय ध्रुव से निकटतम लगभग २७८० ई० पू०[२] मे था। इस दिनाक के लगभग ढाई सौ वर्ष इधर या उधर तक यह तारा गणितीय ध्रुव के इतना समीप था कि हम उस समय का उसे ध्रुव-तारा मान सकते है। २००० ई०पू० से लेकर ५०० ई० तक कोई भी चमकीला तारा—पाँचवी श्रेणीका या इससे अधिक चमकीला—गणितीय ध्रुव के इतना समीप नही था कि उसे ध्रुव-तारा कहा जा सकता[३]। पाँचवी श्रेणी के या अधिक चमकीले तारो मे से केवल एक तारा इस दीर्घकाल मे गणितीय ध्रुव के कुछ पास आया[४], परतु निकटतम पहुँचने पर भी वह ध्रुव से लगभग पाँच अश पर था। यह सन १३०० ई० पू० की बात है। लोगो ने देखा होगा कि एक रात्रि मे यह तारा अपने उच्चतम स्थान से १० अश नीचे उतर आता है[५]। इतनी दूर तक हटने की उपेक्षा लोगो ने कैसे की होगी, विशेष कर उत्तर प्रदेश के आर्यो ने, जहाँ ध्रुव की क्षितिज से ऊँचाई कुल २५ अश है? इससे स्पष्ट है कि यदि हम क्षीणतम तारो की उपेक्षा करे, अर्थात उन तारो मे से किसी एक को ध्रुव-

[१] आकाश के सब से अधिक चमकीले तारे प्रथम श्रेणी के माने जाते है; उनसे कम चमकीले तारे द्वितीय श्रेणी के; इत्यादि। वे तारे जो मंदतम है परंतु आँख से दिखायी पडते है छठवी श्रेणी के कहे जाते है। वर्तमान ध्रुव-तारा द्वितीय श्रेणी का है।

[२] याकोबी, आई०ए०, २३।१५७।

[३] पूर्वोक्त चित्र से यह बात स्पष्ट हो जायगी। उसमें तारों के सापेक्ष ध्रुव का मार्ग दिखाया गया है। ध्रुव एक पूरा चक्कर लगभग २६००० वर्ष में लगाता है। यह चित्र नॉरटन के स्टार एटलस (गैल और इगलिस) के आधार पर खींचा गया है।

[४] याकोबी, आई० ए० २३।१५७।

[५] पृष्ठ ९९ के चित्र में एक दिनरात में इसका मार्ग दिखाया गया है। उसके पहले वाले चित्र में वर्तमान ध्रुवताद का मार्ग दिखाया गया है। ये दोनो चित्र मोटे हिसाब से पैमान के अनुसार बने है (इन चित्रो में द्रष्टा का अक्षांश २५° मान लिया गया है)।

तारा न माने जो इतने मद प्रकाश के है कि बस दिखायी भर पड जाते है तो इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नही है कि माना जाय कि विवाह की पूर्वोक्त रीति लगभग २७८० ई० पू० मे प्रचलित हुई होगी, जब आकाश मे वस्तुत कोई ध्रुव-तारा रहा होगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह दिनाक अन्य तर्को से निकाले गये दिनाक के अनुकूल ही है। याकोबी का भी यही मत है।[1]

इस मत के विरोधी[2] कहते है कि हो सकता है कि पूर्वोक्त रीति, जिसका सर्वप्रथम उल्लेख गृह्य सूत्रो मे आया है, बहुत प्राचीन न हो, क्योकि विवाह-सस्कार के लिए किसी भी तारे से काम चल जायगा जो गणितीय ध्रुव से बहुत दूर न रहा हो। परतु यह बात न्यायसगत नही जान पडती क्योकि बहुत मद तारा या गणितीय ध्रुव से कुछ दूर पर स्थित तारा कभी लोगो का ध्यान इतना आकर्षित ही न करता कि लोग उसे ध्रुव कहते और विवाह के अवसर पर उसे देखने-दिखाने की आवश्यकता समझते। यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि २७८० ई० पू० के कई हजार वर्ष पहले तक कोई भी चमकीला तारा गणितीय ध्रुव के इतना समीप नही था कि उसे ध्रुव-तारा कहा जा सकता[3]।

अन्य उल्लेख

अन्य कई ऐसे उल्लेख है जिनका ज्योतिष मे सबध है और जिनसे काल का ज्ञान हो सकता है, परतु दुर्भाग्यवश वे सभी थोडा-बहुत अधूरे है और प्रत्येक के दो अर्थ लगाये गये है। एक अर्थ तो वेबर, याकोबी, बूलर, बार्थ, विटरनिट्स, पूसिन[4], तिलक, दीक्षित इत्यादि ने लगाया है जिससे २००० ई० पू० से लेकर ६००० ई० पू० तक का काल प्राप्त होता है, और दूसरा अर्थ व्हिटनी, ओल्डेनबर्ग, थीबो, कीथ, और दूसरो ने लगाया है और उनके अनुसार वैदिक साहित्य बहुत प्राचीन नही है। सक्षेप मे, उल्लेख निम्नलिखित है •

[1] आई० ए० २३।१८७, जे० आर० ए० एस० १९१०।४६१।

[2] मैकडॉनेल और कीथ, वेदिक इडेक्स, १।४२७।

[3] पृष्ठ ९७ का चित्र देखे, अथवा मोल्टन : ऐन इट्रोडक्शन टू ऐस्टॉनोमी, मानचित्र, १ देखें।

[4] लुई डि ला वैली पूसिन : वेदिस्मे, पेरिस १९०९, जिसका उल्लेख जे० आर० ए० एस० (१९०९) ७२१ मे है।

ब्राह्मण ग्रथो के समय मे फाल्गुन का महीना वर्ष का आरभ माना जाता रहा होगा, क्योकि कई स्थानो पर फाल्गुन की पूर्णिमा को वर्ष का मुख कहा गया है[1]। काल-निर्णय के लिए इस कथन मे कमी यह है कि पता नही वर्ष का आरभ किस ऋतु मे तब होता था। याकोबी[2] का कहना है कि वर्ष आरभ करने की तीन वैकल्पिक प्रथाएँ थी, जिनमे से एक यह था कि वर्ष शिशिर अयनान से आरभ होता था। पीछे ऐसी प्रथा थी इसमे कोई सदेह नही है[3] और अवश्य ही यह प्रथा पहले से चली आयी होगी। इसे सत्य मान कर गणना करने पर ब्राह्मण-ग्रथो का काल लगभग ४००० ई० पू० निकलता है। तिलक[4] का मत भी यही है, परतु ओल्डेनबर्ग[5] और थीबो[6] का कहना है कि फाल्गुन को वर्ष का मुख इसलिए कहा गया होगा कि यह वसत ऋतु का प्रथम मास था[7], उनका कहना है कि प्राचीन समय मे वर्ष को चातुर्मास्यो[8] के अनुसार तीन ऋतुओ मे विभक्त करने की भी प्रथा थी, और इस प्रथा मे एक ऋतु वसत थी। उनका यह भी कहना है कि यह मत कौषीतकी ब्राह्मण[9] के कथन के अनुकूल है जो यह बताता है कि शिशिर अयनात माघ

[1] तैत्तिरीय सहिता, ७।४।८।१-२; पंचविश ब्राह्मण, ५।९।९; इत्यादि।

[2] आई० ए०, २३।१५६, जेड० डी० एम० जी०, ४९।२२३; ५०।७२-८१।

[3] शिशिर अयनात से वेदांग-ज्योतिष के पंचवर्षीय युग का भी आरंभ होता था और इस युग का प्रथम वर्ष भी इसी क्षण से आरंभ होता था। देखे वेदांग-ज्योतिष, यजु०, ५।

[4] ओरायन, २७।

[5] जड० डी० एम० जी०, ४८, ६३० और तत्पश्चात, ४९, ४७५–७६; ५०, ४५३–५७।

[6] आई० ए०, २४।८६।

[7] देखे वेबर, नक्षत्र, २।३२९ और तत्पश्चात, इससे तुलना करो शतपथ ब्राह्मण, १।६।३।३६; कौषीतकी ब्राह्मण, ५।१। अन्यत्र भी ऐसे ही उल्लेख हैं। पूर्ण विवरण के लिए देखे वेदिक इंडेक्स, १।४२५।

[8] तैत्तिरीय सहिता, १।६।१०।३; तैत्तिरीय ब्राह्मण, १।४।९।५; २।२।२।२, इत्यादि।

[9] १९।२।३।

की पूर्णिमा पर होता था और यही बात वेदाग-ज्योतिष[1] मे भी है। यद्यपि यह निश्चित नही है कि सौर वर्ष के किस दिनाक से वसत वस्तुत आरभ हुआ करता था, तो भी उत्तर भारत की ऋतुओ पर विचार करके थीबो ने इसे लगभग ७ फरवरी को माना है। इस कल्पना के अनुसार ब्राह्मणो का काल लगभग बारहवी शताब्दी ई० पू० निकलता है।

बात यही नही समाप्त होती। तैत्तिरीय सहिता[2] तथा ताण्डच ब्राह्मण[3] के उन स्थानो मे जहाँ गवाम्-अयन यज्ञ के आरभ का दिनाक दिया गया है और फाल्गुन को वर्ष का मुख कहा गया है,. आरभ के लिए दो दिनाक बताये गये है—चैत्र की पूर्णिमा और एक विशेष पूर्णिमा के चार दिन पहले, परतु यह नही बताया गया है कि वह विशेष पूर्णिमा कौन-सी है।

तिलक का मत

तिलक[4] और याकोबी[5] यह मान लेते है कि यज्ञ के आरभ के लिए तीन दिनाक सभव थे और वर्ष का आरभ इन तीनो दिनाको से होता था, परतु विभिन्न कालों मे और प्रत्येक काल में वर्ष का आरभ शिशिर अयनात से होता था। इस कल्पना के अनुसार तिलक और याकोबी दोनो यह कहते है कि पूर्वलिखित वर्षारभ, अर्थात चैत्र की पूर्णिमा से वर्षारभ, प्राचीनतर काल का अवशेष है। उस प्राचीनतर काल में चैत्र-पूर्णिमा से वर्ष का आरभ इसलिए होता था कि चैत्र-पूर्णिमा शिशिर अयनात पर होती थी। इस कल्पना से समय ६००० ई० पू० निकलता है। मीमासाकारों[6] से सहमत होकर तिलक यह भी कहते है कि पूर्णिमा के चार दिन पहले का अर्थ माघ की पूर्णिमा के चार दिन पहले है। इसलिए यह मानना होगा कि जब वर्ष माघ की पूर्णिमा के चार दिन पहले आरभ होता था तो शिशिर अयनात लगभग उसी समय होता था। यह बात इसके अनुकूल है कि तब कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर थी, और इसलिए इससे समय २५०० ई० पू० निकलता है।

[1] वेदांग-ज्योतिष, यजु०, ५-६।

[2] ७।४।८।१।

[3] ५।९।

[4] ओरायन, अध्याय ४।

[5] आई० ए०, २३।१५६।

[6] जैमिनि, ६।५।३०-३७; इत्यादि; देखो ओरायन, ५२ और तत्पश्चात।

परतु थीबो का कहना है कि इस प्रकार का अर्थ लगाना व्यर्थ है, एक ही समय मे किसी प्रदेश मे वर्ष किसी दिनाक मे आरभ होता रहा होगा, अन्यत्र किसी अन्य दिनाक से[१]।

प्राप्य सामग्री से निश्चित रूप से पता चलाना कि सच्ची बात क्या है असभव जान पडता है। जब एक ही बात से इतने विभिन्न दिनाक निकाले जाते है, और दोनो ओर तर्कसगत बाते कही जाती है तब यही स्वीकार करना उचित जान पडता है कि वह सामग्री दिनाक निकालने के लिए पर्याप्त नही है।

आग्रहायण

लोग यह भी मानते है कि वर्ष का आरभ कभी मार्गशीर्ष से भी हुआ करता था, क्योकि इस मास का दूसरा नाम आग्रहायण[२] है (जिससे ही इसे हिंदी मे अगहन कहते है)। आग्रहायण का अर्थ है वर्ष का अग्र (आरभ)। परतु इससे भी कोई निश्चित दिनाक नही निकाला जा सकता, क्योकि इसका पता नही है कि जब अगहन से वर्ष का आरभ होता था तब आकाश मे सूर्य तारो के सापेक्ष कहाँ रहता था, या, दूसरे शब्दो मे, ऋतु क्या रहती थी। याकोबी[३] और तिलक[४] का कहना है कि तब सूर्य शरद विषुव पर रहता रहा होगा, क्योकि यह शिशिर अयनात पर फाल्गुनी पूर्णिमा होने के अनुकूल है (जिससे समय लगभग ४००० ई० पू० निकलता है); परतु थीबो[५] का कहना है कि यह तृतीय चातुर्मास्य का आरभ होगा, क्योकि चातुर्मास्यो के अनुसार भी ऋतुओ के नामकरण की प्रथा का उल्लेख मिलता है। उनका यह भी कहना है कि याकोबी की आपत्ति मे कि वर्ष तृतीय अर्थात अतिम चातुर्मास्य से कभी न आरभ होता रहा होगा कोई विशेष तथ्य नही है।

अध्ययन का आरभ

याकोबी[६] ने बताया है कि वेद का अध्ययन तब आरभ होता था जब घास पहली बार उगने लगती थी, अर्थात वर्षा ऋतु के प्रथम मास मे। पारस्कर गृह्य

[१] आई० ए० २४।९४।
[२] थीबो, आई० ए० २४।९४-९५; वेबर, २।३३२ और तत्पश्चात।
[३] आई० ए० २३।१५६।
[४] ओरायन, ६२ और तत्पश्चात।
[५] आई० ए० २४।९४-९५।
[६] आई० ए० २३।१५५।

सूत्र[1] मे श्रावण की पूर्णिमा को उपाकरण सस्कार[2] के लिए नियत किया गया है और २००० ई० पू० मे श्रावण ही वर्षा का प्रथम मास था। परतु गोभिल गृह्य सूत्र[3] मे वही सस्कार प्रौष्ठपद की पूर्णिमा पर करने का आदेश है। (प्रौष्ठपद प्राचीन काल मे भाद्रपद को कहते थे।) यह ज्ञात है कि पाठशालाएँ श्रावण की पूर्णिमा को खुलती थी। इसलिए भाद्रपद मे उपाकरण करने की बात उस प्राचीन काल से चली आयी होगी जब भाद्रपद ही वर्षा-ऋतु का प्रथम मास रहा होगा, और ऐसा ४००० ई० पू० मे होता था। परतु व्हिटनी[4] और अन्य विद्वान इसे स्वीकार नही करते। उनका कहना है कि वर्षाऋतु और विद्यारभ मे सबध रखना आवश्यक न था, परतु बूलर[5] का मत वही है जो याकोबी का।

ग्रीष्म अयनांत

(४) सभी जानते है कि उत्तर भारत मे वर्षा ऋतु ग्रीष्म अयनात से आरभ होती है। ऋग्वेद[6] मे एक ऋचा है जो, याकोबी[7] के अनुसार, यह बताती है कि ऋग्वैदिक काल मे वर्ष का आरभ वर्षा ऋतु से होता था। वर्षा ऋतु से वर्ष के आरभ होने का समर्थन वर्ष नाम से भी होना है, क्योकि यह वर्षा से प्रत्यक्षत सबधित है। वर्ष को अब्द भी कहते है जिसका अर्थ है जल देने वाला। फिर, ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा[8] से याकोबी ने यह परिणाम निकाला है कि वर्ष का आरभ तब होता था जब पूर्णमासी का चद्रमा फाल्गुनी मे रहता था। इन दोनो ऋचाओ से यह फल निकलता है कि वैदिक काल मे शिशिर अयनात पर फाल्गुन वाली पूर्णिमा होती थी; और, जैसा ऊपर बताया गया है, इससे समय ४००० ई० पू० निकलता है। परतु याकोबी ने प्रथम ऋचा के द्वादश का अर्थ लगाया है बारहवाँ महीना,

[1] २।१०।

[2] अर्थात वेदपाठ आरंभ करने का सस्कार।

[3] ३।३।

[4] जे० ए० ओ० एस०, २६।८४ और तत्पश्चात।

[5] आई० ए०, १३।२४२ और तत्पश्चात।

[6] ७।१०३।९।

[7] आई० ए०, २३।१५४।

[8] १०।८५।१३।

और दूसरो ने[1] इसका अर्थ लगाया है वह जिसके बारह भाग हो, अर्थात वर्ष, और यद्यपि याकोबी ने व्याकरण से नियम उद्धृत करके दिखाया है कि बारहवाँ महीना अर्थ लगाना अधिक उपयुक्त है, और उन्हे वर्ष और अब्द से भी सहायता मिलती है, तो भी इस तर्क पर बहुत भरोसा नही किया जा सकता, क्योकि विद्वानो मे मतभेद है और कुल एक शब्द के अर्थ बदल देने से परिणाम पूर्णतया बदल जाता है[2]।

शिशिर अयनात

(५) कौषीतकी ब्राह्मण[3] स्पष्ट रूप से बताता है कि शिशिर अयनात माघ की अमावस्या पर होता था। यह काल-निर्णय के लिए बहुमूल्य होता, परतु एक बात ऐसी है जिससे हम इसका उपयोग नही कर पाते है हमे यही नही ज्ञात है कि माघ की अमावस्या से क्या अभिप्राय था। पता नही कि उस समय मास अमावस्या पर समाप्त होता था (अमात पद्धति) या पूर्णिमा पर (पूर्णिमात पद्धति)। टीकाकारों[4] का

[1] केगी और गेल्डनर, ग्रासमान, इत्यादि।

[2] जिस सूक्त मे यह ऋचा है वह मेढको के बारे मे है। संदर्भ समझाने के लिए दो पूर्वगामी ऋचाओ का अर्थ नीचे दिया जाता है.

"एक वर्ष का व्रत करने वाले स्तोता की तरह वर्ष भर तक सोये हुए रह कर मडूक (मेढक) मेघ के आने पर हर्ष-वाद करते है ॥"

"मेढको मे किसी की ध्वनि गौ की तरह है और किसी की बकरे की तरह। कोई धूम्र वर्ण का है, कोई हरे रग का। नाम तो सबका एक है, किंतु रूप नाना प्रकार के है। ये अनेक देशो मे ध्वनि करते हुए प्रकट होते है।"

विवादग्रस्त ऋचा यो है :

देवहिंतिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्रमिनन्त्यते।
सवत्सरे प्रावृष्यागताया तप्ता धर्मा अश्नुवते विसर्गम्॥ ९॥

अर्थ—मडूक दैवी नियम की रक्षा करते है। वे वर्ष की [या बारहवे महीने की ?] ऋतु की अवहेलना नही करते। [एक] वर्ष पूरा होने पर, वर्षा ऋतु के [फिर] आने पर, ग्रीष्म के ताप से पीड़ित मडूक गड्ढो के बधन से छूटते है।

[3] १९।३। इसकी चर्चा पहले-पहल वेबर ने की; देखो "नक्षत्र", २।३४५ और तत्पश्चात।

[4] कौषीतकी ब्राह्मण पर विनायक की टीका, अथवा साख्यायन श्रौत सूत्र पर आनर्तीय की टीका, १३।१९।१।

विश्वास था कि मास का अत पूर्णिमा से होता था और इसलिए माघ की अमावस्या वह अमावस्या होगी जो मघा नक्षत्र मे होने वाली पूर्णिमा के पहले होती थी। परतु इसका भी साक्ष्य है कि अमात पद्धति ही अधिक प्रचलित थी। कारण यह है कि शुक्ल पक्ष को पूर्व पक्ष (पहले आने वाला पक्ष) कहा जाता था और कृष्ण पक्ष को अपर पक्ष[1]। अब यदि माना जाय कि उस समय मास अमात होते थे तो माघ की अमावस्या वह होगी जो मघा नक्षत्र की पूर्णिमा के बाद पडती है और इस समय शिशिर अयनात मानने से प्राप्त दिनाक ज्योतिष-वेदाग के दिनाक से लगभग १९०० वर्ष अधिक प्राचीन हो जाता है, अर्थात हमे तब ३१०० ई० पू० प्राप्त होता है[2]।

परतु यदि माना जाय कि उस समय पूर्णिमात पद्धति प्रचलित थी तो माघ की अमावस्या का अर्थ होगा वह अमावस्या जिसे अमात पद्धति मे पौष की अमावस्या कहते है[3], और तब परिस्थिति वह हो जाती है जो वेदाग-ज्योतिष मे बतायी गयी है, और उससे समय लगभग १२०० ईसवी पूर्व निकलता है। कुछ विद्वान पूर्णिमात पद्धति को ही अधिक सभव मानते है, क्योकि टीकाकारो की भी वही सम्मति है। फिर, जैसा थीबो ने बताया है, कौषीतकी ब्राह्मण के समय मे हो सकता है कि अमावस्या का अर्थ ठीक-ठीक वही न रहा हो जो पीछे लगाया जाने लगा, अर्थात वह तिथि जिसका अत चद्रमा और सूर्य की सयुति पर होता है। हो सकता है कि मास अमावस्या से आरभ होता रहा हो, और यह भी हो सकता है कि माघ की अमावस्या मे अर्थ रहा हो वह अमावस्या जिससे माघ का महीना आरभ हुआ, अर्थात मघा मे होने वाली पूर्णिमा से पहले वाली अमावस्या। परतु यदि हम इस बात को स्वीकार भी कर ले तो यह मानना आवश्यक नही है कि कौषीतकी ब्राह्मण और वेदाग-ज्योतिष ठीक समकालीन है। वेदाग-ज्योतिष का कथन पूर्णतया निश्चित है, वहाँ जो लिखा है उसका अर्थ है कि शिशिर अयनात तब होता है जब सूर्य रविमार्ग के उस सत्ताइसवे भाग के प्रथम विंदु पर रहता है जिसका नाम श्रविष्ठा है। इसके विपरीत, कौषीतकी ब्राह्मण का कथन ऐसा है जो एक वर्ष से अधिक के लिए पूर्णतया सत्य

[1] देखो वैदिक इंडेक्स, २।१५८, जहाँ पूर्ण विवरण मिलेगा।

[2] कीथ के अनुसार कौषीतकी ब्राह्मण का लगभग वही काल है जो शतपथ का है या उससे थोड़े ही समय पहले का है (एच० ओ० एस०, २५।४७।४८)। परंतु सभव है कि यह वाक्यशेष कौषीतकी ब्राह्मण से पहले का हो।

[3] थीबो के लेख से तुलना करो · आई० ए०, २४।८९।

नही हो सकता था। कारण यह है कि यदि किसी वर्ष शिशिर अयनात ठीक माघ की अमावस्या पर होता तो आगामी वर्षो मे यह ठीक माघ की अमावस्या पर हो नही सकता था। आगामी वर्ष मे यह लगभग ११ दिन पिछड कर होता, एक वर्ष और बीतने पर यह माघ की अमावस्या हो जाने के २२ दिन बाद होता। फिर, बीच मे अधिमास लग जाने से आगामी वर्ष माघ की अमावस्या के तीन दिन पहले होता, तब आगामी वर्ष मे ८ दिन का अतर पडता, और इसी प्रकार आगामी वर्षो मे भी कुछ-न-कुछ अतर पडा करता। प्रत्यक्ष है कि कौषीतकी ब्राह्मण का कथन केवल स्थूल रूप मे शुद्ध है और इस इच्छा के रहने पर कि शिशिर अयनात तथा कोई अमावस्या साथ पडे (क्योकि धार्मिक दृष्टिकोण से यह महत्वपूर्ण है), कौषीतकी ब्राह्मण ने कह दिया हो कि शिशिर अयनात माघ की अमावस्या पर पडता है, यद्यपि शिशिर अयनात और औसत माघी अमावस्या मे कुछ दिनो का अतर रहा हो। इसके अतिरिक्त, वेदाग-ज्योतिष के दिनाक मे एक हजार वर्षो की अनिश्चितता बतायी जाती है[1], इसलिए पूर्वोक्त विवेचनो के आधार पर निकाला गया कौषीतकी ब्राह्मण के दिनाक मे कम-से-कम उतनी ही अनिश्चितता होगी[2]। फिर, निश्चित रूप मे कौषीतकी और शतपथ ब्राह्मणो के सापेक्षिक दिनाक ज्ञात नही है, और इनमे से एक भी समूचा एक ही समय की रचना नही है। इसलिए कौषीतकी ब्राह्मण के कथन से कोई ध्वनि ऐसी नही निकलती जो शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य पुस्तको से निकाले गये दिनाक से बेमेल पडे।

वेदाग-ज्योतिष मे शिशिर अयनात

वेदाग-ज्योतिष मे शिशिर अयनात की स्थिति श्रविष्ठा का आदि-विदु बताया गया है[3]। वेदाग-ज्योतिष का दिनाक जानने के लिए इतना पर्याप्त है। परतु इसमे भी कुछ अनिश्चितता है, क्योकि ठीक-ठीक यह ज्ञात नही है कि श्रविष्ठा का आदि-विदु कहाँ था। इसलिए विविध विद्वानो ने विविध दिनाक

[1] व्हिटनी, ओरियटल ऐंड लिंग्विस्टिक स्टडीज, २। ३८४; थीबो, आई० ए०, २४। ९८; इत्यादि। एक हजार वर्ष की अनिश्चितता अवश्य ही अतिशयोक्ति है।

[2] इस संबंध मे देखें गोरखप्रसाद, जनरल ऑव दि बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, २१ (१९३५), सख्या ३।

[3] वेदांग-ज्योतिष, यजु०, ७।

निकाले है । जोन्स[1] और प्रैट[2] ने ११८१ ई० पू० निकाला है, परतु डेविस[3] और कोलब्रुक[4] ने १३९१ ई० पू० निकाला है, अन्य विद्वानो के दिनाक भी इसी प्रकार के है । छोटे लाल[5] का मत है कि निस्सदेह वेदाग-ज्योतिष के वेध सन १०९८ ई० पू० के जाडे मे लिये गये थे, परतु उन्होने उस समय बृहस्पति ग्रह के सबध मे अति विवादग्रस्त कथन का आश्रय लिया है और इसलिए उनकी गणना पर विशेष भरोसा नही किया जा सकता । इन विवेचनो से प्रत्यक्ष है कि हम सभवत ठीक-ठीक दिनाक ज्ञात नही कर सकते है, परतु इतना निश्चित है कि बारहवी शताब्दी ई० पू० वेदाग-ज्योतिष के वेधो के दिनाक से बहुत दूर नही है । सभी मानते है कि वेदाग-ज्योतिष की रचना ब्राह्मण ग्रथो के बाद हुई[6], इसलिए अन्य आधारो पर निकाले गये दिनाक का इन विवेचनो से समर्थन ही होता है ।

साराश

यदि हम इस सभावना का वहिष्कार कर कि वैदिक साहित्य मे केवल सुनी-सुनायी बहुत पहले की टी बातो का सग्रह है—और ऐसा होना प्राय असभव जान पडता है—तो कहा जा सकता है कि इस साहित्य मे प्रबल प्रमाण है कि वेद २५०० ई० पू० से पहले के है । उनका काल ४००० ई० पू० हो सकता है, इसके लिए कुछ प्रमाण भी है, परतु वह ऐसा नही है कि उससे पूर्णतया सतोष हो जाय । साथ ही यह भी है कि इस दिनाक के विरुद्ध कोई प्रमाण नही है ।

[1] एशियाटिक रिसर्चेज, २ । ३९३ ।

[2] जे० ए० एस० बी०, ३१ । ४९ ।

[3] एशियाटिक रिसर्चेज, २ । २६८; ५ । २८८ ।

[4] इसेज, १ । १०९-१० ।

[5] ज्योतिष-वेदाग, इलाहाबाद, ८३ ।

[6] थीबो ऐस्ट्रॉनोमी, ऐस्ट्रॉलोजी उड मैथिमैटीक, १९-२० ।

अध्याय ७

महाभारत में ज्योतिष

समय की बडी एकाइयाँ

महाभारत मे ज्योतिष विषयो की चर्चा कई स्थानो पर है, जिन पर विचार करने से पता चल सकता है कि उस समय मे ज्योतिष का कितना ज्ञान था।

महाभारत मे समय की बडी एकाइयो के नाम और सबध वे ही है जो मनुस्मृति मे है। विश्व के जीवन-काल को चार युगो मे बाँटा गया है जिनके नाम कृत, त्रेता, द्वापर और कलि है। हम कलियुग मे है, अन्य तीन युग बीत चुके है। कलियुग के अत मे प्रलय होगा और तब नयी सृष्टि होगी—ऐसा मनुस्मृति, पुराण और महाभारत आदि का विश्वास है। प्रत्येक युग के आरभ मे सध्या है और अत मे सध्याश है। इनमे वर्षों की सख्या निम्न प्रकार है[1]

युग		वर्ष	युग		वर्ष
कृत	सध्या	४००	द्वापर	सध्या	२००
	मुख्य भाग	४०००		मुख्य भाग	२०००
	सध्याश	४००		सध्याश	२००
त्रेता	सध्या	३००	कलि	सध्या	१००
	मुख्य भाग	३०००		मुख्य भाग	१०००
	सध्याश	३००		सध्याश	१००

चारो युग मिल कर = १ दैवयुग = १२,००० वर्ष,

१००० दैवयुग = ब्रह्मा का १ दिन।

टीकाकारो के अनुसार ऊपर जिन वर्षों की सख्या दी गयी है वे मानव वर्ष नही है, दैव वर्ष है और प्रत्येक दैव वर्ष ३६० मानव वर्षो के बराबर होता है।

[1] मनुस्मति, प्रथम अध्याय।

आधुनिक विज्ञान बताता है कि पृथ्वी का जन्म आज से लगभग अरब (अर्बुद) वर्ष पहले हुआ होगा। ऊपर की सारणी से पता चलता है कि हमारे प्राचीन ऋषियो के मत मे भी सृष्टि कई अरब वर्ष पहले हुई थी। इसका महत्त्व तब दिखायी पडता है जब इसकी तुलना अन्य धर्मो के मतो से की जाती है। कुछ ही सौ वर्ष पहले यूरोप मे प्रचलित धर्मग्रथ के अनुसार राजाओ की वश-परपरा देखकर पृथ्वी की आयु ४००० वर्ष ऑकी जाती थी।

महाभारत मे पॉच वर्षो के युग की चर्चा है[1]। पाडवो के जन्म के सबध मे यह उल्लेख है

अनुसंवत्सरं जाता अपि ये कुरुसत्तमाः ॥
पांडुपुत्रा व्यराजत पंच संवत्सरा इव ॥ २२ ॥

आदिपर्व, अ० १२४.

अर्थ—एक-एक वर्ष के अन्तर से उत्पन्न हुए कुरुओ मे श्रेष्ठ पाडु के वे पॉचो पुत्र (युग के) पॉच वर्षों के समान लगते थे।

वर्ष

वर्ष की लबाई के सबध मे भी महाभारत के एक कथन से हमे सहायता मिलती है। पाठक को ज्ञात होगा कि जुआ मे हारने पर पाडवो को १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास स्वीकार करना पडा था, परंतु अज्ञातवास के लगभग अत मे अपने आश्रयदाता पर विपत्ति पड़ने पर अर्जुन को दुर्योधन आदि के विरुद्ध लडने के लिए लाचार होना पडा। जब दुर्योधन आदि ने अर्जुन को पहचान लिया तब उन्हे यह जानने की आवश्यकता पडी कि वनवास के आरभ से उस दिन तक पूरे १३ वर्ष बीत गये थे या नही। आपस मे मतभेद होने के कारण यह प्रश्न भीष्म के सम्मुख रक्खा गया। तब उन्होने दुर्योधन से कहा

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
पंचमे पचमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥ ३ ॥
एषामभ्यधिका मासाः पच च द्वादश क्षपाः।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥ ४ ॥

विराटपर्व, अ ५२.

[1] युग शब्द किसी भी दीर्घकाल के लिए प्रयुक्त होता था, चाहे वह पॉच वर्ष का हो, चाहे वह लाखो वर्ष का हो।

अर्थ— समय के बढने तथा नक्षत्रो के हटने से प्रति पाँचवे वर्ष दो अधिमास (मलमास) होते है ॥३॥

मेरी समझ मे तो (वन गए हुए) इन (पाण्डवो) को तेरह वर्ष से पाँच मास और बारह दिन अधिक हो गये ॥४॥

अयन का परिणाम

ऊपर की गणना वेदाग-ज्योतिष के अनुसार की गयी है। स्पष्ट है कि महाभारत के समय भी वेदाग-ज्योतिष के ही नियम चालू थे। परतु जान पडता है कि अयन[1] के कारण जो अतर पड गया था उसके लिए किसी प्रकार का सशोधन कर लिया गया था, क्योकि यहाँ नक्षत्रो के हटने की बात भी कही गयी है। हम देख चुके है कि वेदाग-ज्योतिष के समय मे उत्तरायण तब आरभ होता था जब सूर्य धनिष्ठा के आरभ मे रहता था। अयन के कारण उत्तरायण के आरभ होने का स्थान लगभग १००० वर्षो मे एक नक्षत्र (= १ चक्कर का सत्ताइसवाँ भाग) हट जाता है। इसलिए महाभारत के समय मे उत्तरायण धनिष्ठा के आरभ-विदु से न होता रहा होगा। महाभारत के कुछ वाक्यो से अधिक स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि आवश्यक सशोधन हो गया था, क्योकि लिखा है

चकारान्य च लोक वै क्रुद्धो नक्षत्रसंपदा ॥
प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार यः ॥३४॥

आदिपर्व, अ ७१.

अर्थ—(विश्वामित्र ने) क्रुद्ध होकर दूसरे लोक तथा 'श्रवण' से आरम्भ होने वाले नक्षत्रो का निर्माण किया।

[1] आकाश का वह विदु जहाँ सूर्य के रहने पर दिन और रात दोनो बराबर रहते है और ऋतु वसंत रहती है 'वसत विषुव' कहलाता है। वसत विषुव तारो के सापेक्ष धीरे-धीरे पीछे मुँह (अर्थात सूर्य के चलने से उलटी दिशा मे) खिसकता रहता है और एक चक्कर लगभग २६००० वर्ष मे लगाता है। वसंत विषुव के इस प्रकार चलने को अयन कहते है। इसी अयन के कारण आकाशीय ध्रुव भी चलता रहता है (पृष्ठ ५९)। उत्तरायण और दक्षिणायन मे अयन शब्द का प्रयोग हुआ है, परतु विषुव के चलने और उत्तरायण-दक्षिणायन मे विशेष सबधनही है। भ्रम दूर करने के लिए कुछ लोग विषुव के चलने को अयन-चलन कहते है, परतु यह उचित नहीं है, क्योकि स्वय अयन का अर्थ है चलना। पिषुव-अयन अधिक उपयुक्त है।

फिर, यह भी वाक्य आता है —

अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासाः शुक्लादय' स्मृता. ।।
श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादयः ।।२।।

अश्वमेधपर्व, अ ४४.

अर्थ—ऐसा कहा जाता है कि पहले दिन, अनन्तर रात, तदनन्तर शुक्ल इत्यादि पक्ष, मास, श्रवण इत्यादि नक्षत्र, एव शिशिर आदि ऋतुएँ उत्पन्न हुई।

श्रवण इत्यादि नक्षत्र कहने से स्पष्ट है कि नक्षत्र श्रवण से आरभ होते थे, और नक्षत्रो का श्रवण से आरभ होना यह सूचित करता है कि वहाँ या तो विषुव रहा होगा या उत्तरायण-विदु या दक्षिणायन-विदु, क्योकि ऐसी ही प्रथा पहले से चली आ रही थी। अन्य बातो के सभव न होने के कारण मानना ही पडता है कि श्रवण के नक्षत्र मे उत्तरायण-विदु था।

श्रवण के आरभ-विदु पर उत्तरायण लगभग ४५० ई० पू० मे होता था।

सप्ताह

सप्ताह और दिनो के नाम (रविवार, सोमवार,) का उल्लेख कही भी नही है। महाभारत मे अन्य-अन्य रीतियो से (नक्षत्र आदि बता कर) दिनाक इतनी बार बताया गया है कि रविवार आदि नाम न रहने से यह परिणाम अनिवार्य हो जाता है कि उस समय दिनो का नामकरण नही हुआ था। योग, करण या राशि का नाम भी कही नही आया है। निस्सदेह इन सब एकाइयो का जन्म महाभारत-युग के बाद हुआ होगा।

उत्तरायण और दक्षिणायन

महाभारत मे दिनाक अधिकतर चद्रमा की स्थिति से बताये गये है, परतु कही-कही पर सूर्य की स्थिति से भी दिनाक बताये गये है। उदाहरणत एक स्थान पर यह है —

पर्वसु द्विगुण दानमृतौ दशगुण भवेत् ।। १२४ ।।
अयने विषवे चैव षडशीतिमुखेषु च ।।
चंद्रसूर्योपरागे च दत्तमक्षयमुच्यते ।। १२५ ।।

वनपर्व, अ. २००.

अर्थ—पर्व-दिनो मे, अर्थात अमावस्या या पूर्णिमा के दिन, दिया गया दान दुगुना पुण्य उत्पन्न करता है, ऋतु (के आरभ) मे दिया गया दान दस-गुना पुण्य

उत्पन्न करता है। उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवो पर, तथा षडशीतिमुखो और चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहणो पर दिया गया दान अक्षय कहा जाता है।

उत्तरायण और दक्षिणायन वे ही है जो अब मकर-सक्रांति और कर्क-सक्रांति कहलाते है, विषुव वे अवसर है जब मेष और तुला सक्रातियाँ होती है। षडशीतियाँ वे समय है जब सूर्य रविमार्ग के उन खडो मे रहता है जिन्हे अब मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि कहते है। इससे प्रत्यक्ष है कि महाभारत के समय मे रविमार्ग को १२ भागो मे विभक्त किया जाता था। यह स्वाभाविक भी है, क्योकि वर्ष मे १२ महीने माने जाते थे। परतु महाभारत मे राशियो के नाम नही दिये गये है। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि उस समय रविमार्ग के बारह खडो का नामकरण नही हुआ था, अर्थात मेष, आदि नाम बाद मे रक्खे गये।

ग्रहण

ऊपर के उद्धरण मे ग्रहणो की चर्चा है, इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी ग्रहणो की चर्चा है। यह लोगो को ज्ञात था कि ग्रहण केवल अमावस्या या पूर्णिमा को लग सकते थे। अमावस्या या पूर्णिमा को वे पर्व कहते थे। अनहोनी-सी बात का होना अशुभ समझा जाता था। इसलिए जब पाडव वनवास जाने लगे तब ऐसा लिखा है कि अपर्व पर ही सूर्य-ग्रहण हुआ

राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशापते ॥ १९ ॥

सभपार्व, अ. ७९

अर्थ—हे राजन्! (उस समय) विना पर्व (अमावस्या) के ही राहु ने सूर्य का ग्रहण कर दिया।

महाभारत युद्ध के आरभ मे एक ग्रहण के बाद दूसरे ग्रहण का १३ दिन पर ही हो जाना महा-अनिष्ट होने के लक्षण-स्वरूप लिखा गया है

अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीं।
चंद्रोभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णे नभस्तले ॥

भीष्मपर्व, अ. २

चतुर्दशी पचदशी भूतपूर्वा तु षोडशीं ॥
इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशी ॥
चंद्रसूर्याबुभौ ग्रस्तावेकमासी त्रयोदशी ॥ ३२ ॥

भीष्मपर्व, अ. ३.

अर्थ—कार्तिक की पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा प्रकाशहीन होकर अदृश्य हो गया, फिर कमल के समान नीले आकाश मे अग्नि के रग का (अर्थात लाल) हो

गया[1]। पहले समय मे चौदहवे, पन्द्रहवे अथवा सोलहवे दिन अमावस्या होती थी, परतु तेरहवे दिन अमावस्या का होना मुझे कदापि ज्ञात नही है। पर इस बार तो एक मास के भीतर ही (पूर्णिमा पर) चद्रमा का और त्रयोदशी को सूर्य का ग्रहण हुआ है।

इससे प्रत्यक्ष है कि ग्रहणो के सबध मे पूर्ण रूप से ज्ञात था कि दो ग्रहणो के बीच केवल १३ दिन का अतर नही हो सकता। वास्तव मे उस समय १३ दिन के अतर पर दूसरा ग्रहण लगा था, या लेखक ने अशुभ लक्षणो मे इसे भी दिखा देना उत्तम समझा, कहा नही जा सकता, क्योकि कभी-कभी पक्ष (अर्ध-मास) १४ दिन से कम का भी होता है, और तब उसे १३ दिन का गिना जा सकता है। शकर बालकृष्ण दीक्षित ने बताया है कि शक १७९३ मे फाल्गुन का कृष्ण पक्ष कुल १३ दिन का था। इसी प्रकार शक १८०० के ज्येष्ठ का शुक्ल पक्ष फिर कुल १३ दिन का था। ये १३ दिन के पक्ष बिरले अवसरो पर ही आते है। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार पक्ष का न्यूनतम मान १४ दिनो से थोडा ही कम निकलता है। इस सबध मे पाठक को स्मरण रखना चाहिए कि न तो सूर्य सदा एक वेग से चलता है और न चद्रमा ही। इसलिए पक्षो की लबाई बराबर नही होती। यदि १४ दिन से कुछ कम का पर्व हुआ तो भारतीय गणना के अनुसार दो ग्रहण १३ दिन पर लग सकते है। उदाहरणत, यदि किसी दिन (स्पष्टता के लिए मान ले १ जनवरी को) सूर्योदय के कुछ मिनट बाद तक ग्रहण लगा रहा तो अवश्य ही कहा जायगा कि उस दिन (अर्थात १ जनवरी को) सूर्यग्रहण लगा था। १३ दिन बाद १४ जनवरी हो जायगी। उस दिनाक को यदि रात बीतने के दस-पाँच मिनट पहले चद्रग्रहण आरभ हुआ तो अवश्य ही लोग कहेगे कि १४ जनवरी को चद्रग्रहण लगा, क्योकि विशुद्ध भारतीय पद्धति मे दिनाक सूर्योदय के क्षण बदलता है, अर्धरात्रि के क्षण नही। इस उदाहरण मे १ जनवरी वाले सूर्यग्रहण के मध्य से १४ जनवरी वाले चद्रग्रहण के मध्य तक १३ दिन से कई घटे अधिक बीत चुके रहेगे, यद्यपि साधारण लोगो की भाषा मे १३ दिन पर ही गहण लग गया। इसलिए १३ दिन पर ग्रहण लगना अवश्य ही सभव है।

तो भी, सभव होना एक बात है, वस्तुत घटित होना दूसरी बात है। मुझे तो महाभारत-युद्ध के आरभ मे पूर्वोक्त दो ग्रहणो का लगना केवल कवि की कल्पना

[1] सर्व चंद्रग्रहण के अवसर पर ऐसा ही होता है।

जान पडती है। इस सदेह का समर्थन यो भी होता है कि दुर्योधन के मरने पर भी वही बात लिखी गयी है

राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशापते ॥ १० ॥

गदापर्व, अ. २७

युद्ध के एक महीने पहले सूर्यग्रहण लग चुका था[१]। युद्ध के अत मे फिर सूर्य-ग्रहण का लगना असभव था। अपर्व मे ग्रहण लगना तो सर्वदा असभव है ही। इसलिए दुर्योधन के मरते समय अपर्व मे ग्रहण लगना कवि की कल्पना ही हो सकती है। अत ग्रहण सबधी अन्य चर्चाएँ भी अवास्तविक हो तो क्या आश्चर्य है।

परतु इन उल्लेखो से यह तो स्पष्ट ही है कि ग्रहण कितने-कितने दिन पर लग सकते है इसका अच्छा ज्ञान उस समय भी था।

राहु सूर्य को निगल जाता है, इससे सूर्यग्रहण लगता है, इस कथन से पता नही चलता कि सूर्यग्रहण और चद्रग्रहण का वास्तविक कारण महाभारत के समय के ज्योतिषियो को ज्ञात था या नही। परतु ग्रहो के सबध मे महाभारत मे कही उन्हे पाँच माना गया है, कही सात। सात ग्रह तभी सभव है जब राहु और केतु भी उनमे गिने जायँ। परतु राहु और केतु का भी ग्रह माना जाना सूचित करता है कि उनकी गतियाँ ज्ञात थी। इससे बडी सभावना हो जाती है कि ग्रहणो का ठीक कारण भी उस समय ज्ञात था।

ग्रह

ग्रहो की सख्या के सबध मे एक उद्धरण नीचे दिया जाता है

ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेया॰ प्रहारिणः ॥
राक्षस दुद्रुवु. सख्ये ग्रहा. पच रवि यथा ॥ ३७ ॥

भीष्मपर्व, अ. १००.

अर्थ—जैसे पाँच ग्रह सूर्य को घेरते है, वैसे ही द्रौपदी के पाँचो महान धनुर्धर पुत्रो ने क्रुद्ध होकर अलम्बुष नामक राक्षस को घेर कर उस पर आक्रमण किया।

[१] दीक्षित, भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ ११५।

ग्रहो की अनुदिश तथा प्रतिदिश (वक्र) गतियाँ, अर्थात उनका आगे और पीछे चलना, भी महाभारत के समय के लोग जानते थे[1]। लिखा है :

प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने ससप्तकान् बहून् ।।
वक्रातिवक्रगमनादगारक इव ग्रहः ।। १ ।।

कर्णपर्व, अ. १४ (भडारकर रि० इ०).

अर्थ—फिर अर्जुन ने पीछे लौटकर बहुत-से ससप्तको पर उसी प्रकार प्रहार किया जैसे तीव्र वक्र गति से चलता हुआ मङ्गल नामक ग्रह ।

तारो के बीच कौन ग्रह कहाँ है इसका उल्लेख बीसो स्थान पर है । यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

श्वेतोग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति ।। १२ ।।
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्य चाक्रम्य तिष्ठति ।। १३ ।।
मघास्वंगारको वक्र श्रवणे च बृहस्पतिः ।।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीडयते ।। १४ ।।

[1] **पाठको की जानकारी के लिए नीचे १९५६ मे तारो के सापेक्ष मंगल का मार्ग दिखाया गया है। देखे कि लगभग ५ जूलाई से ९ अक्टूबर तक मंगल की गति वक्र (अर्थात उलटी दिशा में) है। [कोने मे अन्य ग्रह का मार्ग दिखाया गया है।]**
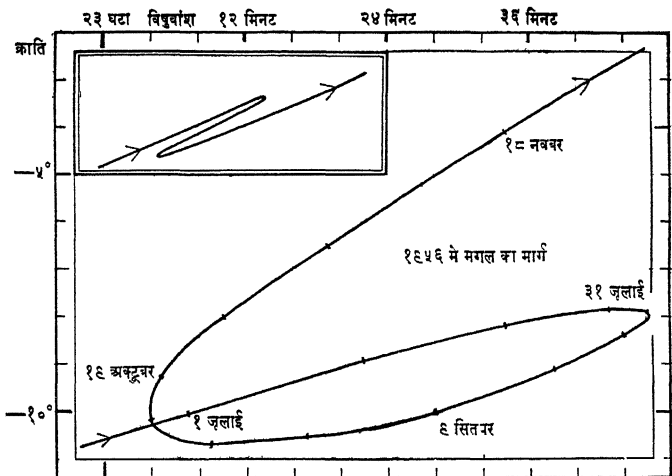
शुक्र प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते ॥ १५ ॥
रोहिणी पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ॥
चित्रास्वात्यतरे चैव विष्टित परुषग्रहः ॥१७॥
वक्रानुवक्र कृत्वा च श्रवण पावकप्रभ. ॥
ब्रह्मराशि समावृत्य लोहितागो व्यवस्थितः ॥१८
सवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ ॥
विशाखाया समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ॥ २७ ॥

भीष्मपर्व, अ ३

अर्थ—(व्याम जी ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन्! कार्तिकी के बाद सग्राम का आरभ होगा, क्योकि उस समय) श्वेतग्रह (केतु) चित्रा को पार करके (स्वाती पर) रहेगा। महाभयकर धूमकेतु (पुच्छलतारा) पुष्य के पार पहुँचेगा। मघा पर मगल तथा श्रवण पर बृहस्पति वक्र होगे एव पूर्वा फाल्गुनी को पकड कर शनि उसे पीडित करेगा। पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र पर समारूढ होकर शुक्र प्रकाशमान होगा। सूर्य और चद्रमा दोनो रोहिणी मे रहेगे और परुषग्रह (निर्दयी ग्रह) चित्रा और स्वाती के बीच रहेगा। वक्रानुवक्र (अर्थात अति वक्र) होकर श्रवण मे अग्नि के समान लाल लोहिताग (मगल) ब्रह्मराशि (तारा विशेष) को भलीभाँति ढक लेगा। अत्यत प्रज्वलित बृहस्पति और शनैश्चर विशाखा के समीप वर्ष भर तक रहेगे। [और ग्रहो की ये स्थितियाँ अत्यत अनिष्टकारी है।]

इन सब उद्धरणो से स्पष्ट है कि महाभारत के समय मे लोगो को ग्रहो का अच्छा ज्ञान था। आकाश मे ग्रहो की स्थितियाँ क्या है यह अवश्य ही बराबर देखा जाता रहा होगा।

अध्याय ८

आर्यभट

वेदांग-ज्योतिष के बाद

वेदाग-ज्योतिष के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक का हमे कोई भारतीय ज्योतिष-ग्रथ नही मिलता, तब कौटिल्य के अर्थशास्त्र से (जो लगभग ३०० ई० पूर्व का है) पता चलता है कि उस समय भी ज्योतिष मे विशेष उन्नति नही हो पायी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के लगभग १०० वर्ष बाद की एक पुस्तक सूर्य-प्रज्ञप्ति है जिसमे जैनियो के मतानुसार विश्व की रचना दी गयी है। इसके ज्योतिष सम्बन्धी नियम वेदाग-ज्योतिष से मिलते-जुलते है। इसके बाद लगभग ७०० वर्ष के भीतर का लिखा हमे कोई ग्रथ नही मिलता। तब हमे सन ४९९ ईसवी का आर्यभट-लिखित आर्यभटीय मिलता है। तत्र नामक ग्रथ भी आर्यभट का लिखा है। ये दोनो ग्रथ आज भी उपलब्ध है। आर्यभट का जन्म सन ४७६ ई० मे हुआ था। उनके बाद वराहमिहिर हुए जिनकी एक रचना पचसिद्धान्तिका है। पचसिद्धान्तिका मे विशेषता यह है कि उसमे लेखक ने अपना सिद्धान्त न देकर उस समय के पाँचो प्रचलित सिद्धान्तो का वर्णन दिया है। ये है पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह। वराहमिहिर ने लिखा है कि "इन पाँच मे से पौलिश और रोमक के व्याख्याकार लाटदेव है। पौलिश सिद्धान्त स्पष्ट है, रोमक सिद्धान्त उसी के निकट है, सूर्यसिद्धान्त सब मे अधिक स्पष्ट है, शेष दोनो बहुत भ्रष्ट है"। वराहमिहिर की मृत्यु सन ५८७ ई० मे हुई। पचसिद्धान्तिका मे दिये हुए पैतामह सिद्धान्त मे गणना करने के लिए सन ८० ई० को आदि काल माना है जिससे अनुमान किया जाता है कि असली पैतामह सिद्धान्त लगभग उसी समय रचा गया होगा। पैतामह सिद्धान्त भी ज्योतिष-वेदाग से बहुत आगे नही बढ पाया है। इसलिए वराहमिहिर ने इसे भ्रष्ट बताया है।

वराहमिहिर के बाद सन ५९८ ई० मे ब्रह्मगुप्त उत्पन्न हुए जिनकी लिखी पुस्तके ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त और खडखाद्यक आज भी प्राप्य है। भास्कराचार्य ने अपनी

रचना सिद्धान्तशिरोमणि को ११५० ई० मे तैयार किया। उनके बाद फिर किसी भारतीय ज्योतिषी ने विशेष ख्याति नही प्राप्त की।

आर्यभट के पहले के ज्योतिषी

जैसा ऊपर बताया गया है आर्यभट की पुस्तक आर्यभटीय आज भी प्राप्य है। परतु आर्यभट के पहले भी कुछ प्रसिद्ध ज्योतिषी हो गये है जिनकी पुस्तके अब लुप्त हो गयी है। इन ज्योतिषियो मे से गर्ग की चर्चा कई स्थानो पर आती है। महाभारत मे लिखा है कि गर्ग महर्षि राजा पृथु के ज्योतिषी थे। उनको काल का ज्ञान विशेष-रूप से अच्छा था। उनका गार्गी-सहिता अब लुप्त हो गया है, परतु सम्भव है गणित-ज्योतिष के बदले इसमे फलित ज्योतिष की बाते ही अधिक रही हो। वराहमिहिर ने पचसिद्धान्तिका के अतिरिक्त बृहत्सहिता नामक ग्रथ भी लिखा है जो फलित ज्योतिष पर है। उसमे उन्होने गर्ग से कई अवतरण दिये है जिनमे से दो तीन यहा दिये जाते है[1]

"वृद्ध गर्ग के प्रमाण पर मै कहता हूँ कि सप्तऋषि मघा मे थे।"[2]

"देवताओ के निवासस्थान मेरु पर्वत की इस वाटिका मे नारद ने रोहिणी योग के नियमो की शिक्षा बृहस्पति को दी। उन्ही नियमो की शिक्षा गर्ग, पराशर, कश्यप और मय अपने अनेक शिष्यो को देते रहे है। उनके तथ्यो का निरीक्षण कर मै सक्षिप्त पुस्तक लिखता हूँ"[3]।

"मैने केतुओ की चर्चा की है, परतु पहले मैने गर्ग, पराशर और असित देवल की पुस्तको का, तथा अन्य सब पुस्तको का, चाहे वे गिनती मे कितनी भी अधिक हों, अध्ययन कर लिया है"[4]।

पुलिश, जिसके पौलिशसिद्धान्त को सक्षेप मे वराहमिहिर ने अपनी पच-सिद्धान्तिका मे दिया है, सभवत कोई यवन था, क्योकि अलबीरूनी ने (सन १०३१ ई० मे) अपने 'भारतवर्ष' मे लिखा है कि पौलिश सिद्धान्त को पुलिश ने बनाया है, जो सत्र (सम्भवत अलेकजैड्रिया) का निवासी था।

[1] के महाशय की पुस्तक 'हिन्दू ऐस्ट्रॉनोमी' मे दिये गये अवतरणो से संकलित।

[2] बृहत्संहिता २।३।

[3] बृहत्सहिता २४।२। पराशर तथा कश्यप के बारे मे हमे अन्य कोई ज्ञान नही है। मय ने सूर्य-सिद्धान्त की घोषणा की थी।

[4] बृहत्संहिता ११।१। असित देवल का भी पता अब नही चलता।

ज्योतिष पर बौद्ध धर्म के विचार

बौद्ध धर्म फलित ज्योतिष को, और अशत गणित ज्योतिष को भी, बहुत ही हीन दृष्टि से देखता था। लिखा है कि

"कुछ ब्राह्मण और शर्मा लोग अपनी जीविका का उपार्जन नीच वृत्तियो से करते है और भय द्वारा दिये गये अन्न का भोग करते है। वे भविष्यवाणी करते है कि सूर्य-ग्रहण लगेगा, चद्रग्रहण लगेगा, नक्षत्रों का ग्रहण लगेगा, चद्रमा और सूर्य पथ मे चलेगे, चद्रमा और सूर्य उपपथ मे चलेगे, नक्षत्र पथ मे चलेगे, नक्षत्र उपपथ मे चलेगे, उल्कापात होगा, दिशा-दाह (?) होगा, भूचाल होगा, देवदुदुभि बजेगी, सूर्य, चद्रमा और नक्षत्र का उलटा-पलटा उदय होगा, अस्त होगा, सब पर विपत्ति पड़ेगी।"[1]

आर्यभट

जब बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा, गुप्तकाल मे हिंदू धर्म का उत्थान हुआ और यवनो की ज्योतिष का भी भारतवर्ष मे आगमन हुआ, तब भारतीय ज्योतिष का भी अध्ययन-अध्यापन जोरों से होने लगा[2]। इसका फल यह हुआ कि विक्रम की छठवी शताब्दी मे ज्योतिष के कई आचार्य उत्पन्न हो गये। किसी ने भारतीय ज्योतिष का मथन करके ज्योतिष पर ग्रथ रचे, किसी ने यवन ज्योतिष का सार लेकर ग्रथ बनाये, किसी ने दोनो का सार लेकर ज्योतिष के ग्रथो की रचना की (और किसी ने खोजो से प्राप्त नवीन ज्ञान का भी समावेश किया)। इनमें सब से प्रमुख आर्यभट हुए, जिन्होने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक आर्यभटीय मे अपना जन्म-काल कलियुग सवत ३५७७ बताया है और ग्रहो की गणना के लिए ३६०० कलि सवत निश्चय किया है। इनकी पुस्तक मे शक काल अथवा विक्रम सवत की चर्चा नही है। इस नाम के एक और ज्योतिषी ९५० ई० के लगभग हो गये है जिन्होने महासिद्धात नामक ज्योतिष-ग्रथ की रचना की है। इसलिए इन्हे हम प्रथम आर्यभट कहेगे।

[1] **दीघनिकाय १।६८ (पाली टेक्स्टबुक सोसायटी)।**

[2] **यहाँ से इस अध्याय के अत तक की पूरी सामग्री मेरे द्वारा सपादित सरल विज्ञानसागर नामक ग्रंथ के एक अध्याय से लिया गया है, जिसके लेखक स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव थे।**

आर्यभटीय के ध्रुवाक

प्रथम आर्यभट के समय मे ६० सवत्सरो के युग का प्रचार अच्छी तरह हो गया था, क्योकि इन्होने अपना जन्म-काल बताते हुए ६० सवत्सरो के युग का प्रयोग किया है और लिखा है कि ६० सवत्सरो के ६० युग और तीन युगपाद (सतयुग, त्रेता, द्वापर) जब बीत गये तब मेरे जन्म से २३ वर्ष बीत चुके थे[१]। इन्होने कुसुमपुर[२] मे, जिसे आजकल पटना कहते है, अपने ग्रथ आर्यभटीय का निर्माण किया था। य बडे ही प्रतिभाशाली ज्योतिषी थे और प्राचीन ग्रथो को अपने अनुभवो से शोधकर आर्यभटीय ग्रथ की रचना[३] की। पीछे के आचार्यो, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, आदि, के कथनो[४] से प्रकट होता है कि इन्होने एक और ग्रथ की रचना की थी जिसके ध्रुवाङ्क आर्यभटीय के ध्रुवाङ्क से कुछ भिन्न थे, युग का आरभ अर्द्ध-रात्रि से माना गया था और महायुगीय सावन दिनो का मान ३०० दिन अधिक था। ब्रह्मगुप्त ने अपने खण्डखाद्यक नामक ज्योतिष-ग्रथ की रचना इन्ही ध्रुवाङ्कों के आधार पर की थी। अब इस वात का स्पष्ट प्रमाण मिल गया है कि आर्यभट ने दो ग्रथो की रचना की थी, एक मे युग का आरभ आधी रात से और युग मे सावन दिनो की सख्या

[१] षष्ट्यब्दाना षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः ॥१०॥

कालक्रियापाद।

[२] ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चित ज्ञानम् ।१॥

गणितपाद।

[३] सदसज्ज्ञानसमुद्रात् समुद्धृत देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तमरत्नं मया निमग्नं स्वमतिनावा ॥४९॥

गोलपाद।

[४] युगरविभगणाः ख्युघ्रीति यत् प्रोक्तं तत्तयोर्युग स्पष्टम्।
त्रिशतो ख्युदयानां तदन्तर हेतुना केन ॥

ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त, ११, ५।

लङ्काार्द्धरात्रसमये दिनप्रवृत्ति जगाद चार्य्यभटः।
भूयः स एव सूर्य्योदयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम् ॥

पंचसिद्धान्तिका, १५, २०।

३०० अधिक मानी गयी थी और दूसरे मे युग का आरभ सूर्योदय से माना गया था। पहली गणना को अर्द्ध-रात्रिक गणना और दूसरी को औदयिक गणना कहते है। यह प्रमाण महाभास्करीय और लघुभास्करीय नामक ग्रथो से मिलता है। इन पुस्तकों की रचना भास्कर नामक किसी ज्योतिषी ने की थी जो आर्यभट की शिष्य-परपरा मे थे और सिद्धान्तशिरोमणि के रचयिता प्रसिद्ध भास्कराचार्य से भिन्न थे। इसलिए इनका नाम भास्कर प्रथम लिखना ठीक होगा। प्रथम पुस्तक मे पहले औदयिक[1] विधि से गणना करने के ध्रुवाङ्क दिये गये है, फिर अर्द्धरात्रिक विधि से। जान पडता है कि आर्यभट का पहले का लिखा हुआ ग्रथ वही था जो किसी प्रकार लुप्त हो गया और आर्यभटीय दूसरा ग्रथ है जिसकी रचना २३ वर्ष की अवस्था मे नही की गयी थी, वरन अधिक अवस्था मे की गयी थी, जब आर्यभट ने बार-बार के वेधो से अपनी पहली रचना मे सशोधन कर लिये थे। आर्यभटीय की रचना-पद्धति बहुत ही वैज्ञानिक और भाषा बहुत ही सक्षिप्त तथा मँजी हुई है। इसलिए इनका जन्म-काल बताने वाले श्लोक का अर्थ केवल इतना ही है कि ३६०० कलियुग मे उनकी अवस्था २३ वर्ष की थी जब ग्रहो के ध्रुवाङ्को की गणना निश्चय की गयी थी। यही बात आर्यभटीय के टीकाकारो[2] ने भी मानी है।

सख्या लिखने की अनोखी रीति

आर्यभटीय मे कुल १२१ श्लोक है जो चार खण्डो मे विभाजित किये गये है :— (१) गीतिकापाद, (२) गणितपाद, (३) कालक्रियापाद और (४) गोलपाद। गीतिका-

[1] निबन्ध. कर्म्मणां प्रोक्तो योऽसावौदयिको विधिः।
अर्द्धरात्रेस्त्वयं सर्व्वो यो विशेषः स कथ्यते ॥२१॥
त्रिशती भूदिने क्षेप्या ह्यवमेभ्यो विशोध्यते।
ज्ञगुर्वोर्भगणेभ्योऽपि विंशतिश्च ततोब्धयः ॥२२॥
अन्यस्याप्येवमेव स्यात् शेषाः प्रागुक्तकल्पना।
एतत्सर्वं समासेन तन्त्रान्तरमुदाहृतम् ॥२३॥

भास्कर प्रथम

[2] एतदेवाचार्य्यार्य्यभटस्य शास्त्रव्याख्यानसमये वा
पाण्डुरंग स्वामिलाटदेवनिःशकुप्रभृतिभ्य. प्रोवाच।

भास्कर प्रथम

अस्यायमभिप्रायः। अस्मिन् काले गीतिकोक्त भगणैस्त्रै-
राशिकेनानीता ग्रहमध्यमोच्चपाताः स्फुटाः स्यु ॥

सूर्यदेव यज्वा की 'प्रकाशिका' टीका

पाद सबसे छोटा, केवल ११ श्लोको का है, परतु इसमे इतनी सामग्री भर दी गयी है जितनी सूर्यसिद्धात के पूरे मध्यमाधिकार और कुछ स्पष्टाधिकार मे आयी है। इसके लिए आर्यभट ने अक्षरो द्वारा सक्षेप मे सख्या लिखने की एक अनोखी रीति का निर्माण किया है जो इस श्लोक मे प्रकट की गयी है --

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङमौ यः।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ।।

अर्थ—**क** से आरभ करके वर्ग अक्षरो को वर्ग स्थानो मे और अवर्ग अक्षरो को अवर्ग स्थानो मे (व्यवहार करना चाहिए), (इस प्रकार) **ङ** और **म** मिलकर **य** (होता है)। वर्ग और अवर्ग स्थानो के ९ के दूने शून्यो को ९ स्वर प्रकट करते है। यही (क्रिया) ९ वर्ग स्थानो के अन्त के पश्चात (दुहरानी) चाहिए[1]।

एकाई, सैकडा, दस हजार, दस लाख आदि विषम स्थानो को वर्ग स्थान और दहाई, हजार, लाख आदि सम स्थानो को अवर्ग स्थान कहते है, क्योकि १, १००, १०००० आदि के वर्गमूल पूर्णाङ्को मे जाने जा सकते है, परतु १०, १०००, १००००० आदि के वर्गमूल पूर्णाङ्को मे नही निकल सकते। सस्कृत या हिन्दी व्याकरण मे वर्णमाला के अक्षर दो भागो मे बॉटे गये है, १६ स्वर और ३३ व्यजन। फिर, व्यजन दो भागो मे बॉटे गये है, वर्ग और अवर्ग। **क** से **म** तक के अक्षर पॉच वर्गो मे, अर्थात कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग मे, बॉटे गये है। शेष ८ अक्षरो को (अर्थात **य, र, ल, व, श, ष, स, ह** को) अवर्ग कहा गया है। आर्यभट ने वर्ग अक्षरो को १, २, . ., २५ तक की सख्याओ को सूचित करने के लिए निर्धारित किया, अवर्ग अक्षरो से ३०, ४०, ,१०० को निरूपित किया, और शून्य लगाने के लिए स्वरो से काम लिया।

[1] इस श्लोक के अर्थ पर पाश्चात्य विद्वानगण ह्विश, ब्राक्हाउस, कर्न, बार्थ, रोडे, के, फ्लीट, क्लार्क और भारतीय विद्वानगण दत्त, गंगोली, दास और लहिरी ने अच्छी तरह विचार किया है। 'ख' का अर्थ क्लार्क और फ्लीट ने 'स्थान' किया है, परंतु इस का अर्थ शून्य युक्तियुक्त और परम्परा के अनुसार है; और आर्यभटीय के व्याख्याकार भास्कर प्रथम, सूर्यदेव यज्वा आदि ने यही अर्थ किया है (देखें विभूतिभूषण दत्त और अवधेश नारायण सिह की हिस्टरी ऑव हिन्दू मैथिमैटिक्स, भाग १, पृष्ठ ६५)।

१६ स्वरो मे केवल ९ स्वर अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ इस काम के लिए प्रयुक्त होते है और वे क्रमानुसार $१००^{०}$, $१००^{१}$, $१००^{२}$, $१००^{३}$, $१००^{४}$, • प्रकट करते है।

रीति का स्पष्टीकरण

पूर्वोक्त कल्पना के अनुसार अक्षरो से सख्या लिखने की रीति यह है —

क=१	ट=११	फ=२२
ख=२	ठ=१२	ब=२३
ग=३	ड=१३	भ=२४
घ=४	ढ=१४	म=२५
ङ=५	ण=१५	य=३०
च=६	त=१६	र=४०
छ=७	थ=१७	ल=५०
ज=८	द=१८	व=६०
झ=९	ध=१९	श=७०
ञ=१०	न=२०	ष=८०
	प=२१	स=९०,
		ह=१००,

अ = १,

इ = १००,

उ = $१००^{२}$ अर्थात १००००,

ऋ = $१००^{३}$ अर्थात १००००००,

लृ = $१००^{४}$ अर्थात १००००००००,

ए = $१००^{५}$ अर्थात १००००००००००,

ऐ = $१००^{६}$ अर्थात १००००००००००००,

ओ = $१००^{७}$ अर्थात १००००००००००००००,

औ = $१००^{८}$ अर्थात १००००००००००००००००,

उदाहरण

नियम का अधिक विस्तार न करके केवल तीन उदाहरण देकर बताया जायगा कि आर्यभट ने अपनी रीति का व्यवहार कैसे किया है। एक महायुग मे सूर्य पृथ्वी का

४३,२०,००० चक्कर (भगण)[१] लगाता हुआ माना गया है, चन्द्रमा ५,७७,५३,३३६ और पृथ्वी १,५८,२२,३७,५०० बार घूमती हुई मानी गयी है। इन तीन सख्याओ को आर्यभट ने इस प्रकार प्रकट किया है

ख्युघृ, चयगियिङुशुछ्लृ और ङिशिबुण्लृख्षृ

ख २ के लिए लिखा गया है और **य** ३० के लिए। दोनो अक्षर मिलाकर लिखे गये है और इनमे **उ** की मात्रा लगी है जो १००^{२} या १०००० के समान है, इसलिए **ख्यु** का अर्थ हुआ ३२ × १००^{२} या ३२०००० । **घृ** के **घ** का अर्थ है ४ और **ऋ** का १००^{३} या १००००००, इसलिए **घृ** का अर्थ हुआ ४००००००, इसलिए **ख्युघृ** = **खु** + **यु** + **घृ** । अब

	खु =	२००००
	यु =	३०००००
	घृ =	४००००००
इसलिए	ख्युघृ =	४३२००००

इसी प्रकार	च =	६
	य =	३०
	गि =	३००
	यि =	३०००
	ङु =	५००००
	शु =	७०००००
	छ्लृ =	५७००००००
		५७७५३३३६

[१] भग के 'भ' का अर्थ है नक्षत्र, इसीलिए भगण का अर्थ हुआ नक्षत्रगण या रविमार्ग के २७ नक्षत्र, जिन पर एक बार चलने से ग्रहो का एक चक्कर पूरा होता है। इसलिए भगण का अर्थ हुआ चक्कर, और भगणकाल का अर्थ हुआ एक चक्कर या परिक्रमा करने का समय।

यहाँ छ मे लृ की मात्रा नही लगी है वरन् छ और ल मे ऋ की मात्रा लगी है, इसलिए छ्ल का अर्थ हुआ ५७।

ऐसे ही,

डि =	५००
शि =	७०००
बु =	२३००००
ण्लृ =	१५०००००००
ख्षृ =	८२००००००
	१५८२२३७५००

सख्या लिखने की इस रीति मे सबसे बडा दोष यह है कि यदि अक्षरो मे थोडा-सा भी हेर-फेर हो जाय तो बडी भारी भूल हो सकती है। ऊपर के तीसरे उदाहरण मे कर्न की पुस्तक मे बु के स्थान मे षु छप गया है, जिसका अर्थ हुआ ८,००,०००, जब बु का अर्थ होता है २,३०,०००।

दूसरा दोष यह है कि ल मे ऋ की मात्रा लगायी जाय तो इसका अब रूप वही होता है जो लृ स्वर का, परन्तु दोनो के अर्थो मे बडा अतर पडता है। दूसरे उदाहरण मे छ्लृ मे छ और ल अलग-अलग अक्षर है और इन दोनो मे ऋ की मात्रा लगायी गयी है, परतु तीसरे उदाहरण मे ण मे लृ की मात्रा लगी है, ल स्वतत्र अक्षर नही है। दूसरे उदाहरण का अक्षर छ सात की सख्या सूचित करता है, इसलिए यह ल के साथ, जो ५० की सख्या सूचित करता है, जोडा जा सकता है और दोनो मे ऋ की मात्रा लगायी जा सकती है, परतु तीसरे मे पहला अक्षर ण १५ की सख्या सूचित करता है, इसलिए इसमे ल अक्षर नही जोडा जा सकता, परतु लृ की मात्रा लगायी जा सकती है। निस्सदेह, हाथ से लिखने मे पहले ल मे ऋ की मात्रा और लृ की मात्रा मे अतर स्पष्ट कर दिया जाता रहा होगा, परतु आधुनिक छपाई मे यह अतर मिट गया है।

आर्यभटीय की विषय-सूची

इन दोषो के होते हुए भी इस प्रणाली के लिए आर्यभट की प्रतिभा की प्रशसा करनी ही पडती है। इसमे उन्होने थोडे ही श्लोको मे बहुत-सी बाते लिख डाली है। गागर मे सागर भर दिया है।

ऊपर के उदधृत श्लोक तथा इससे पहले के प्रथम श्लोक की, जिसमे ब्रह्मा और परमब्रह्म की वदना की गयी है, कोई क्रमसख्या नही दी गयी है, क्योकि ये प्रस्तावना

के रूप मे है और गीतिकापाद मे सम्मिलित नही किये गये है, जैसा कि गीतिकापाद के ११वे श्लोक[1] मे आर्यभट ने स्वय लिखा है। इसके बाद के श्लोक की क्रमसख्या १ है जिसमे सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, शनि, गुरु, मगल, शुक्र और बुध के महायुगीय भगणो की सख्या बतायी गयी है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि आर्यभट ने एक महायुग मे पृथ्वी के घूर्णन की सख्या भी दी है, क्योकि उन्होने पृथ्वी का दैनिक भ्रमण माना है और इसके लिए आगे गोलपाद के ९वे श्लोक मे नौका के चलने का उदाहरण भी दिया है। इस बात के लिए पीछे के आचार्यो ने, जैसे वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि ने, इनकी निन्दा की है। इससे भी आर्यभट की स्वतत्रता का पता चलता है।

अगले श्लोक मे ग्रहो के उच्च और पात के महायुगीय भगणो की सख्या बतायी गयी है। तीसरे श्लोक मे बताया गया है कि ब्रह्मा के एक दिन मे कितने मन्वन्तर और युग होते है और युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के दिन (गुरुवार) के पहले कितने युग और युगपाद बीत चुके थे। इस श्लोक मे भी एक नवीनता है। प्रत्येक महायुग मे सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग भिन्न-भिन्न परिमाण के माने जाते है। परतु आर्यभट ने सबको समान माना है, उन्होने लिखा है कि वर्तमान महायुग के तीन युगपाद (=युग के चतुर्थांश) बीत गये थे जब कलियुग लगा। आगे के सात श्लोको मे राशि, अश, कला आदि का सबध, आकाश-कक्षा का विस्तार, पृथ्वी, सूर्य, चद्र आदि की गति, अगुल, हाथ, पुरुष और योजन का सबध, पृथ्वी के व्यास तथा सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहो के बिम्बो के व्यास के परिमाण, ग्रहो की क्रान्ति और विक्षेप, उनके पातो और मदोच्चोके स्थान, उनकी मद परिधियो और शीघ्र परिधियो के परिमाण तथा ३ अश ४५ कला के अतरो पर ज्याओ के मानो की सारणी है। इस प्रकार प्रकट है कि आर्यभट ने अपनी नवीन सख्या गणना की पद्धति से ज्योतिष और त्रिकोणमिति की बहुत-सी बाते दस श्लोको मे भर दी है।

अकगणित और रेखागणित

आर्यभट पहले आचार्य हुए है जिन्होने अपने ज्यौतिष सिद्धान्त-ग्रथ मे अङ्कगणित, बीजगणित और रेखागणित के प्रश्न दिये है। उन्होने बहुत-से कठिन प्रश्नो को तीस श्लोको मे भर दिया है। एक श्लोक मे तो श्रेढी-गणित के ५ नियम आ गये है। पहले श्लोक मे अपना नाम और स्थान भी बता दिया है। स्थान कुसुमपुर

[1] दशगीतिकासूत्रमिद भूग्रहचरितं भपञ्जरे ज्ञात्वा।
ग्रहभगणपरिभ्रमण स याति भित्त्वा पर ब्रह्म ॥

है, जिसे आजकल पटना कहते हैं । दूसरे श्लोक में सख्या लिखने की दशमलव पद्धति की एकाइयो के नाम हैं । इसके आगे के श्लोकों मे वर्ग, वर्गक्षेत्र, घन, घनफल, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, त्रिभुजाकार शकु का घनफल, वृत्त का क्षेत्र-फल, गोल का घनफल, विषम-चतुर्भुज क्षेत्र के कर्णो के सम्पात से भुज की दूरी और क्षेत्रफल तथा सब प्रकार के क्षेत्रो की मध्यम लम्बाई और चौडाई जानकर क्षेत्रफल जानने के साधारण नियम दिये गये है । एक जगह बताया गया है कि परिधि के छठवे भाग की ज्या उसकी त्रिज्या के समान होती है । एक श्लोक मे बताया गया है कि वृत्त का व्यास दो हजार हो तो उसकी परिधि ६२८३२ होती है । इससे परिधि और व्यास का सबध चौथे दशमलव स्थान तक शुद्ध आ जाता है । दो श्लोको मे ज्याओ के जानने की व्युत्पत्ति बतायी गयी है, जिससे सिद्ध होता है कि ज्याओ की सारणी आर्यभट ने कैसे बनायी थी । आगे वृत्त, त्रिभुज और चतुर्भुज खीचने की रीति, समतल के परखने की रीति, लबक (साहुल प्रयोग करने की रीति, शकु और छाया से छायाकर्ण जानने की रीति, किसी दीपक और उससे बनी हुई शकु की छाया से दीपक की ऊँचाई और दूरी जानने की रीति, एक ही रेखापर स्थित दीपक और दो शकुओ के सबध के प्रश्न की गणना करने की रीति, समकोण त्रिभुज के भुजो और कर्ण के वर्गो का सबध, जिसे पाइथागोरस का नियम कहते है, परन्तु जो शुल्व सूत्र मे हजारो वर्ष पहले लिखा गया था, वृत्त की जीवा और शरो का सबध, दो काटते हुए वृत्तो के सामान्य खण्ड और शरो का सबध, दो श्लोको मे श्रेढी-गणित के कई नियम, एक श्लोक मे एक-एक बढती हुई सख्याओ के वर्गो और घनो का योगफल जानने का नियम, यह नियम कि

$$(\text{क}+\text{ख})^{२}-(\text{क}^{२}+\text{ख}^{२}) = २\ \text{कख},$$

दो राशियो का गुणनफल और अतर जानकर राशियो को अलग-अलग करने की रीति, व्याज की दर जानने का एक कठिन प्रश्न जो वर्ग समीकरण का उदाहरण है, त्रैराशिक का नियम, भिन्न के हरो को सामान्य हर मे बदलने की रीति, भिन्नो को गुणा और भाग देने की रीति, बीजगणित के कुछ कठिन समीकरणो को सिद्ध करने के नियम, दो ग्रहो का युतिकाल जानने का नियम[१] और कुट्टक नियम बताये गये है ।

जितनी बाते ३० श्लोको मे बतायी गयी है उनको यदि आजकल की परिपाटी के अनुसार विस्तार करके लिखा जाय तो एक बडी-सी पुस्तक बन सकती है और

[१] अर्थात इनडिटर्मिनेट समीकरणो के हल करने का का नियम ।

उन सबको समझने के लिए हाई-स्कूल तक की शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी भी कठिनाई का अनुभव करेगे।

कालक्रियापाद

कालक्रियापाद नामक अध्याय मे ज्योतिष सबधी बाते है। पहले दो श्लोको मे काल और कोण की एकाइयो का सबध बताया गया है। आगे के ६ श्लोको मे अनेक प्रकार के मासो, वर्षो और युगो का सबध बताया गया है। यहाँ एक विशेषता है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। ब्रह्मा का दिन या कल्प १००८ महायुगो का बताया गया है जो गीता, मनुस्मृति तथा अन्य सिद्धान्त-ग्रथो के प्रतिकूल है, क्योकि वे एक हजार महायुग का कल्प मानते है। नवे श्लोक मे बताया गया है कि युग का प्रथमार्ध उत्सर्पिणी और उत्तरार्ध अवसर्पिणी काल है और इनका विचार चन्द्रोच्च से किया जाता है। परन्तु इसका अर्थ समझ मे नही आता। किसी टीकाकार ने इसकी सतोषजनक व्याख्या नही की है। दसवे श्लोक की चर्चा पहले ही आ चुकी है जिसमे आर्यभट ने अपने जन्म का समय बताया है। इसके आगे बताया है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से युग, वर्ष, मास और दिवस की गणना आरभ होती है। आगे के २० श्लोको मे ग्रहो की मध्यम और स्पष्टगति सबधी नियम है।

गोलपाद

गोलपाद आर्यभटीय का अतिम अध्याय है। इसमे ५० श्लोक है। पहले श्लोक से प्रकट होता है कि रविमार्ग के जिस बिन्दु को आर्यभट ने मेषादि माना है वह वसत-विषुव बिन्दु था, क्योकि वे कहते है कि मेष के आदि से कन्या के अत तक रविमार्ग उत्तर की ओर हटा रहता है और तुला के आदि से मीन के अत तक दक्षिण की ओर। आगे के दो श्लोको मे बताया गया है कि ग्रहो के पात और पृथ्वी की छाया, ये रविमार्ग पर भ्रमण करते है। चौथे श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य से कितने अतर पर चन्द्रमा, मगल, बुध, आदि दृश्य होते है। पाँचवाँ श्लोक बताता है कि पृथ्वी, ग्रहों और नक्षत्रो का आधागोल अपनी ही छाया से अप्रकाशित है और आधा सूर्य के सम्मुख होने से प्रकाशित है, यद्यपि नक्षत्रो के सबध मे यह बात ठीक नही है। श्लोक ६, ७ मे बताया गया है कि पृथ्वी के चारो ओर जल-वायु आदि फैले हुए है। ८वे श्लोक मे यह विचित्र बात बतायी गयी है कि ब्रह्मा के दिन मे पृथ्वी की गोलाई एक योजन बढ जाती है और ब्रह्मा की रात्रि मे एक योजन घट जाती है। श्लोक ९ मे बताया गया है कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर पेडो को उलटी दशा मे चलता हुआ देखता है, वैसे ही लका (भूमध्य रेखा) मे स्थिर

तारे पच्छिम की ओर चलते हुए दिखाई पडते है। परतु १०वे श्लोक मे यह भी बताया गया है कि प्रवह वायु के कारण नक्षत्र-चक्र और ग्रह पच्छिम की ओर चलते हुए उदय-अस्त होते है। श्लोक ११ मे सुमेरु पर्वत (उत्तरी ध्रुव) का आकार और श्लोक १२ मे सुमेरु और बडवामुख (दक्षिणी ध्रुव) की स्थिति बतायी गयी है। श्लोक १३ मे विषुवत रेखा पर नब्बे-नब्बे अश की दूरी पर स्थित चार नगरो का वर्णन है। श्लोक १४ मे लका से उज्जैन का अतर बताया गया है, जिससे लका का अक्षाश ज्ञात होता है। श्लोक १५ मे बताया गया है कि भूगोल की मोटाई के कारण खगोल आधे भाग मे कम क्यो दिखायी पडता है। १६वे श्लोक मे बताया गया है कि उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव पर खगोल किस प्रकार घूमता हुआ दिखायी पडता है। श्लोक १७ मे देवताओ, असुरो, पितरो और मनुष्यो के दिन-रात का परिमाण है। श्लोक १८ मे २१ तक खगोल-गणित की कुछ परिभाषाएँ है। श्लोक २२, २३ मे भू-भगोल यत्र का वर्णन है। श्लोक २४-३३ मे त्रिप्रश्नाधिकार के प्रधान सूत्रो का वर्णन है, जिनसे लग्न, काल, आदि, जाने जाते है। श्लोक ३४ मे लम्बन, ३५ मे दृक्कर्म और ३६ मे अयन दृक्कर्म का वर्णन है। श्लोक ३७ से ४७ तक मे सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणो की गणना करने की रीति है। श्लोक ४८ मे बताया गया है कि क्षितिज और सूर्य के योग से सूर्य के, सूर्य और चन्द्रमा के योग मे चन्द्रमा के, और चन्द्रमा, ग्रह तथा तारो के योग से सब ग्रहो के मूलाङ्क जाने गये है। श्लोक ४९ मे बताया गया है कि सत और असत ज्ञान के समुद्र से बुद्धि रूपी नाव मे बैठकर सद्ज्ञान रूपी ग्रथरत्न किस प्रकार निकाला गया है। श्लोक ५० मे बताया गया है कि आर्यभटीय ग्रथ वैसा ही है जैसा आदि काल मे स्वयम्भू का था, इसलिए जो कोई इसकी निन्दा करेगा उसके यश और आयु का नाश होगा।

आर्यभटीय के इतने वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि इसमे ज्योतिष-सिद्धान्त की प्राय सभी बाते और उच्चगणित की कुछ बाते सूत्र रूप मे लिखी गयी है। इसमे तिथि, नक्षत्र, आदि, की गणना तथा नक्षत्रो की सूची और उनकी स्थितियो के सबध मे कुछ नही कहा गया है। जान पडता है कि इन सब बातों का विशद विवेचन आर्य-भट ने अपने दूसरे ग्रथ मे किया था जिसका पता अब नही है।

आर्यभटीय की टीकाएँ

दक्षिण भारत मे आर्यभटीय के आधार पर बने हुए पचाग वैष्णव धर्म वालो को मान्य होते है। ब्रह्मगुप्त, जो आर्यभट के बडे तीव्र समालोचक थे, अत मे इसी के आधार पर खण्डखाद्यक नामक करण-ग्रथ लिखा था। हिन्दी मे आर्यभटीय की

कोई अच्छी टीका नही है। संस्कृत मे इसकी चार टीकाएँ है। प्रथम भास्कर, सूर्यदेव यज्वा, परमेश्वर और नीलकंठ की टीकाओ की चर्चा हिस्ट्री ऑव हिन्दू मैथिमेटिक्स[1] में है। इनमे से परमेश्वर या परमादीश्वर की भटदीपिका टीका के साथ उदयनारायण सिंह ने अपनी हिन्दी की टीका संवत १९६३ मे प्रकाशित की थी। सूर्यदेव यज्वा की संस्कृत टीका का नाम आर्यभट-प्रकाश है। यह टीका भटदीपिका से बहुत अच्छी है, परन्तु अभी तक छपी नही है। अँग्रेजी मे आर्यभटीय की एक टीका डाक्टर कर्न ने भटदीपिका के साथ सन १८७४ ई० मे लाइडेन (हालैण्ड) मे छापी थी।

[1] विभूतिभूषण दत्त तथा अवधेश नारायण सिंह कृत।

अध्याय ६

वराहमिहिर

पंचसिद्धातिका

भारतीय ज्योतिष के इतिहास मे वराहमिहिर-लिखित पचसिद्धातिका का विशेष महत्त्व है, क्योकि इस अकेले ग्रथ से पॉच विभिन्न सिद्धातो का परिचय मिलता है, जिनमे से कुछ तो वराहमिहिर के समय से बहुत प्राचीन समय के थे और कुछ उसी समय के। बहुत दिनो तक यह ग्रथ अप्राप्य था, परतु प्रोफेसर बूलर जिनको बम्बई की सरकार ने सस्कृत हस्तलिखित पोथियो की खोज का काम सिपुर्द किया था, इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त करने मे सफल हुए। डाक्टर थीबो और महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी ने इसे अँग्रेज़ी अनुवाद और सस्कृत टीका सहित सन १८८९ मे प्रकाशित किया। डाक्टर थीबो ने इस अनुवाद के साथ एक विस्तृत भूमिका भी लिखी है। नीचे दी हुई बाते अधिकतर थीबो के अनुसार है।

पुस्तक की मूल दोनो प्रतियाँ बहुत स्थानों मे अशुद्ध थी, यहाँ तक की उनका अर्थ लगाना कठिन था। अनुमान से पाठ का सशोधन करके सशोधित पाठ छापा गया है। परतु कही-कही तो इस प्रकार का अनुमान लगाना भी कठिन हो गया। यदि पचसिद्धातिका का कोई प्राचीन भाष्य होता तो इतनी कठिनाई न होती, परन्तु दुर्भाग्यवश कोई भी भाष्य उपलब्ध न था।

सूर्य-सिद्धात मे लिखा है कि सूर्य ने स्वय उस पुस्तक मे बतायी गयी विद्या को मयासुर को बताया और उसने दूसरो को। इस प्रकार पाठको के हृदय मे यह बात जम जाती है कि उस पुस्तक मे कोई त्रुटि नही हो सकती, क्योकि उसमे स्वय सूर्य भगवान की बतायी हुई बाते है। इसी प्रकार अन्य सिद्धातो मे भी प्रमाणिकता प्राप्त करने की कोई-न-कोई कथा रहती है। वराहमिहिर भी चाहते तो अपना सिद्धात ही लिखते, उनके पाडित्य मे कोई भी शका नही है। परतु उन्होने उसके बदले अपने समय के पाँच प्रमुख सिद्धातो का साराश दिया। इतिहास की दृष्टि से यह बहुत ही अच्छा हुआ।

करणग्रथ

यद्यपि ग्रथ का नाम पचसिद्धातिका है, जिसमे बोध होता है कि इसमे पाँच सिद्रात दिये गये है, तो भी यह करणग्रथ है। करणग्रथ का अर्थ है काम-चलाऊ पुस्तक। करणग्रथो मे ऐसे नियम दिये रहते है जिनसे ज्योतिष की प्रमुख गणनाएँ चटपट हो जाती है, चाहे उत्तर पूर्णतया शुद्ध होने के बदले केवल मोटे ही हिसाब से शुद्ध निकले। सिद्धान-ग्रथो मे नियमो के सिद्धात दिये रहते है और ऐसे नियम दिये रहते है जिनसे उत्तर यथासभव शुद्ध निकले, चाहे उन्हे निकालने मे बहुत अधिक समय क्यो न लगे। परतु पचसिद्धातिका मे कई स्थानो मे ऐसे विषय भी है जो साधारणत करणग्रथो मे नही रहते, केवल सिद्धातो मे रहते है।

विवादग्रस्त अध्याय

पचसिद्धातिका मे पैतामह, वासिष्ठ, रोमक, पौलिश और सौर (सूर्य) इन पाँच सिद्धातो का साराश दिया गया है। वराहमिहिर ने यह भी लिख दिया है कि इन सिद्धांतो मे सबसे उत्तम कौन-सा है और शेष के स्थान क्या है। उन्होने कहा है कि सूर्य-सिद्धात सबसे उत्तम है, उसके बाद रोमक और पौलिश लगभग समकक्ष है और शेष दो सिद्धात इनसे बहुत हीन है। पचसिद्धातिका मे इन सिद्धातो का विस्तार भी लगभग इसी क्रम मे है। परतु थीबो और सुधाकर द्विवेदी यह ठीक-ठीक निर्णय नही कर पाये कि प्रत्येक सिद्धात का विस्तार पचसिद्धातिका मे कहाँ तक है, क्योकि कुछ अध्याय ऐसे है जिनके न आरभ मे और न अत मे, या कही अन्यत्र, बताया गया है कि किस सिद्धात के अनुसार वह अध्याय लिखा गया है। अधिकाश अध्यायो के बारे मे कोई सदेह नही है। विवादग्रस्त अध्याय सभवत वराहमिहिर के निजी है, या सभवत वे दो या अधिक सिद्धातो मे सर्वनिष्ठ है।

सूर्य-सिद्धांत

सूर्य-सिद्धात नामक ग्रथ हमे अलग से भी उपलब्ध है और इस ग्रथ का साराश पचसिद्धातिका मे भी है। तुलना करने से पता चलता है कि दोनो मे बहुत अतर है। ऐसा जान पडता है कि पुराने सूर्य-सिद्धात मे, जो वराहमिहिर के समय मे प्रचलित था, पीछे से सशोधन कर दिये गये है, जिनका उद्देश्य यह था कि सूर्य, चद्रमा, आदि, के भगण (चक्कर लगाने का काल) वेध-प्राप्त (अर्थात आँख से देखे गये या यत्रो से नापे गये) मानों के यथासभव निकट आ जायँ। सशोधित सूर्य-सिद्धात पुराने ग्रथ से अधिक शुद्ध फल देता है, इसमे सदेह नही। इस सशोधित सूर्य-सिद्धात को

हम आधुनिक सूर्य-सिद्धात कहा करेगे, यद्यपि सशोधन हुए लगभग १००० वर्ष हो गये है। कई बातो के सूक्ष्म विवेचन से थीबो और सुधाकर द्विवेदी इस निर्णय पर पहुँचे कि वराहमिहिर ने अपने समय मे प्रचलित सूर्य-सिद्धात का सच्चा साराश दिया है, उसमे कोई मनमाना परिवर्तन नही किया है। इससे उनको विश्वास हो गया कि अन्य चार सिद्धातो का साराश भी वराहमिहिर ने बिना कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये ही दिया होगा।

सिद्धात ग्रथो मे कलियुग के आरभ से गणना करने की परिपाटी है। आधुनिक सूर्य-सिद्धात मे दी हुई बातो के अनुसार हम कलियुग के आरभ की गणना कर सकते है। इस प्रकार कलियुग का आरभ ३१०२ ईसवी पूर्व की १८वी फरवरी के प्रारभ वाली अर्धरात्रि पर होना ठहरता है। सिद्धातो मे यह भी बताया जाता है कि कलियुग के आरभ मे सूर्य चद्रमा, मगल, बुध आदि ग्रह, राहु और वसत विषुव का क्या स्थान था। यह भी दिया रहता है कि एक युग मे कितने वर्ष और कितने अहोरात्र होते है, चद्रमा कितना चक्कर लगाता है, मगल कितना, इत्यादि। इस प्रकार सूर्य आदि पिडो का कोणीय वेग ज्ञात रहता है, उनकी प्रारभिक स्थिति ज्ञात रहती है और यह भी ज्ञात रहता है कि कलियुग के आरभ से इष्ट समय तक कितने दिन बीते है। इसलिए सरल अकगणित से ज्ञात किया जा सकता है कि इष्ट समय पर उस पिड की स्थिति क्या है, अर्थात चलते-चलते अपने आकाशीय मार्ग मे वह पिड कहाँ पहुँचा होगा।

लबी गणनाएँ

थोडा विचार करने से पाठक सुगमता से देख सकता है कि ऊपर की रीति मे बहुत-सा परिश्रम बेकार करना पडता है। पिड ने जितने समूचे चक्कर लगा लिये है उनसे हमारा कुछ प्रयोजन नही रहता। इसलिए कलियुग के आरभ से गणना करने के बदले क्यो न किसी निकटतर क्षण से गणना आरभ की जाय? उदाहरणत, यह भी तो सभव है कि हम किसी सुविधाजनक दिनाक को चुन ले, उस दिन किसी सुविधाजनक क्षण को चुन ले और सब आवश्यक आकाशीय पिडो की स्थितियो की गणना उस क्षण के लिए कर ले। यह काम बस एक बार करना पडेगा। फिर यह देखे कि चुने क्षण से इष्ट क्षण तक (आज स्थिति जाननी हो तो आज तक) कितने दिन बीते है। फिर, पिडो का कोणीय वेग ज्ञात है ही, अर्थात यह ज्ञात है कि एक दिन मे वह कितना अश (कितना डिगरी) चलता है। इस प्रकार हम गणना कर सकते है कि इष्ट क्षण पर पिड की स्थिति क्या होगी। इस गणना मे विशेष सुविधा यह है कि चुने हुए प्रारभिक क्षण से इष्ट क्षण तक थोडे ही दिन बीते रहेगे (कुछ सौ या

कुछ हजार दिन) और इसलिए यदि पिडो की दैनिक गति मे थोडी-बहुत त्रुटि भी रहेगी तो इष्ट क्षण पर गणना द्वारा प्राप्त स्थिति मे उपेक्षणीय ही अतर पडेगा। पाठक सुगमता से समझ सकता है कि जब कलियुग के आरभ से गणना की जाती है तो तब से आज तक के दिनो की सख्या, जिसे ज्योतिष मे अहर्गण कहते है, बहुत ही बडी हो जाती है, और पिड मे तनिक-सी भी त्रुटि रहने से पिड की इष्टकालिक स्थिति मे अनुपेक्षणीय अशुद्धि आ जाती है।

करणग्रथो मे ठीक वही काम किया जाता है जो ऊपर बताया गया है एक क्षण चुन लिया जाता है जो इष्ट समय के पर्याप्त निकट रहता है और तभी से गणना की जाती है। वस्तुत, कुछ लोग इसी बात को करणग्रथ का मुख्य लक्षण समझते है। उनके विचार मे वह ग्रथ सिद्धात है जिसमे कलियुग के आरभ से गणना हो और वह करणग्रथ है जिसमे किसी निकटस्थ विशिष्ट काल से गणना हो[1]। यह विशिष्ट काल (जिसे हम आदिकाल कहेगे) ग्रथकार की रुचि के अनुसार ग्रथ आरभ करने का दिन होता है, या ग्रथकार का जन्म दिन होता है, या उस समय के राजा के राजगद्दी पाने का दिन होता है, या इसी प्रकार का कोई महत्त्वपूर्ण अवसर चुना जाता है। इसलिए आदिकाल ज्ञात होने से ग्रथ के रचनाकाल का भी अनुमान लग जाता है। पचसिद्धातिका के आदिकाल पर विचार नीचे किया जायगा।

पितामह-सिद्धांत

पचसिद्धातिका का बारहवॉ अध्याय पितामह-सिद्धात का साराश देता है। इस अध्याय मे कुल पॉच श्लोक है। प्रथम तीन का अर्थ नीचे दिया जाता है, जिसमे पचसिद्धातिका की शैली का नमूना मिल जायगा —

१ पितामह के अनुसार रवि और शशि का युग पॉच वर्ष का होता है। तीस महीने मे एक अधिमास होता है और बासठ दिनो मे एक तिथि का क्षय होता है।

२ शकेंद्र काल (शको के राजा के अनुसार चलने वाले वर्ष) से २ घटा दो और उसे पॉच से भाग दो। जो शेष बचे उससे अहर्गण बनाओ, और वह (अहर्गण) माघ शुक्ल पक्ष से आरभ होगा।

[1] **कुछ लोग कलियुग से गणना करने वाले ग्रथो को तत्र कहते है, और केवल उन ग्रथो को सिद्धांत कहते है जिनमें कल्प के आदि से गणना की जाती है, परंतु अधिकाश लोग सिद्धात और तत्र को पर्यायवाची समझते है।**
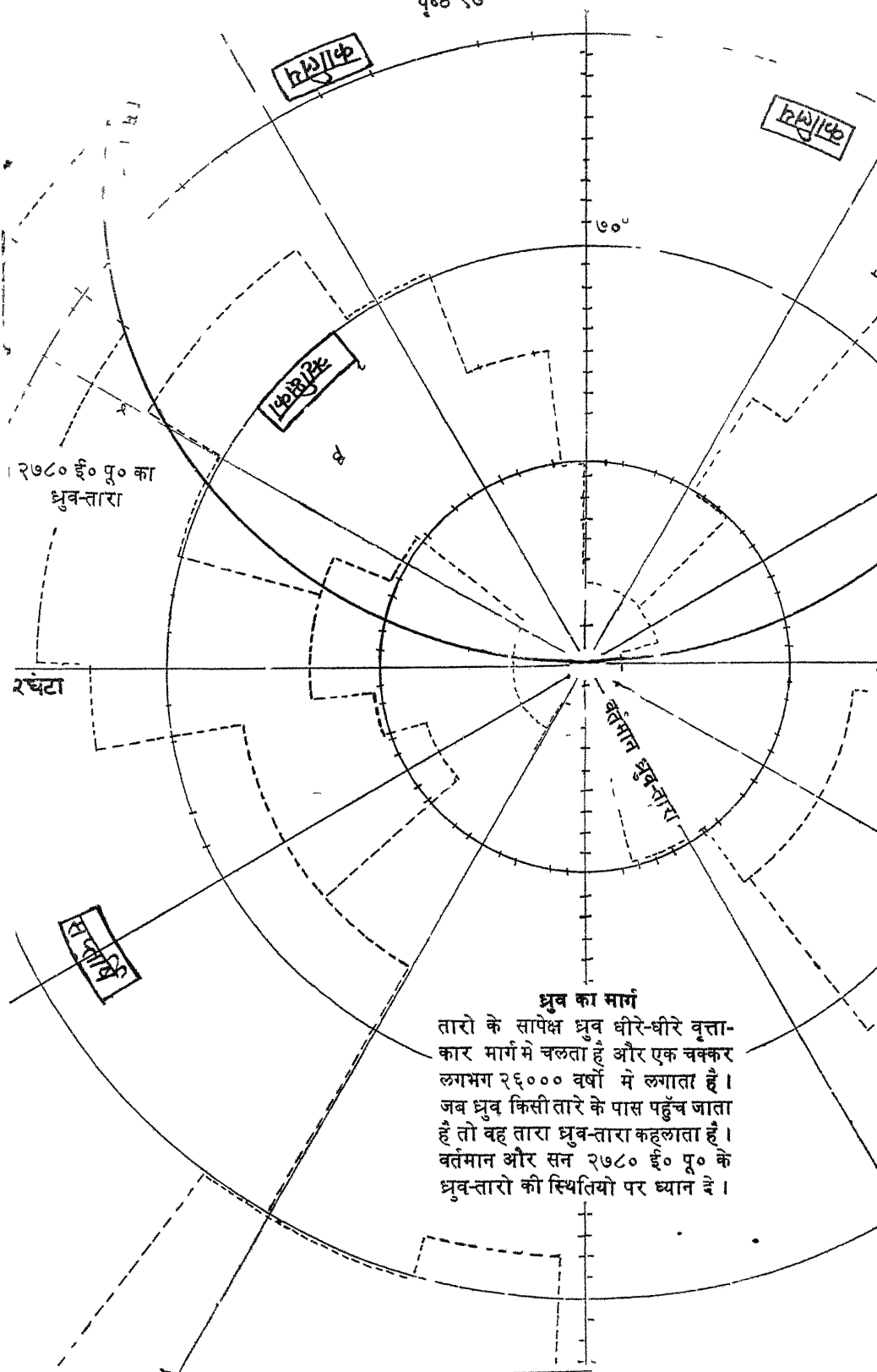
ध्रुव का मार्ग

तारो के सापेक्ष ध्रुव धीरे-धीरे वृत्ताकार मार्ग मे चलता है और एक चक्कर लगभग २६००० वर्षो मे लगाता है। जब ध्रुव किसी तारे के पास पहुँच जाता है तो वह तारा ध्रुव-तारा कहलाता है। वर्तमान और सन २७८० ई० पू० के ध्रुव-तारो की स्थितियो पर ध्यान दें।
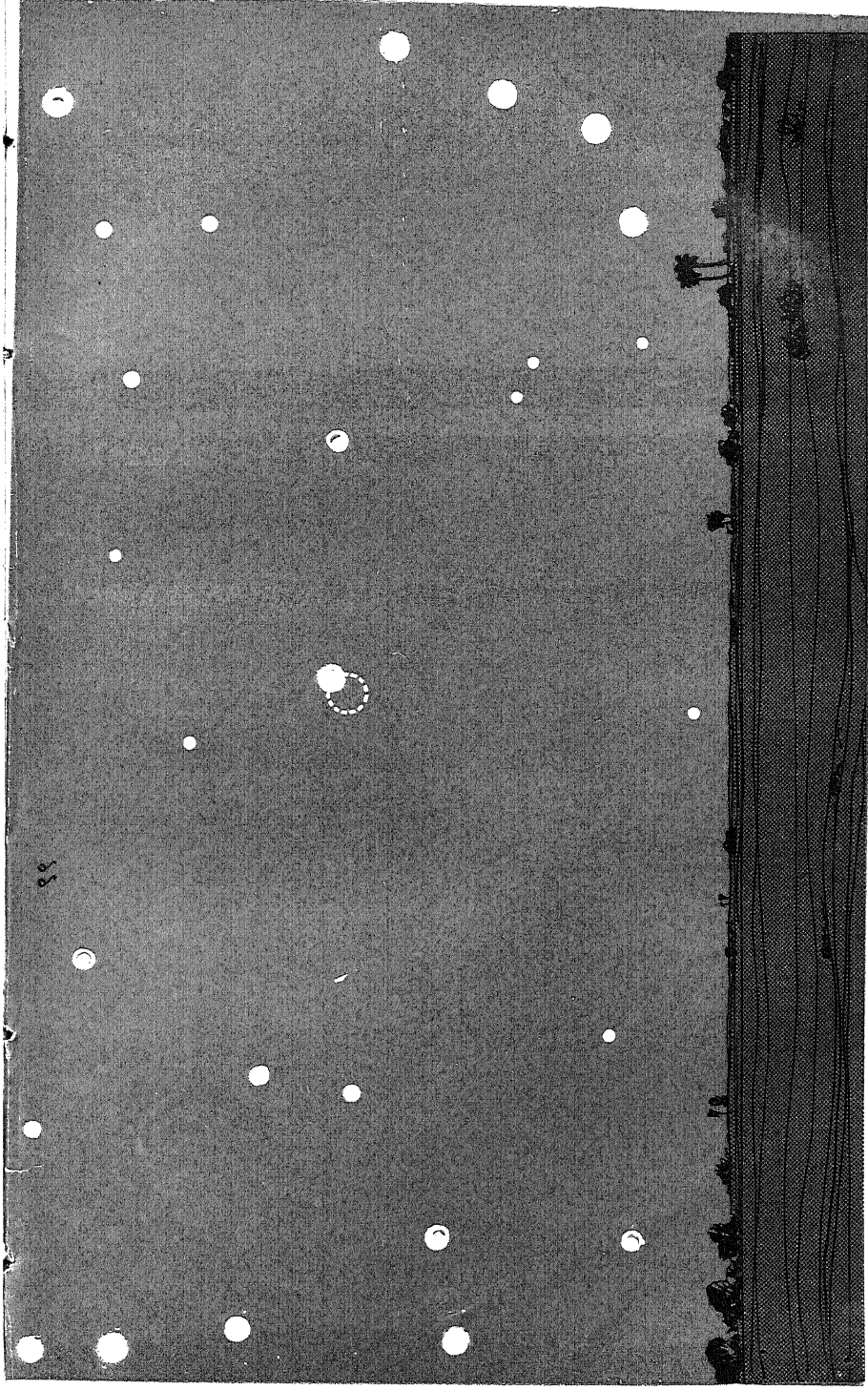
वर्तमान ध्रुव-तारा ।

वर्तमान ध्रुव-तारा पूर्णतया अचर नहीं है । यह बहुत छोटे वृत्त में प्रति दिन एक चक्कर लगाता है ।
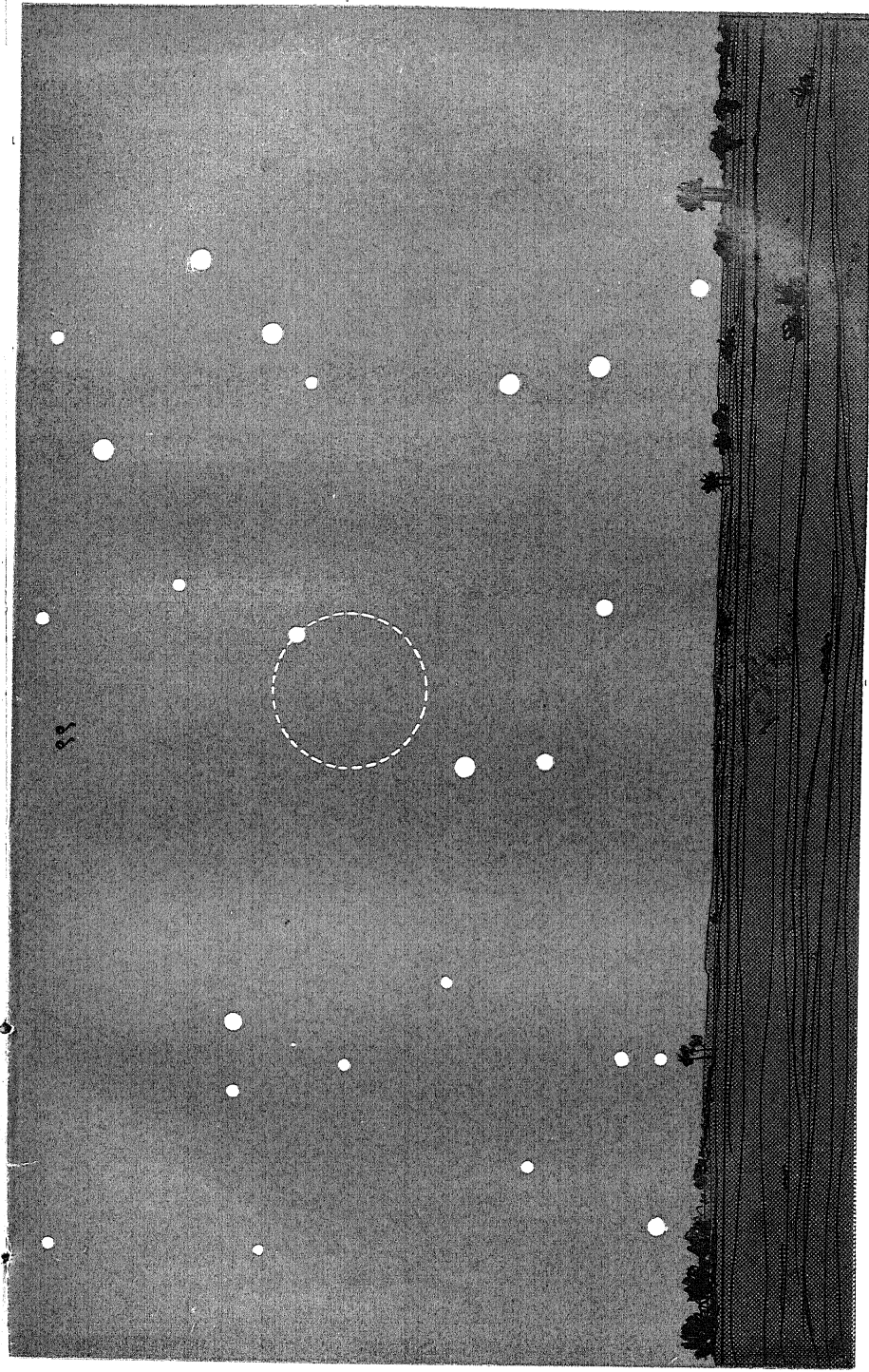
सन १३०० ई० पू० में

गणितीय ध्रुव से समीपतम तारा बहुत फीका था और प्रति दिन इतने बड़े वत्त में चलता था कि कोई उसे ध्रुव नहीं मान सकता था ।
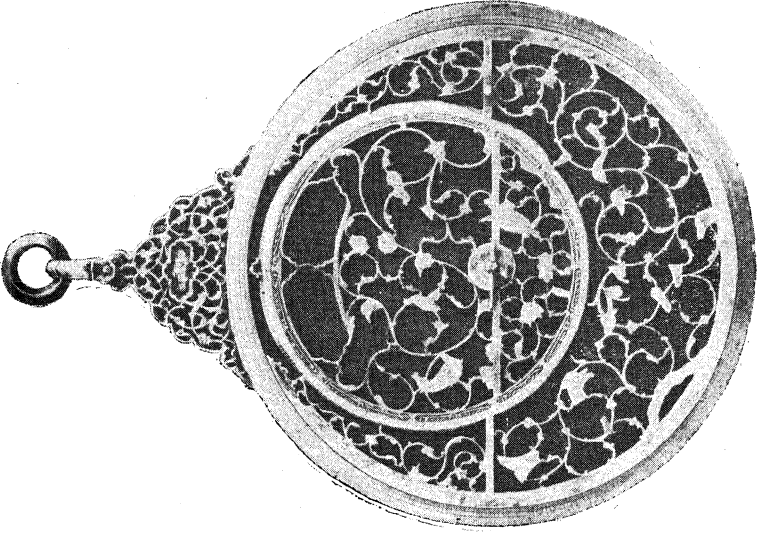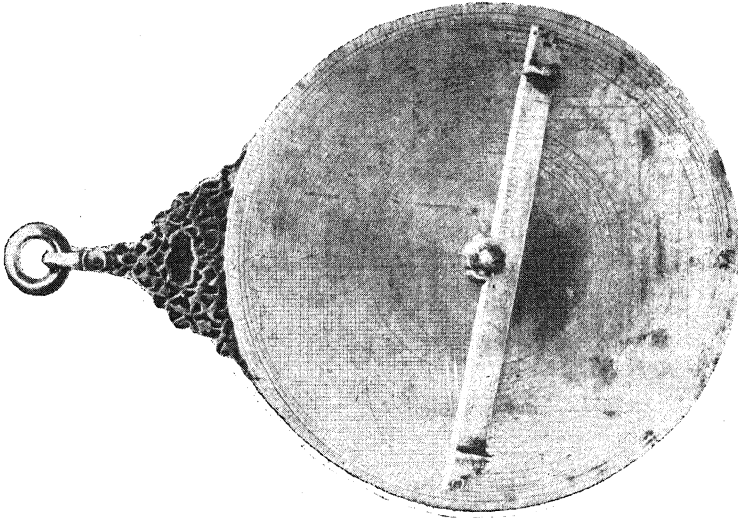
यंत्रराज।
जयसिंह के बनवाये पीतल के ये यंत्र जयपुर में सुरक्षित हैं।
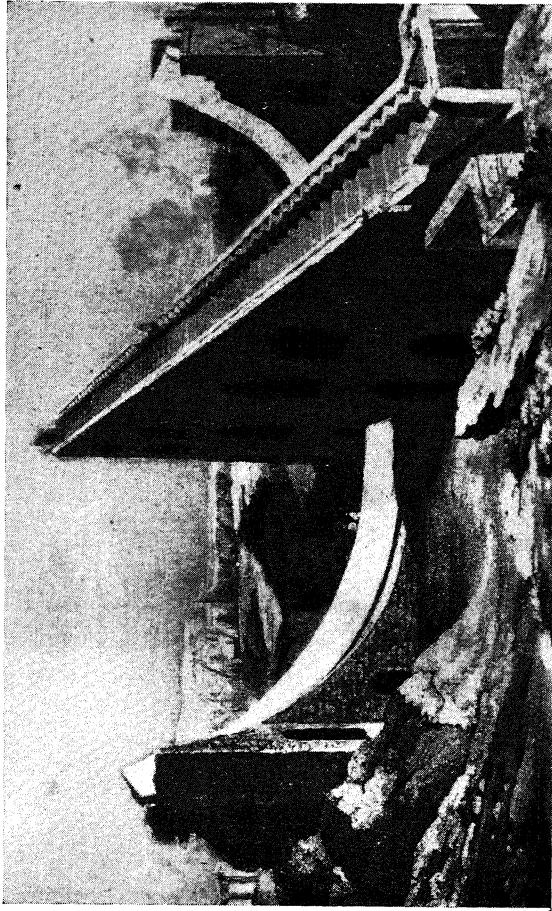
सम्राट-यंत्र, दिल्ली।

सन १८१५ में प्रकाशित एक चित्र से। अब इस यंत्र का पुनरुद्धार कर दिया गया है। दिल्ली के प्रसिद्ध 'जंतर-मंतर' नामक उद्यान में यह सबसे बड़ा यंत्र है। इससे तारों की स्थिति बताने वाले निर्देशांक (विषुवांश और क्रांति) नापे जाते हैं।
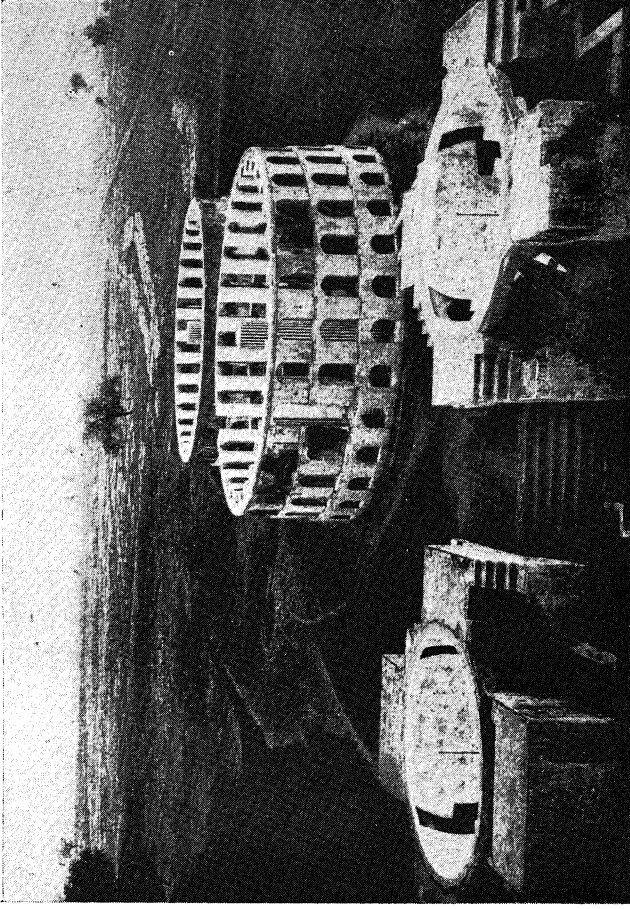
रामयंत्र, दिल्ली।

रामयंत्र में वस्तुतः एक जोड़ी यंत्र रहते हैं और इनसे उन्नतांश और दिगंश नापे जाते हैं। अग्रभूमि में एक जोड़ी जयप्रकाश यंत्र है। [के महोदय की पुस्तक "ऐस्ट्रोनॉमिकल ऑबज़रवेटरीज़ ऑव जयसिंह" से]
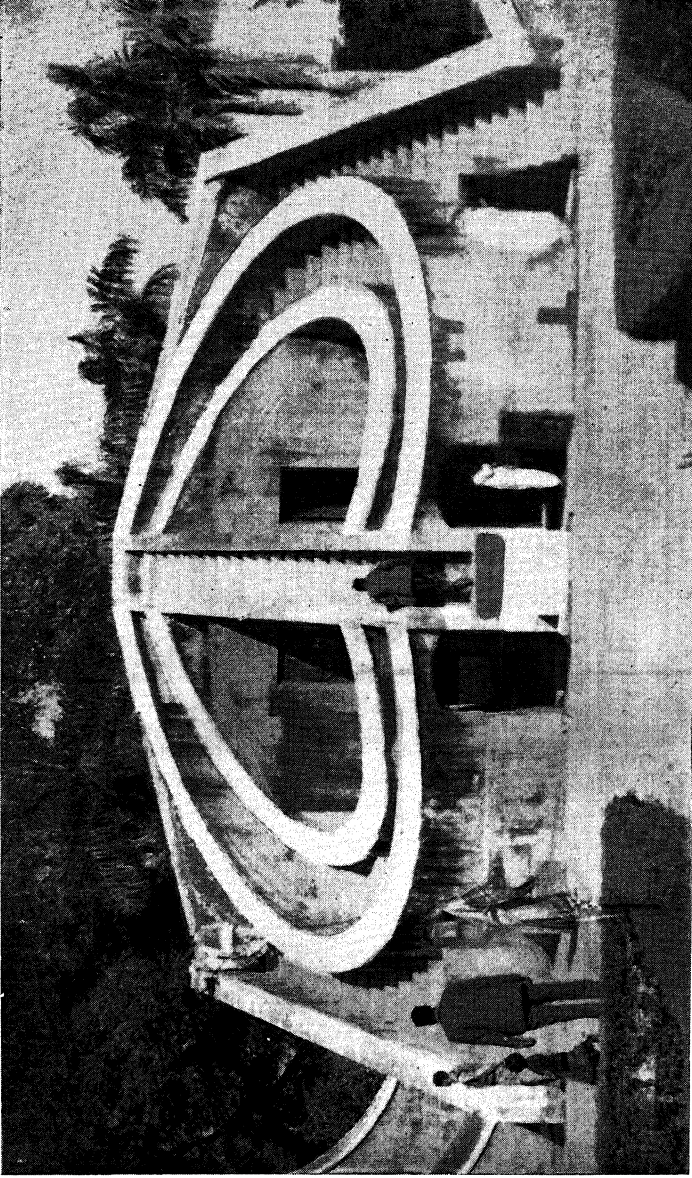
[छायाकार : अरुण कुमार राय

मिश्र-यंत्र, दिल्ली।

दिल्ली के जंतर-मंतर में एक यंत्र यह भी है। इस अकेले यंत्र से कई यंत्रों का काम चल सकता है। इसी से इसे मिश्रयंत्र कहते हैं।
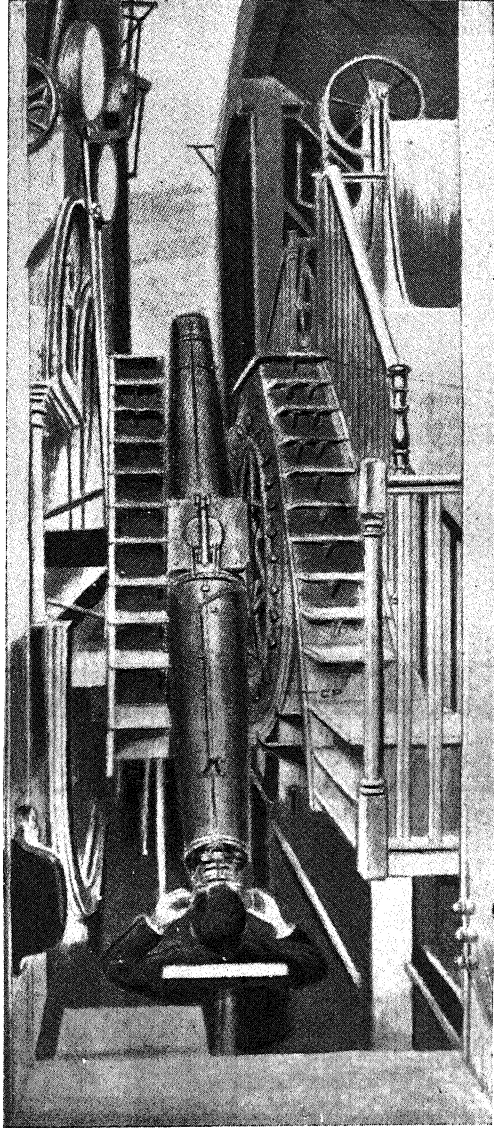
आधुनिक याम्योत्तर यंत्र।
इस यंत्र से तारों की स्थिति बताने वाले निर्देशांक (विषुवांश और क्रांति) नापे जाते हैं। [स्प्लेंडर ऑव दि हेवेन्स से]

३. यदि अहर्गण में उसी का एकसठवाँ भाग जोड़ दिया जाय तो योगफल तिथियाँ बतायेगा। यदि अहर्गण को ९ से गुणा किया जाय और गुणनफल को १२२ से भाग दिया जाय तो फल सूर्य का नक्षत्र बतायेगा। अहर्गण को ७ से गुणा करो, फिर ६१० से भाग दो और फल को (अहर्गण में) घटाओ। फल चंद्रमा का नक्षत्र होगा, जो धनिष्ठा के आरम्भ से गिना जायगा।

ऊपर के अनुवाद में बहुत से शब्द आ गये हैं जो मूल संस्कृत में नहीं हैं। मूल पाठ तो बहुत ही संक्षिप्त है। उदाहरणतः तीसरा श्लोक इस प्रकार है[1]:—

सैकषष्टयंशे गणे तिथिर्भमार्कं नवाहतेऽक्ष्यर्कैः।
दिग्रसभागैः सप्तभिरूनं शशिभं धनिष्ठाद्यम् ॥३॥

पंचसिद्धांतिका में १८ अध्याय हैं और कुल ४४२ श्लोक हैं।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि पैतामह-सिद्धांत में वेदांग-ज्योतिष की तरह पाँच वर्ष का युग था। अन्य बातों में भी यह वेदांग-ज्योतिष से मिलता-जुलता है। वर्ष में महत्तम दिनमान १८ मुहूर्त माना गया है और लघुतम दिनमान १२ मुहूर्त।

रोमक-सिद्धांत

पंचसिद्धांतिका के प्रथम अध्याय के पंद्रहवें श्लोक में रोमक-सिद्धांत के युग का संक्षिप्त वर्णन है। यह युग भी सूर्य और चंद्रमा का युग कहा गया है, परंतु इसमें २८५० वर्ष हैं। कहा गया है कि एक युग में १०५० अधिमास होते हैं और १६५४७ क्षय तिथियाँ। यदि हम इन संख्याओं को १५० से भाग दे दें तो रोमक-सिद्धांत के अनुसार १९ वर्ष में ठीक-ठीक ७ अधिमास होते हैं। ये संख्याएँ ठीक वे ही हैं जिनका प्रचार प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी मेटन ने लगभग ४३० ई० पू० में—वराहमिहिर के समय से लगभग एक हजार वर्ष पहले—किया था। रोमक-सिद्धांत के कर्त्ता ने १९ वर्ष का युग न मानकर २८५० वर्षों का युग इसलिए लिया कि युग में केवल वर्षों और मासों की ही संख्याएँ पूर्ण संख्याएँ न हों, दिनों की संख्या भी पूर्ण संख्या हो। रोमक-सिद्धांत में दी हुई बातों के आधार पर गणना करने से पता चलता है कि उसके कर्त्ता के अनुसार वर्ष का मान

३६५ दिन ५ घंटा ५५ मिनट १२ सेकंड

[1] यह संशोधित पाठ है।

था। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार वर्ष[१] मे लगभग ३६५ दिन ५ घटा ४८ मिनट ४६ सेकड होता है। रोमक का वर्षमान ठीक वही है जो यवन ज्योतिषी हिपार्कस का था[२]।

कुछ अन्य बातो मे भी रोमक-सिद्धात और यवन (अर्थात ग्रीस देश के) ज्योतिष मे समानता है, परतु कई बातो मे विभिन्नता भी है।

रोमक-सिद्धात का लेखक

रोमक-सिद्धात को श्रीषेण ने लिखा था। परतु थीबो का मत है कि श्रीषेण ने कोई मौलिक पुस्तक नही लिखी थी। उसने किसी पुराने रोमक-सिद्धात को केवल नवीन रूप दिया था। ब्रह्मगुप्त ने अपने स्फुट-सिद्धात मे श्रीषेण के नाम का कई बार उल्लेख किया है और इन स्थानो पर टीका करते समय ब्रह्मगुप्त के टीकाकार ने स्पष्ट रूप से और कई बार लिखा है कि रोमक-सिद्धात का लेखक श्रीषेण था। परतु थीबो ने स्फुट-सिद्धात के पाठ का कुछ सशोधन करके निम्न अर्थ लगाया है

"श्रीषेण, विष्णुचद्र, प्रद्युम्न, आर्यभट, लाट और सिंह की ग्रहणादि विषयों पर बातें एक दूसरे के विपरीन होने से यह प्रति दिवस सिद्ध है कि वे अज्ञानी है। (इस अध्याय के पूर्वगामी खड मे) मैने जो दूषण आर्यभट के सबध मे बताये है वे थोडे हेर-फेर मे पूर्वोक्त सभी आचार्यो पर लागू है। परतु मै श्रीषेण आदि पर कुछ और आलोचना करता हूँ।" "लाट से श्रीषेण ने सूर्य और चद्रमा की मध्य गतियाँ ली, चंद्रोच्च और पात भी लिया, फिर मगल, बुध-शीघ्र, बृहस्पति, शुक्र-शीघ्र और शनि की गतियाँ भी ली, वसिष्ठ से व्यतीत वर्षो की सख्या और युगो का भगण लिया, आर्यभट से मदोच्च, परिधि और पात सबधी नियम लिये और ग्रहो की स्पष्ट गतियाँ भी, और इस प्रकार रत्नो की ढेर रोमक को श्रीषेण ने गूदड बना डाला।"

रोमक-सिद्धांत का काल

पचसिद्धातिका मे दिये हुए रोमक-सिद्धात के अनुसार अहर्गण बनाने के लिए यह आदेश है कि शक वर्ष से ४२७ घटाया जाय। इसका अर्थ यह है कि शक ४२७ आदिकाल माना गया है जहाँ से अहर्गण आदि की गणना आरभ की गयी है। इसलिए शक ४२७ को ही लोग वराहमिहिर का समय मानते है। अलबीरूनी ने भी इसी को पचसिद्धातिका का समय माना है। डाक्टर कर्न का मत है

[१] यह सायन वर्ष का मान है; सायन वर्ष वह वर्ष है जो ऋतुओ के अनुसार चलता है।

[२] हिपार्कस का काल सन १४६-१२७ ई० पू० के लगभग था।

कि शक ४२७ (=सन् ५०५ ईसवी) वराहमिहिर के जन्म का वर्ष है। उसका देहात शक ५०९ मे हुआ, ऐसा आमराज ने लिखा है, और दोनो मे सामजस्य है। यह भी विचार योग्य है कि आर्यभट का जन्म शक ३९८ मे हुआ था और उसने अपनी पुस्तक आर्यभटीय की रचना शक ४२१ मे की थी। आर्यभट का उल्लेख पचसिद्धातिका मे है। इसलिए इतना तो प्रत्यक्ष है कि पचसिद्धातिका शक ४२१ के वर्षों बाद लिखी गयी होगी।

प्रश्न यह उठता है कि शक ४२७ स्वय रोमक-सिद्धात का ही आदिकाल तो नही था। परन्तु बात ऐसी नही जान पडती। एक तो वराहमिहिर ने बहुत अर्वाचीन सिद्धात को पर्याप्त प्रामाणिक नही माना होगा, दूसरे, ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धात मे लाटदेव का नाम आया है, जिससे श्रीषेण ने सूर्य, चद्रमा आदि की गतियाँ ली। वराहमिहिर ने स्वय अध्याय १५, श्लोक १८ मे लिखा है "लाटाचार्य ने कहा है कि यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना की जाती है"। इससे स्पष्ट है कि लाटाचार्य अवश्य थे और वे श्रीषेण से पर्याप्त पहले रहे होंगे, अन्यथा श्रीषेण को नवीन सिद्धात लिखने की आवश्यकता ही नही रहती। इन सब बातो से यही अनुमान किया जाता है कि रोमक-सिद्धात और भी पुराना रहा होगा, और शक ४२७ रोमक-सिद्धात का निजी आदिकाल नही है, इसे वराहमिहिर ने चुना होगा।

पचसिद्धातिका मे रोमक-सिद्धात के अतिरिक्त रोमक देश का भी नाम आया है, यवनपुर, यवनाचार्य आदि शब्द भी आये है। यवनपुर का देशातर भी दिया है, जिससे पता चलता है कि यवनपुर अलेक्जेंड्रिया[1] नामक नगर रहा होगा। फिर, जैसा ऊपर बताया गया है, रोमक-सिद्धात के मुख्य स्थिराक वे ही थे जो यवन ज्योतिष

[1] सन ३३२ ई० पू० में इस नगर की नींव अलेक्ज़ैंडर महान (सिकदर) ने डाली थी और अब यह मिस्र देश (ईजिप्ट) का प्रमुख नौकाशय (बदरगाह) है। नींव पड़ने के सौ वर्ष के भीतर ही यह बहुत बड़ा शहर हो गया था। यह यूरोप, तथा अरब और भारतवर्ष के बीच वाणिज्य का केंद्र था। यहाँ पर यवनो का सब से बड़ा विश्वविद्यालय था। परंतु सन ८० ई० पू० में यह रोमन लोगो के हाथ में चला गया। ऑगस्टस सीज़र के काल में इसकी जनसख्या ३ लाख थी। सन ६१६ में इस पर अरब वालो का अधिकार हो गया। अरब सेनापति 'अम्र ने अपने नरेश को अलेक्ज़ेंड्रिया जीतने पर लिखा था कि यहाँ "४,००० महल, ४,००० स्नानागार, १२,००० तेल बेचने वाले, १२,००० माली, ४०,००० यहूदी जो कर देते ह और ४०० नाट्यशालाएँ है"। पृष्ठ ११८ पर इस नगर की स्थिति दिखायी गयी है।

मे प्रचलित थे। इन सब बातो से स्पष्ट हो जाता है कि रोमक-सिद्धात यवन ज्योतिष पर आश्रित था।

पुलिश-सिद्धात

पचसिद्धातिका की प्राप्य प्रतियो मे उस श्लोक का पाठ जिसमे पुलिश-सिद्धात के अनुसार अहर्गण बनाने का नियम है इतना अशुद्ध था कि थीबो और सुधाकर ठीक से उसका अर्थ न लगा सके। परतु इसमे एक स्थान पर ९७६ की सख्या है **(ऋतु सप्त नव भक्त॰)**, अवश्य ही यह उन दिनो की सख्या होगी जिसके पश्चात एक अधिमास पडता है। इसी प्रकार ६३ **(त्रिऋतु)** सभवत उन दिनो की सख्या है जिसके पश्चात एक तिथि का क्षय होता है। जान पडता है कि पुलिश-सिद्धात ने किसी बडे युग को लेकर उसमे कुल अधिमासो और क्षय तिथियो को बताने की रीति को नही अपनाया। उसने यही बताकर काम चला लिया कि कितने-कितने दिनों पर अधिमास पडता है या क्षय तिथि पडती है। पुलिश-सिद्धात मे वर्ष ३६५ दिन ६ घटा १२ मिनट का माना गया था।

पुलिश-सिद्धात मे ग्रहणो की गणना के लिए भी नियम दिये गये है, परतु वे सूर्य-सिद्धात और रोमक-सिद्धात के नियमो की अपेक्षा बहुत स्थूल है। गणना की सुविधा के लिए सन्निकट मानो और सन्निकट नियमो से काम चलाया गया है। पुलिश-सिद्धात मे उज्जयिनी (उज्जैन) और काशी (बनारस) से यवनपुर का देशान्तर दिया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यवनपुर अलेक्जेड्रिया ही रहा होगा।

पुलिश-सिद्धात नामक ग्रथ का उल्लेख भट्टोत्पल ने वराहमिहिर के बृहत्संहिता की टीका मे और पृथूदक स्वामी ने ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धात की टीका मे किया है। परतु इन दोनो टीकाकारो ने जिस पुलिश-सिद्धात का उल्लेख किया है वह कोई और ही ग्रथ रहा होगा, क्योकि उसमे एक महायुग था जिसमे वर्षों, मासो, दिनो, और ग्रहो के भगणो की सख्याएँ पूर्ण सख्याएँ थी। उसमे वर्षमान ३६५ दिन ६ घटे १२ मिनट ३६ सेकड था, जो वराहमिहिर मे उल्लिखित पुलिश-सिद्धात से भिन्न है।

वसिष्ठ-सिद्धात

वसिष्ठ-सिद्धात (या वासिष्ठ सिद्धात) बहुत सक्षेप मे ही पचसिद्धातिका में दिया गया है। यह बहुत-कुछ पितामह-सिद्धात की तरह है, परतु उससे कई बातो मे अधिक शुद्ध है। वराहमिहिर ने स्वय इस सिद्धात और पितामह-सिद्धात को निम्नतम श्रेणी का माना है। पितामह-सिद्धात की तरह वसिष्ठ-सिद्धात मे भी माना

गया है कि जब दिन बढने लगता है तो प्रति दिन बराबर वृद्धि होती है (जा अशुद्ध है, या बहुत स्थूल है), परतु लघुतम और महत्तम दिनो के मान पितामह-सिद्धात के मानो से भिन्न है ।

वसिष्ठ-सिद्धात मे राशियो की चर्चा है । लग्न भी है, जो बताता है कि रविमार्ग का कौन-सा भाग पूर्वीय क्षितिज से लगा हुआ है । परतु सूर्य, चद्रमा, आदि, की मध्यक और स्पष्ट गतियो मे भेद का ज्ञान इस सिद्धात के कर्त्ता को न था । इसलिए वसिष्ठ-सिद्धात की गिनती उस श्रेणी मे नही की जा सकती जिसमे सूर्य-सिद्धात आदि है ।

ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धात मे विष्णुचद्र के लिखे वसिष्ठ-सिद्धात का उल्लेख है, परन्तु वहाँ अर्थ यह जान पडता है कि जैसे श्रीषेण ने रोमक-सिद्धात को गूदड बना दिया वैसे ही विष्णुचद्र ने वसिष्ठ-सिद्धात को । ब्रह्मपुत्र तथा वराहमिहिर के एक-दो सकेतो से ऐसा जान पडता है कि वसिष्ठ-सिद्धात की रचना विजयानदिन ने की थी, यद्यपि यह बात स्पष्ट रूप से नही कही गयी है ।

वर्तमान समय मे जो ग्रथ लघु वसिष्ठ-सिद्धान्त के नाम से छपता है उसका कोई सबध पचसिद्धातिका के वसिष्ठ-सिद्धात से नही दिखायी पडता ।

सूर्य-सिद्धांत

पचसिद्धातिका के सूर्य-सिद्धांत की चर्चा आधुनिक सूर्य-सिद्धात के सबध मे की जायगी ।

तुलना

पचसिद्धातिका के पाँच सिद्धातो की तुलना से स्पष्ट पता चलता है कि किस प्रकार भारतीय-ज्योतिष धीरे-धीरे विकसित होकर सूर्य-सिद्धात के ज्योतिष में परिवर्तित हुआ । पितामह-सिद्धात वेदाग-ज्योतिष, गर्ग-सहिता, सूर्य-प्रज्ञप्ति आदि की जाति का था । इन सब ग्रथो मे पाँच वर्ष का युग था, सूर्य, आदि आकाशीय पिंड सदा समान वेग से चलते हुए माने जाते थे और दिन समान रूप से बढता हुआ माना जाता था । सूर्य और चद्रमा की स्थिति साधारणत नक्षत्रो से बतायी जाती थी । उत्तरायण का आरभ तब माना जाता था जब सूर्य धनिष्ठा के आदि विदु पर रहता था । वराहमिहिर की पचसिद्धातिका मे पितामह-सिद्धात के अनुसार पचवर्षीय युग की गणना करने मे शक २ से आरभ करने को कहा गया है ।

इन प्राचीन ज्योतिष ग्रथो की एक-दो विशेषताएँ पीछे के सभी ग्रथो में अपनायी गयी । एक तो युग का महत्त्व । सभी सिद्धात-ग्रथो मे युग का प्रयोग

किया गया। युग लबे होते गये, परतु उनका तिरस्कार किसी ने नही किया, यद्यपि ऐसा करना सभव था। करण-ग्रथो के रचयिताओ ने अवश्य इसका तिरस्कार किया। दूसरी बात थी तिथियो का प्रयोग। यह तो आज तक चालू है। अन्य किसी देश मे तिथियो का प्रयोग नही होता।

वसिष्ठ-सिद्धात पितामह-सिद्धात से अधिक विकसित था, परतु सूर्य-सिद्धात से बहुत निम्न कोटि का था।

शेष तीन सिद्धात—पौलिश, रोमक और सौर—तीनो बहुत कुछ एक तरह के थे। इन तीनो मे उन विषयो का समावेश था जो नवीन भारतीय ज्योतिष के द्योतक थे। इन सब मे सूर्य और चद्रमा की स्पष्ट गतियो की भी चर्चा है, अर्थात उनकी स्थिति केवल यह मान कर नही निकाली गयी है कि वे सदा समान कोणीय वेग से चलते है; यह भी बताया गया है कि उनका कोणीय वेग समान वेग से कितना अधिक या न्यून कब रहता है। पौलिश और रोमक सिद्धातों मे अधिक सादृश्य है। सूर्य-सिद्धात इन दोनो से अधिक विकसित है, अधिक शुद्ध और अधिक परिपूर्ण है। सूर्य-सिद्धात मे ग्रहण-गणना के नियम पूर्ण और पर्याप्त है, उनकी तुलना मे रोमक-सिद्धात के नियम बहुत कम और स्थूल है, और पौलिश सिद्धात के नियम तो और भी स्थूल है।

ग्रीष्म अयनात पहले आश्लेषा के मध्यमे होता था और वराहमिहिर के समय मे पुनर्वसु के आरभ मे। ये बाते वराहमिहिर को ज्ञात थी, क्योकि पचसिद्धातिका मे दोनो की चर्चा है, परतु उसने कोई बात ऐसी नही लिखी है जिससे पता चले कि उसने इसका कारण समझ लिया था कि वसत विषुव तारो के सापेक्ष पीछे-मुँह क्यों खिसकता रहता है।

यवन ज्योतिष से सबंध

पौलिश और रोमक सिद्धातो के नामो से ही सदेह होता है कि इनका सबध यवन ज्योतिष से था। इन दोनो मे वर्ष का मान वह है जो सायन वर्ष का है (नाक्षत्र वर्ष का नही, जो सूर्य-सिद्धात मे है)[1]। एक मे अहर्गण की गणना यवनपुर के याम्यो-

[1] सायन वर्ष वह है जिसका आरभ सदा एक ही ऋतु में पड़ता है, चाहे हजारो वर्ष क्यो न बीत जायें। नाक्षत्र वर्ष वह है जिसका आरभ सूर्य के सदा किसी विशेष तारे के पास पहुँचने पर होता है। अयन के कारण दोनो में लगभग २० मिनट का अन्तर है।

नर मे की गयी है और दूसरे मे यवनपुर से उज्जयनी का देशांतर दिया गया है। दोनो मे वे नवीन बाते हैं जो यवन ज्योतिष मे थी, परन्तु वेदाग-ज्योतिष, पितामह-सिद्धात और वसिष्ठ-सिद्धात मे नही थी। इससे धारणा होती है कि नवीन भारतीय ज्योतिष यवन ज्योतिष पर आधारित था। परतु जब इसकी खोज की जाती है कि किस विशेष यवन पुस्तक या यवन आचार्य से भारतीयो ने अपना ज्ञान प्राप्त किया तो बडी कठिनाई पडती है। यवन और नवीन भारतीय ज्योतिष में सादृश्य होते हुए भी पर्याप्त विभिन्नता है। ऐसा जान पडता है कि भारत मे यवन ज्योतिषियो का ज्ञान हिपार्कस के बाद और टॉलमी[1] के पहले आया, सभवत थोडी-थोडी मात्रा मे और कई बार, और भारतीय ज्योतिषियो ने इस ज्ञान को अपने निजी विवेचन और खोज से अपने विशेष साँचे मे ढाल लिया और फिर वे उसकी उन्नति करते रहे। सूर्य-सिद्धात मे कई बाते ऐसी है जो विशेष महत्त्व की है और यवन ज्योतिष मे नही मिलती।

वराहमिहिर ने आर्यभट के सिद्धात का साराश अपनी पचसिद्धातिका मे नही दिया। इससे समझा जा सकता है कि उसके समय मे आर्यभट का ग्रथ इतना प्राचीन नही समझा जाता था जितना रोमक-सिद्धात या सूर्य-सिद्धात। आर्यभटीय के नियम सूर्य-सिद्धात के नियमो से मिलते-जुलते है। वस्तुत सूर्य-सिद्धात के नियमो को अधिक शुद्ध करने की चेष्टा भी आर्यभट ने की थी, परतु वर्तमान सूर्य-सिद्धात आर्यभटीय से अधिक शुद्ध है, जैसा एक अन्य अध्याय मे विस्तार से दिखाया गया है।

त्रैलोक्य-सस्थान

पचसिद्धातिका मे त्रैलोक्य-सस्थान नाम का तेरहवाँ अध्याय है जो पूर्वोक्त सिद्धातों मे से किसी का नही जान पडता। सभवत यह अध्याय वराहमिहिर की स्वतत्र रचना है। इसमें विश्व की रचना तथा कुछ फुटकर बाते बतायी गयी है। वराहमिहिर ने इस अध्याय के पहले श्लोक मे बताया है कि

पंचमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोल:।
खेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थिता वृतः ॥

अर्थ—पंचभूत से बनी पृथ्वी का गोल तारों के पजर (ठठरी) में उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार चुंबको के बीच लोहा।

[1] आगामी अध्याय देखें।

इस प्रकार वराहमिहिर जानना था कि पृथ्वी किसी अन्य वस्तु पर टिकी नही है। अतरिक्ष मे चारो ओर से बेलाग है। उसने यह भी लिखा है[१] कि जैसे मनुष्यो के देश मे अग्निशिखा वायु मे ऊपर उठती है और फेके जाने पर भारी वस्तु पृथ्वी पर गिरती है, उसी प्रकार उलटी ओर, असुरो के देश मे भी, होता है।

परतु पृथ्वी के अक्ष-भ्रमण के सबध मे वराहमिहिर की राय आधुनिक मत के विरुद्ध थी। उसने लिखा है कि "कुछ लोग कहते है कि पृथ्वी भ्रमण करती है, परतु यदि ऐसा होता तो चील तथा अन्य पक्षी आकाश से अपने घोसले मे न लौट सकते[२]। और फिर, यदि पृथ्वी वस्तुत एक दिन मे एक चक्कर लगाती तो ध्वजा आदि पृथ्वी के वेग के कारण पश्चिम की ओर फहराते रहते। और यदि कोई कहे कि पृथ्वी धीरे-धीरे घूमती है तो फिर (एक दिन मे एक बार) वह कैसे घूम लेती है?"[३]

[१] पचसि० १३।४।

[२] पचसि० १३।६-७।

[३] कुछ पाठको को आज भी शका हो सकती है कि वस्तुत क्या बात है कि चील आदि ऊपर उड़ जाने पर पीछे नही छूट जाते। इस शका का समाधान इस प्रकार हो जाता है कि रेलगाडी के डिब्बे मे बैठकर गेंद सीधा ऊपर उछालने से गेंद अत में सीधा नीचे ही तो गिरता है, वह पीछे थोडे ही छूट जाता है। कारण यह है कि उछालते समय गेंद मे वह वेग भी था जो रेलगाडी मे था और यह वेग बराबर बना रहता है, इसलिए गेंद पीछे नही छूटता। रेलगाड़ी मे बैठे व्यक्ति को जान पडता है कि गेंद सीधे ऊपर गया और सीधे नीचे गिरा; परतु भूमि पर स्थित व्यक्ति को वही गेंद वक्र में चलता दिखायी पड़ेगा। वह देखगा कि यात्री के हाथ से फेंके जाने पर गेंद वक्र में चल कर फिर यात्री के नवीन स्थिति में जा पहुँचता है। वराहमिहिर और साधारण पाठक के हृदय का भ्रम इस बात पर आश्रित है कि वे समझते है कि वेग को बनाये रखने के लिए बल लगाने की आवश्यकता है, परंतु आधुनिक गति-विज्ञान कहता है कि "प्रत्येक पिड अपनी विश्रामावस्था में पडा रहता है, या सरल रेखा में समवेग से चलता रहता है; और केवल तभी वह अपनी विश्रामावस्था या समवेग से सरल रेखा मे चलने की अवस्था को छोडता है जब वह बाहर से लगे बल द्वारा प्रेरित होता है।" (देखें गोरखप्रसाद और हरिश्चन्द्र गुप्त : गतिविज्ञान, अध्याय ४)।

जैनियो का मत था कि आकाश मे दो सूर्य होते है, दो चन्द्रमा होते है। इस पर वराहमिहिर का कहना है कि यदि, जैसा अर्हत ने कहा है, दो सूर्य और दो चद्रमा होते जो पारी-पारी से उदित होते है, तो यह कैसे होता है कि सूर्य से ध्रुव तक जाने वाली रेखा (जो उस पर स्थित तारो के कारण सूर्य के अस्त होने पर भी दिखायी देती है) एक दिन मे चक्कर लगा लेती है ?

चद्रमा मे कलाएँ क्यो दिखायी पडती है इसका सच्चा कारण वराहमिहिर को ज्ञात था। लिखा[1] है जैसे-जैसे प्रति दिन चद्रमा का स्थान सूर्य के सापेक्ष बदलता है तैसे-तैसे उसका प्रकाशमय भाग बढता जाता है, ठीक उसी तरह जैसे अपराह्न मे घडे का पश्चिम भाग अधिकाधिक प्रकाशित होता जाता है।

ज्यौतिष यंत्र

वराहमिहिर के समय मे अच्छे ज्यौतिष यत्रो का अभाव था। शकु (अर्थात खडा या तिरछा डडा) बहुत काम मे आता था। लिखा है कि ऋजु (सीधे) शकु की जड पर आँख लगा कर शकु को इस प्रकार तिरछा करो कि शकु का अग्र, आँख, और ध्रुव-तारा, तीनो एक रेखा मे आ जायँ। तब (शकु के अग्र से आँख द्वारा खीचे गये समतल पर डाला गया) लब अक्षाश की ज्या है। ऐसे प्रयोगो से सत विश्वसनीय रीति से भूकेंद्र या समस्त पृथ्वी को नापते है, जैसे लवण मिले थोडे-से जल से लवण का स्वाद जाना जा सकता है[2]। ऐसे शकु को भास्कराचार्य ने पीछे यष्टियंत्र का नाम दिया (अध्याय १४ देखे)।

परतु वराहमिहिर ने सब यत्रो का भेद खोल कर रख देना उचित न समझा। छेदक यत्राणि नामक चौदहवे अध्याय मे साधारण यत्रो और रीतियो का वर्णन देकर यह लिखा है[3]. गुरु को चाहिए कि केवल स्थिर-बुद्धि शिष्यो को ये बाते बताये और शिष्य को चाहिए कि इन बातो को सीखकर अपने यत्रो को इस प्रकार बनाये कि पुत्र को भी उसका भेद ज्ञात न हो।

[1] **पंचसि० १३।३७।**

[2] **पचसि० १३।३१-३४। वराहमिहिर का कहना ठीक है। दो स्थानो पर पूर्वोक्त रीति से शंकु द्वारा अक्षांश नाप कर सारी पृथ्वी की नाप जानी जा सकती है। (देखे लेखक-रचित सरल गणित-ज्योतिष, पृष्ठ १५७।)**

[3] **पचसि० १४।२८।**

इस अध्याय मे ज्यामितीय रचनाओ और शकुओ के अतिरिक्त एक उन्नतांश-मापक का भी वर्णन है जो इस प्रकार है

ऐसा चक्र लो जिसकी परिधि ३६० बराबर अशो मे बँटी हो, जिसका व्यास एक हस्त हो और जो मोटाई मे आधी अँगुली हो। उसकी मोटाई के बीच मे एक स्थान पर छेद कर दो। इस छोटे-से छेद द्वारा मध्याह्न पर सूर्य की रश्मियो
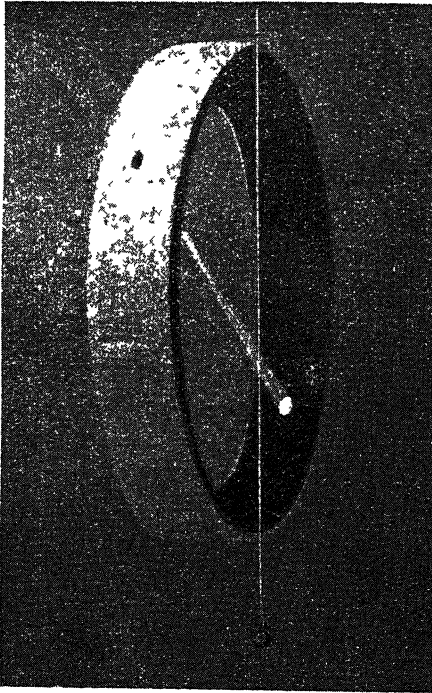
उन्नतांशमापक।

वराहमिहिर के वर्णन के अनुसार खींचा गया चित्र।

को तिरछी दिशा मे घुसने दो [और ऐसा प्रबध करो कि वह रश्मि पूर्वोक्त चक्र के केंद्र से होकर जाय]। तो चक्र के निचले भाग मे जितने अश [सूर्यरश्मियो से प्रका-

शित विंदु और] चक्र-केंद्र से लटकाये गये साहुल-सूत्र के बीच पड़ते हैं वे मध्याह्न-सूर्य की शिरोविंदु-दूरी के अंश हैं[1]।
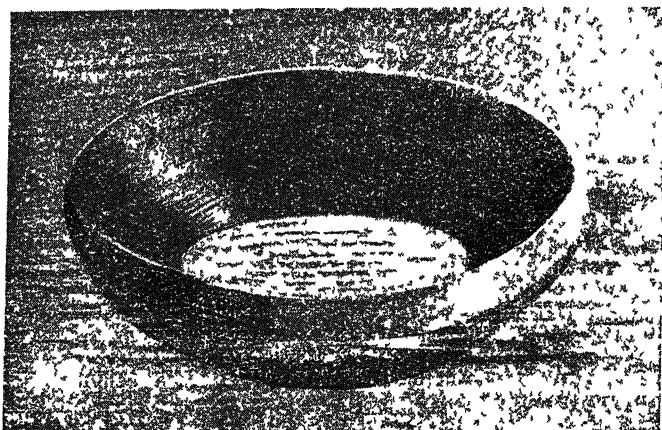
नाडिका-यंत्र ।

वराहमिहिर के वर्णन के अनुसार खींचा गया चित्र ।

समय नापने के लिए जल-घटी का उपयोग बताया गया है :—

ताँबे का बरतन आधे घड़े के रूप में बनाओ और पेंदे में छेद करो। शुद्ध जल से भरे बड़े बरतन में इसे रक्खो। जब यह पानी से भर उठे तो एक नाडिका बीती रहेगी। पेंदे का छिद्र इतना छोटा होना चाहिए कि एक अहोरात्र (रात-दिन) में यह ६० बार डूबे[2]।

वराहमिहिर की जीवनी

वराहमिहिर ने अपने को अवंती का बताया है[3]। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं उसका देहान्त सन ५८७ ईसवी में हुआ।

[1] पंचसि० १४।२१-२२।

[2] पंचसि० १४।३२।

[3] पंचसि० १८।६१।

वराहमिहिर को गणित-ज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष मे अधिक रुचि थी। उसकी बृहत्सहिता नामक पुस्तक वस्तुत एक बडी-सी पोथी है जो फलित ज्योतिष पर है। उसके बृहज्जातक और योगयात्रा नामक ग्रथ भी फलित ज्योतिष पर हैं। परतु उसकी पचसिद्धातिका गणित-ज्योतिष पर है और वह तत्कालीन ज्योतिष के ज्ञान के लिए अपूर्व सिद्ध हुई है। पचसिद्धानिका न होती तो ज्योतिष-इतिहास का हमारा ज्ञान बहुत अधूरा ही रह जाता। अलबीरूनी ने अपने 'भारतवर्ष' मे वराहमिहिर को बहुत आदर प्रदान किया है। लिखा है कि "वराह के कथन सत्य पर आश्रित है, परमेश्वर करे कि सभी बडे लोग उसके आदर्श का पालन करे।"

हिन्दी-शब्दसागर मे वराहमिहिर के सम्बन्ध मे निम्न सूचना दी गयी है—

"वराहमिहिर के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के प्रवाद कुछ वचनो के आधार पर प्रचलित है। जैसे, ज्योतिर्विदाभरण के एक श्लोक मे कालिदास, धन्वन्तरि आदि के साथ वराहमिहिर भी विक्रम की सभा के नौ रत्नो मे गिनाये गये है। पर इन नौ नामो मे से कई एक भिन्न-भिन्न काल के सिद्ध हो चुके है। अत यह श्लोक प्रमाण के योग्य नही। अपने बृहज्जातक के उपसहाराध्याय मे वराहमिहिर ने अपना कुछ परिचय दिया है। उसके अनुसार ये अवन्ती (उज्जयिनी) के रहने वाले थे। 'कायित्थ'[१] स्थान मे सूर्यदेव को प्रसन्न करके इन्होने वर प्राप्त किया था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था।"

[१] सभवत. यह कपित्थ-ग्राम है जो उज्जैन के निकट (आज भी) 'कायथा' के नाम से विद्यमान हैं। इनके पुत्र का नाम पृथुयशस् था, और उनकी रचना षट्-पंचराशिका भी प्रसिद्ध है।

अध्याय १०

पाश्चात्य ज्योतिष का इतिहास

यवनों ने ज्यौतिष ज्ञान कहाँ से पाया

भारत मे कहाँ तक ज्योतिष का ज्ञान यवनों से आया इसे आँकने के लिए पाश्चात्य ज्योतिष के इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेना उचित होगा। ज्योतिष की आवश्यकता सभी देशवासियो को पडती है और दीर्घकाल तक आकाशीय पिडो के अध्ययन से ज्योतिष की अधिकाश मोटी-मोटी बाते सभी को ज्ञात हो जाती है। प्राचीन समय मे बाबुल लोगो (बैबिलोनियनो) का ज्योतिष-ज्ञान बहुत

[चित्रकार: फैलिक्सटॉमस

प्राचीन मंदिरों का अवशेष।

बाबुल लोग ऊँचे-ऊँचे स्थानो पर मदिर बनाते थे और उनकी छतो से ज्योतिष सबंधी वेध किया करते थे।

बढा-चढा था। ये लोग टाइग्रिस और यूफ्रटीज़ नदी के मध्य की तथा समीपवर्ती भूमि मे रहते थे (आगामी पृष्ठ पर चित्र देखे)। उन्ही से यवनो (अर्थात ग्रीस

ग्रीस
यूफ्रेटीज नदी
टाइग्रिस नदी
बेबिलान
भारत
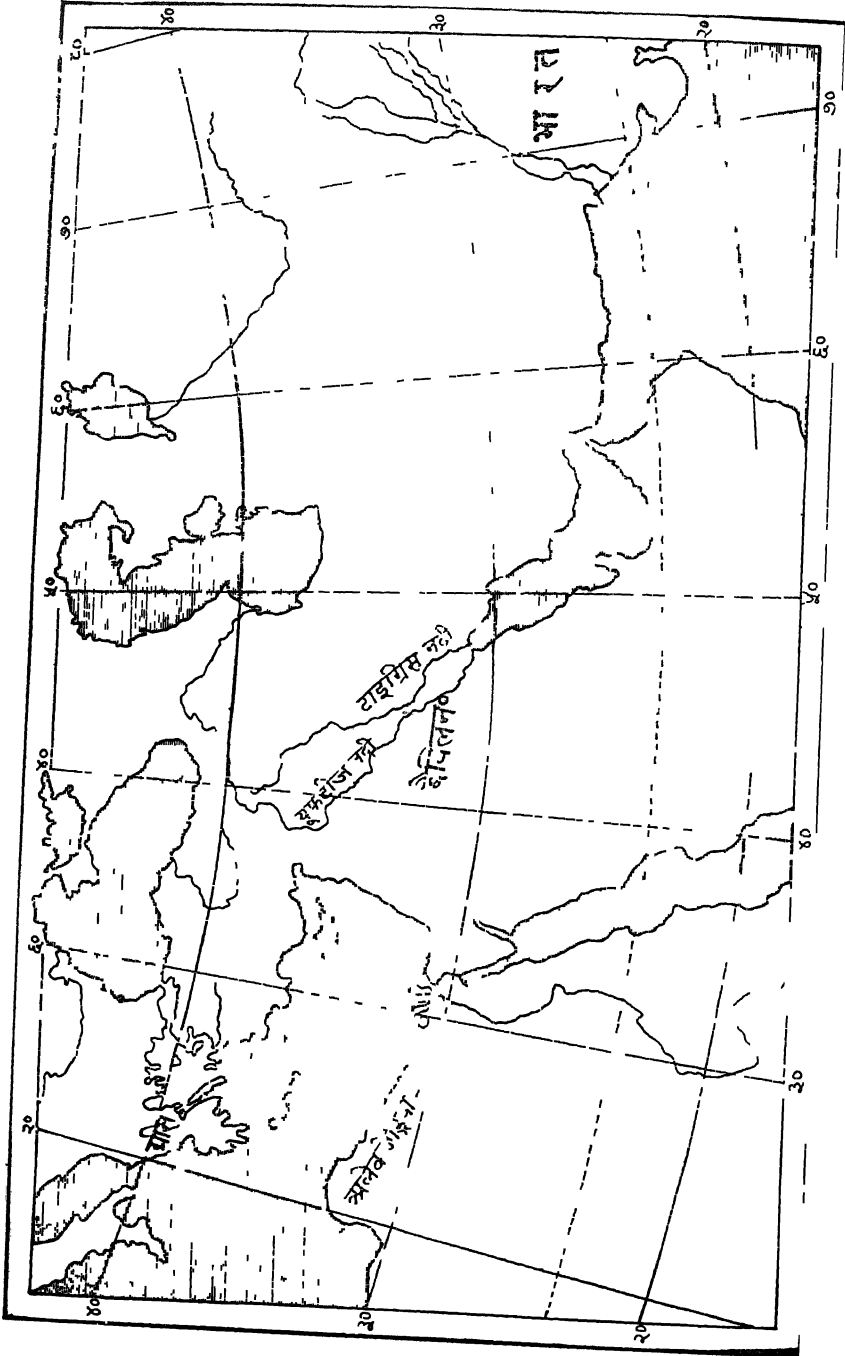
देश के निवासियो) को ज्योतिष की प्रारंभिक बातो का ज्ञान हुआ। इतना निश्चित है कि तारा-मडलो मे तारो का विभाजन यवनो ने बाबुलों से पाया। ग्रहों का ज्ञान भी उन्हे बाबुलो से मिला। बाबुलो ने ग्रहणो की भविष्यवाणी करने के लिए सैरॉस नामक युग का आविष्कार किया था। यह २२३ चाद्र मासो का (लगभग १८ वर्ष ११ दिन का) होता है। ऐसे एक युग के ग्रहण आगामी युग मे उसी क्रम मे और प्राय ठीक उतने ही समयो पर होते है। इस युग का आविष्कार कब हुआ यह अब कहा नही जा सकता, परतु एक राजा के समय के लेखो से स्पष्ट हो जाता है कि सन ३८०० ईसवी पूर्व मे तारा-मडलो के नाम पड गये थे, यद्यपि उनमे थोडा-बहुत परिवर्तन होता रहा। यवनो को तारा-मडलो का जो ज्ञान मिला और जिसे ऐरेटस नामक कवि ने छदबद्ध किया अवश्य ही ऐसे तारा-मडलों का है जो लगभग २८०० ई० पू० में देखे गये होंगे। इसका प्रमाण यह है कि जिन तारा-मडलो का नाम पूर्वोक्त सूची मे नही है अवश्य ही वे तारा-मडल होगे जो उस देश से नही दिखायी पडते थे। इस प्रकार हम जानते हैं कि तारों का कौन-सा क्षेत्र वहाँ नही दिखायी पडता था। इस क्षेत्र का केद्र अवश्य ही दक्षिण ध्रुव रहा होगा।
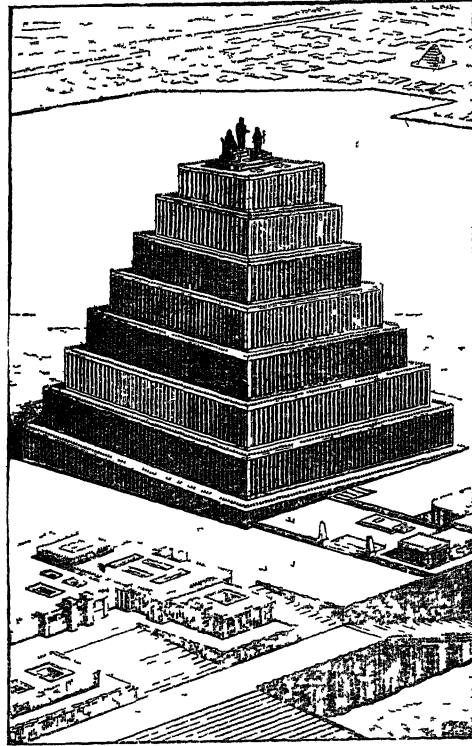
[पिरॉट और चिमीज़ की पुस्तक से

मंदिर या वेधशाला?

बाबुल लोग ऊँचे-ऊँचे मदिर बनाया करते थे और उनकी छतो पर से आकाशीय पिंडों का वेध किया करते थे।

इसलिए हम जानते है कि उस समय दक्षिण-ध्रुव तारो के बीच कहाँ रहा होगा। अब देखने की बात है कि दक्षिण ध्रुव और उत्तर ध्रुव भी तारो के बीच अयन के कारण चला करते है और तारों के सापेक्ष उनकी स्थिति जानने से हम बता सकते है कि पूर्वोक्त स्थिति किस काल मे रही होगी। ऐसे ही विचारों से ऐरेटस के वर्णन से तारामडलो के बनने का काल निर्णय किया गया है। ऐरेटस ने २७० ई० पू० मे अपने छद लिखे थे, परतु तारा-मडलो का विभाजन निस्सदेह लगभग २८०० ई० पू० का है और ४० अक्षाश के देश मे बना है।

बाबुल में ज्योतिष

मिट्टी के कुछ खपडे मेसोपोटेमिया[1] से मिले है जिन पर तरह-तरह की बाते लिखी हुई है। इन्हे पढने मे भाषा-वेज्ञानिको ने सफलता पायी है। उन खपडो से पता चलता है कि दूसरी शताब्दी ई० पू० मे मेसोपोटेमिया मे ज्योतिष का कितना ज्ञान था। उस समय वहाँ के ज्योतिषियो को ज्ञात था कि शुक्र, बुध, शनि, मगल और बृहस्पति अपने पुराने स्थान पर क्रमानुसार ८, ४६, ५९, ७९, ८३ वर्षों मे लौटते है। इन युगो की लबाई से ही स्पष्ट है कि बाबुल लोग सैकडो वर्ष पहले से ही ग्रहो का नियमित रूप से वेध करते रहे होगे। प्रति वर्ष पंचाग (खपडो पर खुदे अक्षरों मे) प्रकाशित किया जाता था, जिसमे अमावस्या का दिनाक दिया जाता था, और यह भी कि चद्र-दर्शन कब होगा, ग्रहणो का दिनाक और ब्योरा भी पहले से बता दिया जाता था, तारो का उदय-अस्त और ग्रहो की स्थितियाँ भी प्रकाशित होती थी। उनका नाक्षत्र वर्ष सच्चे मान से कुल ४½ मिनट अधिक था। पादरी एफ० एक्स० क्यूगलर ने एक महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है कि बाबुलो के चाद्र मास आदि का काल ठीक उतना ही था जितना प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी हिपार्कस का, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि हिपार्कस ने इनका ज्ञान वस्तुत बाबुलो से पाया था; वह इनका स्वय आविष्कारक न था।

बैबिलोनिया से ज्योतिष का ज्ञान ग्रीस मे लगभग सातवी शताब्दी ई० पू० मे अच्छी तरह पहुँचा। लगभग ६४० ई० पू० मे एक बाबुल विद्वान ने कोस द्वीप मे पाठशाला खोली और थेल्स नामक यवन सभवत उसका शिष्य था। पाइथागोरस ने (लगभग ५३० ई० पू० मे) बैबिलोनिया, मिस्र देश और भारतवर्ष आदि देशों मे पर्यटन करके, तथा निजी खोज से ज्योतिष तथा गणित का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

[1] बाबुलो के देश का आधुनिक नाम।

यह वही गणितज्ञ है जिसके नाम से पाइथागोरस का प्रमेय प्रसिद्ध है—ज्यामिति का यह प्रमेय बताता है कि समकोण त्रिभुज मे कर्ण पर बना वर्ग शेष भुजाओ पर बने वर्गों के योग के बराबर होता है[1]। पाइथागोरस का मत था कि पृथ्वी अतरिक्ष में बेलाग टिकी है, अन्य किसी पिड या पदार्थ या जीव पर आश्रित नही है। उसके शिष्यो की पुस्तको से प्रत्यक्ष है कि वे यह मानते थे कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती रहती है। अरिस्टार्कस का (लगभग २८०–२६४ ई० पू० मे) सिद्धात था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते है, परतु आर्किमिडीज ने इस सिद्धात को भ्रमपूर्ण बताया। यूडॉक्सस ने (४०८–३५५ ई० पू० मे) इसका भी प्राय शुद्ध सिद्धात बनाया कि क्यो ग्रह बराबर एक दिशा मे चलने के बदले आगे-पीछे चलते है। कुछ अन्य ज्योतिषियो ने इसमे थोडा-बहुत सशोधन किया, परतु इस विषय पर अपोलोनियस (लगभग २५०–२२० ई० पू० मे) वह सिद्धात बना लिया था जो सूर्य-सिद्धात मे भी है और अपोलोनियस के समय से लगभग १८०० वर्षों तक ठीक समझा गया। अरिस्टिलस और टिमोरिस ने (लगभग ३२०–२६० ई० पू० मे) तारो की स्थितियाँ नाप कर तारा-सूचियाँ बनायी। अरिस्टार्कस ने सूर्य और चद्रमा की दूरियो का अनुपात जानने की भी एक रीति का वर्णन किया जो सिद्धातत ठीक है परतु प्रयोग मे बहुत अच्छा परिणाम नही देता। एरॉटॉसथिनिज़ ने रविमार्ग और विषुवत के बीच के कोण को नापा और उसकी नाप मे कुल ५ कला की अशुद्धि थी। उसने पृथ्वी के व्यास की भी गणना दो स्थानो से ध्रुव के उन्नताशो को नाप कर किया।

हिपार्कस

इसमे सदेह नही कि यवन ज्योतिषियो मे सबसे महान हिपार्कस और टालमी थे। हिपार्कस का जन्म कब हुआ या मृत्यु कब हुई इसका ठीक पता नहीं है, परतु उसका काल लगभग १४६–१२७ ई० पू० था। उसकी गणना प्रसिद्धतम प्राचीन ज्योतिषियो और गणितज्ञो मे होती है। उसका जन्म-स्थान नीशिया था। १६१ से १४६ ई० पू० मे वह अलेक्जैड्रिया[2] मे ज्यौतिष वेध किया करता था और

[1] **संभवतः पाइथागोरस ने इस प्रमेय को भारतवर्ष में सीखा था। देखें साइटश्रिफ्ट डर डॉयटशेन मॉरगनलेडिशेन गज़ेलशाफ्ट।**

[2] **पृष्ठ ११८ के चित्र में इसकी स्थिति दिखायी गयी है, पृष्ठ ११२ पर इस नगर का वर्णन दिया जा चुका है।**

उसके पहले अपनी जन्मभूमि मे। उसकी पुस्तके अब अधिकाश लुप्त हो गयी है। परतु हमे उसके विषय मे जानकारी स्ट्रेबो (प्रथम शताब्दी ई० पू०) और मिश्र के महान ज्योतिषी टालमी के लेखो से प्राप्त होती है। टालमी ने अपनी पुस्तक सिनटैक्सिस मे बार-बार हिपार्कस की चर्चा की है और कई स्थानो पर तो हिपार्कस के वाक्यो का ज्यो-का-त्यो उद्धरण दिया है। सिनटैक्सिस का नाम पीछे ऐलमैजेस्ट पड गया, क्योकि अरब वाले इसे अल मजस्ती कहते थे। यह ग्रथ कोपरनिकस (१४७३–१५४३ ई०) और केपलर (१५७१–१६३० ई०) के समय तक वेद-पुराण की तरह अकाट्य समझा जाता था, और इसी से यह सुरक्षित रह गया। टालमी ने हिपार्कस की बडी प्रशसा की है और सदा बताने की चेष्टा की है कि कितनी बाते उसे हिपार्कस से मिली, परतु बहुत से स्थानो मे सदेह बना ही रह जाता है कि कितना अश हिपार्कस से मिला और कितना स्वय टालमी का नया काम है। जान पडता है कि हिपार्कस ने कई एक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ फुटकर विषयो पर लिखी थी, परतु सपूर्ण ज्योतिष पर किसी ग्रथ की रचना नही की थी। इसके विपरीत सिनटैक्सिस मे सब बातो का पूरा विवेचन था, ज्यौतिष राशियो के मान पहले से बहुत अच्छे थे, और पुस्तक बहुत अच्छे ढग से लिखी गयी थी। सभवत इसी कारण से हिपार्कस की कृतियो का आदर कम हो गया और समय पाकर वे लुप्त हो गयी। टालमी हिपार्कस के लगभग ३०० वर्ष बाद हुआ था। ज्योतिष के प्रमुख प्रश्नो के उत्तर हिपार्कस ने दे दिये थे। टालमी ने उनको परिष्कृत किया, त्रुटियो की पूर्ति की और नवीन सारणियाँ बनायी।

हिपार्कस का काम

हिपार्कस ने ज्योतिष के प्रमुख ध्रुवाको को निर्धारित कर दिया था, जैसे सायन और नक्षत्र वर्षों की लबाइयाँ, चाद्रमास की लबाई, पाँचो ग्रहो के सयुति-काल, रवि-मार्ग की तिर्यक्ता (तिरछापन) जिसे प्राचीन भारत के ज्योतिषी परम क्रांति कहते थे, चद्रमार्ग की तिर्यक्ता, सूर्य-कक्षा का मदोच्च (जहाँ सूर्य हमसे दूरतम रहता है), सूर्य-कक्षा की उत्केद्रता (अथवा चिपटापन), चद्रमा का लबन (अथवा दूरी); और इन सभी राशियो के मान प्राय ठीक थे। अवश्य ही उसने बहुत-सी बाते खाल्दी[1] (कैल्डियन) लोगो से सीखी थी, परतु स्पष्ट है कि उसने स्वय इन राशियो को नापा था और कई एक के नवीन तथा अधिक सच्चे मान दिये थे। हिपार्कस गोले पर तारों

[1] बाबुलो के देश में ही पीछे खाल्दियों का अधिकार हुआ।

(नक्षत्रो) का चित्र बनाकर उनका अध्ययन करता था। इस गोले को हम खगोल कहेगे। तारा-मडलो के वर्णन मे जो नवीन बाते हिपार्कस ने बतायी —कौन-सा तारा किन तारो के सीध मे है, किस तारा-मडल की आकृति किस प्रकार की है; इत्यादि—सब खगोल देखकर बताये हुए जान पडते है।

इसकी विशेष सभावना जान पडती है कि हिपार्कस किसी-न-किसी प्रकार के याम्योत्तर यत्र का प्रयोग करता था। आधुनिक याम्योत्तर यत्र मे एक दूरदर्शी इस प्रकार आरोपित रहता है कि वह केवल याम्योत्तर[1] मे चल सके। इसकी सरचना नीचे के चित्र से समझ मे आ जायगी। इसकी प्रयोग-विधि पृष्ठ १०४ पर दिखायी गयी है।
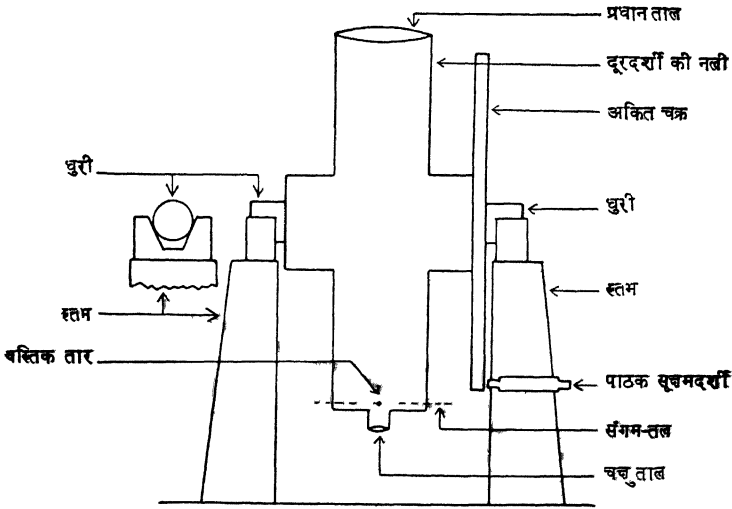
याम्योत्तर यंत्र।

इस चित्र से आधुनिक याम्योत्तर यत्र के अवयवो को सुगमता से समझा जा सकता है।

आधुनिक वेधशालाओं का यह प्रधान यत्र है। अवश्य ही हिपार्कस के याम्योत्तर यंत्र में दूरदर्शी के बदले केवल सरल नलिका रही होगी। हिपार्कस ने बहुत से वेध

[1] शिरोबिंदु और उत्तर तथा दक्षिण बिंदुओं से जमाने वाले समतल को याम्योत्तर कहते है।

किये जो इतने शुद्ध थे कि आश्चर्य होता है कि कैसे उन यत्रो से वह इतनी सूक्ष्मता प्राप्त कर सका। उसने सूर्य और चद्रमा की गतियो का प्राय सच्चा सिद्धात बना लिया था, परन्तु ग्रहो के कभी आगे, कभी पीछे, चलने के सिद्धात मे पूरी सफलता नही पायी थी। उसके काम को टालमी ने पूरा किया। हिपार्कस ने भी अरिस्टार्कस की यह बात नही मानी कि सूर्य निश्चल है और पृथ्वी तथा ग्रह उसकी प्रदक्षिणा करते है।

अयन का आविष्कार

हिपार्कस के आविष्कारो मे से निस्सदेह अयन का पता लगाना अत्यत महत्त्व-पूर्ण था। जब वसत ऋतु मे दिन रात बराबर होते है तब खगोल पर तारो के बीच सूर्य की स्थिति को वसत विषुव कहते है[1]। वसत विषुव तारो के बीच स्थिर नही रहता—वह चलता रहता है, इसी चलने को अयन कहते है। जब हिपार्कस ने अपने वेधो की तुलना टिमोकैरिस के वेधो से की तो उसे तुरत पता चल गया कि अवश्य ही वसत विषुव पीछे मुँह (अर्थात सूर्य के चलने से उलटी दिशा मे) चलता रहता है। वसत विषुव के सापेक्ष सूर्य के एक चक्कर लगाने को सायन वर्ष कहते है, तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगाने को नाक्षत्र वर्ष कहते है। दोनो मे २० मिनट २३ सेकड का अन्तर है। हिपार्कस को इन दोनो वर्षो का भेद ज्ञात था। भार-तीय ज्योतिषियो को इनका भेद ७०० वर्ष पीछे वराहमिहिर के समय मे भी ज्ञात नही हुआ। वस्तुत, भारत के अधिकाश पचाग आज भी सायन वर्ष की अवहेलना करते है।

अयन के कारण वसत विषुव का स्थान बहुत धीरे-धीरे ही बदलता है। वसत विषुव आकाश का एक चक्कर लगभग २६००० वर्षो मे लगा पायेगा। सूर्य के व्यास के बराबर (अर्थात लगभग आधा अश) हटने मे वसत विषुव को लगभग ३६ वर्ष लग जाता है। यही कारण है कि अयन का पता लगाना कठिन है। हिपार्कस ने टिमोकैरिस और अपने वेधो की तुलना से अयन का आभास तो पा लिया, परतु

[1] यह स्थूल परिभाषा है; शुद्ध परिभाषा यह है कि रविमार्ग और विषुवत के एक छेदन-विंदु को वसंत विषुव कहते है, दूसरे को शरद विषुव; इनमें से वसंत विषुव वह है जहाँ सूर्य, पृथ्वी के उत्तर गोलार्ध में वसंत ऋतु रहने पर, स्थिर रहता है। वसंत विषुव और ध्रुव में घनिष्ठ सबध है। वसंत विषुव का पीछे मुँह चलना ध्रुव के एक वृत्त में चलने का परिणाम है। ध्रुव के चलने की बात पहले बतायी जा चुकी है। (पृष्ठ ५९ और पृष्ठ ९७ का चित्र देखें।)

उसे पूर्ण विश्वास तभी हुआ जब उसने और भी पुराने, खाल्दी लोगो के, वेधों से अपने वेधो की तुलना की। उसने अनुमान किया कि वसत विषुव एक वर्ष मे ३६″ (छत्तीस विकला) है, परतु वस्तुत यह एक वर्ष मे लगभग ५०″ चलता है।

हिपार्कस ने तारो की सूची भी बनायी जिसमे लगभग ८५० तारो का उल्लेख था और इसमे प्रत्येक तारे की स्थिति भोगाश (लॉन्जिटयूड) और शर (लैटिट्यूड) देकर बतायी गयी थी। इस सूची का उद्देश्य सभवत यह रहा होगा कि यदि कोई नवीन तारा कभी दिखायी पडे तो उसका निश्चित पता चल सके, क्योकि हिपार्कस के समय मे वृश्चिक राशि मे एक नवीन तारा वस्तुत दिखायी पडा था, जिसका उल्लेख चीन के ज्योतिषियो ने किया है (१३४ ई० पू०)। हिपार्कस की सूची को, थोडा-बहुत सशोधन करके, टालमी ने प्रकाशित किया। हिपार्कस ने कोणो की जीवाओ के भी मान दिये थे[1]। उसके गणितीय तथा भौगोलिक कार्यो के विवेचन की यहाँ आवश्यकता नही जान पडती।

टालमी

टालमी अलेक्जैंड्रिया (मिश्र देश) का निवासी था। उसका पूरा नाम क्लॉडियस टॉलिमेइयस था, जो अँग्रेजी मे सक्षिप्त होकर टालमी हो गया है। वह प्रसिद्ध ज्योतिषी, गणितज्ञ और भौगोलिक था। उसके जन्म अथवा मृत्यु-काल का ठीक पता नही है, परंतु एक प्राचीन यवन लेखक के अनुसार उसने टालेमेइस हरमाई नामक यवन नगर मे जन्म लिया था। इतना अच्छी तरह ज्ञात है कि वह सन १२७ ईसवी से सन १४१ या १५१ ई० तक वेध करता रहा। अरबी लेखको के अनुसार टालमी ७८ वर्ष की आयु में मरा। यहाँ टालमी के गणित और भूगोल विषयक कार्यो पर विचार न किया जायगा। केवल उसके ज्योतिष सबधी कार्यो पर सक्षेप में विवेचन किया जायगा।

हिपार्कस ने समतल और गोलीय त्रिकोणमिति के कुछ प्रमेयो का आविष्कार किया था और उसने ज्योतिष के सिद्धान्तों की उत्पत्ति मे सहायता ली थी। टालमी ने इस विषय का ऐसा पूर्ण और दोषरहित विवेचन दिया कि लगभग १४०० वर्षो तक कोई दूसरा लेखक उसके आगे न बढ सका। आकाशीय पिंडो के चलने का टालमीय सिद्धान्त भी इसी प्रकार लगभग इतने ही समय तक सर्वमान्य बना रहा। टालमी

[1] जीवा और ज्या का सबंध यह है कि जीवा थ = २ ज्या $\frac{1}{2}$ थ।

की गणितीय तथा ज्योतिष कृतियाँ जिस पुस्तक मे एक साथ छपी है उसका नाम यवनो ने मैथिमैटिके सिनटैक्सि रक्खा, जिसका अर्थ है गणित-सहिता। अरब वालो ने प्रशसापूर्ण नाम खोज कर इसे मजस्ती कहा जिसमे वे अरबी उपसर्ग अल लगा दिया करते थे। इसी से इस पुस्तक का नाम अँग्रेजी तथा कई अन्य यूरोपीय भाषाओ मे अलमैजेस्ट पड गया। इसका अर्थ हुआ ग्रथराज।

सिनटैक्सिस

सिनटैक्सिस अर्थात अलमैजेस्ट के प्रथम खड मे पृथ्वी, उसका रूप, उसका बेलाग स्थिर रहना, आकाशीय पिडो का वृत्तो मे चलना, कोण-जीवाओ की गणना करने की रीति, कोण जीवाओ की सारणी, रविमार्ग की तिर्यक्ता, उसे नापने की रीति, और फिर ज्योतिष के लिए आवश्यक समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति और अत मे रेखाश तथा भोगाश से विषुवाश तथा क्राति जानने की रीति और आवश्यक सारणी, ये सब बाते दी हुई है। खड २ मे खगोल सबधी कुछ प्रश्नो का उत्तर है, जैसे किसी अक्षाश पर महत्तम दिनमान क्या होगा, इत्यादि। खड ३ मे वर्ष की लबाई और सूर्य-कक्षा की आकृति आदि की गणना-विधि का विवेचन है, जिसमे सिद्धात मुख्यत यह है कि सूर्य ऐसे वृत्त मे चलता है जिसका केन्द्र किसी अन्य वृत्त पर चलता है। इस खड के प्रथम अध्याय मे टालमी ने यह भी बताया है कि सिद्धात ऐसा होना चाहिए जो सरलतम हो और वेध प्राप्त बातो के विरुद्ध न हो, और ऐसे वेधो मे जिनमे सूक्ष्मता की आवश्यकता है उन वेधो को चुनना चाहिए जो दीर्घ कालो पर लिये गये हो, इससे वेधो की त्रुटियो का विशेष दुष्परिणाम न पडेगा। खड ४ मे चाद्र मास की लबाई और चद्रमा की गति बतायी गयी है। खड ५ मे ज्योतिष यत्र की रचना, सूर्य तथा चद्रमा के व्यास, छाया की नाप, सूर्य की दूरी आदि विषय है। खड ६ मे चद्रमा और सूर्य की युतियो तथा ग्रहणो पर विचार किया गया है। खड ७ और ८ मे तारो तथा अयन पर विचार किया गया है। खड ७ मे उत्तरी तारा-सूची है और खड ८ मे दक्षिणी तारा-सूची। दोनो मे कुल मिलाकर १,०२२ तारे दिये गये है। प्रत्येक तारे के भोगाश और शर बताये गये है, और चमक भी। खड ८ मे आकाशगगा का भी वर्णन है। खड ९ से १३ तक मे ग्रह सबधी बाते बतायी गयी है।

सिनटैक्सिस के भाष्य

सिनटैक्सिस पर कई भाष्य लिखे गये है। पैपियस की यवन भाषा म लिखी टीका (जो केवल खड ६ और अशत. खड ५ पर है) अब भी प्राप्य है। अलेक्ज़ै-ड्रिया के थियन का भाष्य ग्यारह खडो मे है। थियन लगभग सन ४०० ई०

मे था, परतु उसकी पुस्तक १५३८ ई० मे प्रकाशित हुई। सन ८२७ मे सिनटैक्सिस का उल्था अरबी भाषा मे किया गया। इसके बाद कई नवीन अरबी अनुवाद हुए और इनमे से एक अनुवाद का लैटिन अनुवाद सन ११७५ मे हुआ। यवन भाषा से लैटिन अनुवाद १४५१ मे हुआ। हाइबर्ग ने टालमी की कृतियो का प्रामाणिक सस्करण १८९९-१९०७ मे प्रकाशित कराया। इसके पहले कई सस्करण और अनुवाद छप चुके थे, जिनका ब्योरा इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका मे मिलेगा। एक जरमन अनुवाद १९१२-१३ मे छपा।

अलमैजेस्ट यवन ज्योतिष का उच्चतम शिखर था। टालमी के बाद डेढ हजार वर्ष तक कोई बडा ज्योतिषी हुआ ही नही, केवल भाष्यकार हुए।

अध्याय ११

सूर्य-सिद्धांत

मध्यमाधिकार

वराहमिहिर ने अपनी पचसिद्धातिका मे जिन पॉच सिद्धातो का साराश दिया है उनमे से एक सूर्य-सिद्धात भी है, और पाचो मे इसी का स्थान सबसे ऊँचा है। सूर्य-सिद्धात अब भी उपलब्ध है, परतु वर्तमान सूर्य-सिद्धात और वराहमिहिर के सूर्य-सिद्धात मे कुछ बातो मे अतर है। निस्सदेह पीछे के भाष्यकारो ने सूर्य-सिद्धात को अधिक परिष्कृत करने के लिए उसके ध्रुवाको मे आवश्यकतानुसार सशोधन कर दिया होगा। नीचे का विवरण वर्तमान सूर्य-सिद्धात के बारे मे है।

हिंदी पाठको के लिए सूर्य-सिद्धात का महावीरप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'विज्ञान-भाष्य तथा मूल' जो विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था, सर्वोत्तम है। एक अँग्रेजी अनुवाद पादरी बरजेस ने १८६० मे प्रकाशित कराया था जिसे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने १९३५ मे फिर से छापा। यह अनुवाद बहुत ही सुन्दर हुआ है और बरजेस की टिप्पणियाँ भी बहुत अच्छी है। कलकत्ता विश्वविद्यालय वाले सस्करण मे प्रबोधचद्र सेनगुप्त की भूमिका भी है जिसमे सूर्य-सिद्धात सबधी कई बातो का विशद विभेद है।

सूर्य-सिद्धात के आधुनिक रूप मे १४ 'अधिकार' अर्थात अध्याय है। पहले अध्याय मे ग्रहो की मध्य गतियाँ है। यह समझने के लिए कि मध्यगति क्या है स्मरण रखना चाहिए कि सूर्य, चद्रमा, तथा बुध आदि ग्रह समान कोणीय वेग से नही चलते, परतु गणना की सुविधा के लिए पहले यह मान लिया जाता है कि वे समान वेग से चलते है। इस कल्पना के अनुसार गणना करने से प्राप्त स्थितियाँ मध्यम या मध्यक स्थितियाँ कहलाती है। सूर्य-सिद्धात के प्रथम अध्याय मे इनकी ही गणना बतायी गयी है। इसी से पहला अध्याय मध्यमाधिकार कहलाता है।

सूर्य-सिद्धात का लेखक

ईश्वर बदना के पश्चात आठ श्लोको मे यह भी बताया गया है कि पुस्तक का लेखक कौन है । ये इस प्रकार है

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुरः ।
रहस्य परम पुण्य जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥२॥
वेदागमग्रयमखिल ज्योतिषा गतिकारणम् ।
आराधयन् विवस्वन्त तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३॥
तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ।
ग्रहाणा चरित प्रादान् मयाय सविता स्वयम् ॥४॥
विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम् ।
दद्या कालाश्रय ज्ञान ग्रहाणा चरित महत् ॥५॥
न मे तेज·सह· कश्चिदाख्यातु नास्ति मे क्षण· ।
मदशः पुरुषोऽय ते नि·शेष· कथयिष्यति ॥६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देव समादिश्याशमात्मन· ।
स पुमान् मयामाहेद प्रणत प्राञ्जलिस्थितम् ॥७॥
श्रृणुष्वैकमना पूर्व यदुक्त ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे युगे महर्षीणा स्वयमेव विवस्वता ॥८॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेद यत्पूर्वं प्राह भास्कर ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥९।

अर्थ[१]—सत्युग के कुछ शेष रहने पर मय नामक महा असुर ने सब वेदागो मे श्रेष्ठ, सारे ज्योतिष्क पिडो की गतियो का कारण बताने वाले, परम पवित्र और रहस्य-मय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य भगवान की आराधना की ॥२–३॥

उसकी तपस्या से सतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान ने स्वय वर चाहने वाले मय को ग्रहो के चरित अर्थात ज्योतिषशास्त्र का उपदेश दिया ॥४॥

भगवान सूर्य ने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तप से मै बहुत सतुष्ट हूँ, मै तुझे ग्रहो के महान चरित का उपदेश करता हूँ, जिससे समय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है, परतु मेरा तेज कोई सह नही सकता और उपदेश देने

[१] महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के विज्ञान-भाष्य से ।

के लिए मुझे समय भी नही है। इसलिए यह पुरुष, जो मेरा अश है, तुझे भली भाँति उपदेश देगा ॥५-६॥

इतना कहकर सूर्य भगवान अतर्ध्यान हो गये, और सूर्याश पुरुष ने, आदेशा-नुसार, मय से, जो विनीत भाव से झुके हुए और हाथ जोडे हुए थे, कहा—एकाग्रचित्त होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो, जिसे भगवान सूर्य ने स्वय समय-समय पर महर्षियो से कहा था। भगवान सूर्य ने पहले जिस शास्त्र का उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है, युगो के परिवर्तन से केवल काल मे कुछ भेद पड गया है ॥७-९॥

इस प्रकार स्वय सूर्य-सिद्धात के अनुसार यह पुस्तक दैव-वाणी है, परतु अपना नाम गुप्त रख कर पुस्तक को अलौकिक बताना प्राचीन लेखको की एक साधारण रीति थी। ऐसी पुस्तको का सभवत कुछ अधिक आदर होता था।

जिस प्रकार १८ पुराण थे उसी प्रकार १८ ज्योतिष सिद्धातो का भी उल्लेख मिलता है, जिनमे से अधिकाश के नाम प्राचीन ऋषियो के नाम पर पडे है। सुधाकर द्विवेदी ने अपनी पुस्तक "गणक-तरगिणी" मे इस सबध मे निम्न श्लोक दिया है

सूर्य. पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि पराशर.।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरगिरा ॥
लोमश· पौलिश्चैव च्यवनो यवनो भृगु ।
शौनकोऽष्टादशैवेते ज्योति शास्त्रप्रवर्त्तकाः ॥

चूँकि इसमे यवन सिद्धात का भी नाम आया है, इसलिए यह श्लोक बहुत प्राचीन न होगा। तो भी इन अठारह सिद्धातो मे से अधिकाश लुप्त हो गये है।

सूर्य-सिद्धात के प्रथम अध्याय के ग्यारहवे और बारहवे श्लोक मे समय की एकाइयाँ दी गयी है, जिनकी सूची टीकाकारो ने कुछ और बढा दी है। ये एकाइयाँ निम्नलिखित है

१० गुर्वाक्षर = १ प्राण,
१० प्राण = १ विनाडी,
६० विनाडी = १ नाडी,
६० नाडी = १ दिन।

नाडी को नाडिका और घटिका भी कहते है। सिद्धात ये सब एकाइयाँ तो बन गयी, परतु पता नही कि वे ठीक-ठीक कैसे नापी जा सकती थी। उस समय मे जब नाडिका छेद वाले बरतन के डूबने से नापी जाती थी, विनाडी तक समय को ठीक-ठीक नापना कठिन ही रहा होगा।

इसके बाद मास और वर्ष की परिभाषाएँ है। एक वर्ष को देवताओ का एक दिन (दिन+रात) बताया गया है। देवताओ के ३६० दिनो को देवताओ का एक वर्ष बताया गया है। बारह हजार ऐसे वर्षो का एक चतुर्युग कहा गया है। ७१ चतुर्युगो का एक मन्वतर होता है, जिसके अत मे सतयुग के बराबर की सध्या होती है। चौदह मन्वतरो का एक कल्प होता है। प्रारभिक सध्या को लेकर कल्प मे इस प्रकार ४,३२,००,००,००० वर्ष होते है।

बताया गया है कि एक कल्प को ब्रह्मा का एक दिन कहते है। ऐसे ३६० दिनो को ब्रह्मा का एक वर्ष कहते है और ब्रह्मा की आयु मे इस प्रकार के १०० वर्ष होते है। ब्रह्मा की आयु को "पर" भी कहते है। इसके आधे को परार्ध कहते है।

समय की एकाइयाँ

सूर्य-सिद्धात मे समय का विभाजन वही है जो पुराणो मे पाया जाता है, परतु यहाँ केवल ब्रह्मा की आयु पर ही एकाइयाँ समाप्त कर दी गयी है। विष्णु पुराण मे इससे भी बडी एकाइयाँ है। वहाँ दो परार्धो को विष्णु का एक दिन कहा गया है और उसके आगे भी एकाइयाँ बतायी गयी है।

सूर्य-सिद्धात के अनुसार ब्रह्मा की आयु ३१,१०,४०,००,००,००,००० साधारण वर्षों की होती है।

अवश्य ही समय की ये सभी एकाइयाँ काम मे नही आती थी। बहुत छोटी और बहुत बडी एकाइयाँ केवल आरभ मे ही एकाइयो की सूची मे आयी है। अवश्य ही इनसे गणित मे पटुता प्रदर्शित होती है, न कि समय को क्रियात्मक रूप से नाप सकने मे चातुर्य।

एकाइयो को बताने के बाद यह बताया गया है कि वर्तमान समय कौन से मन्वतर का कौन-सा युग है। सृष्टि मे कितना समय लगा यह भी बताया गया है। फिर ग्रहो की गति बतायी गयी है। यह कल्पना की गयी है कि सब ग्रहो का अनुरैखिक वेग, अर्थात योजन प्रति घटी मे (अथवा मील प्रति घटा मे) वेग, एक ही है। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार यह कल्पना अशुद्ध है। उसके अनुसार ग्रहो का अनुरैखिक वेग दूरी के वर्गमूल के व्युत्क्रम के अनुसार रहता है।

इसके पश्चात कोणीय नाप की एकाइयाँ बतायी गयी है —

६० विकला = १ कला,
६० कला = १ भाग (जिसे अश भी कहते है),
३० भाग = १ राशि,
१२ राशि = १ भगण (अर्थात एक पूरा चक्कर)।

ग्रहों की गतियाँ

अब ग्रहो की कोणीय मध्यक गतियाँ बतायी गयी है। उन्हे बताने के लिए यह बताया गया है कि एक महायुग ($= \frac{1}{1000}$ कल्प) मे सूर्य, बुध आदि कितने चक्कर लगाते है। उदाहरणत बताया गया है कि सूर्य ४३ लाख २० हजार चक्कर लगाता है, यह वस्तुत एक युग मे वर्षो की सख्या है। मगल २२ लाख ९६ हजार ८ सौ बत्तीस चक्कर लगाता है, इत्यादि।

पाश्चात्य देशो मे ग्रहो की स्थितियाँ किसी निकट समय के विशेष क्षण पर बताकर उनकी दैनिक गति दे दी जाती है, जिससे उनकी स्थितियाँ अन्य क्षणो पर गणना द्वारा निकाली जा सकती है, परतु भारतीय ज्योतिष मे इस पद्धति पर बने ग्रथो को करणग्रथ कहते थे और उनका आदर कम होता था, विशेष आदर सिद्धात-ग्रथो का होता था। ऐसे ग्रथो मे मान लिया जाता था कि कल्प के प्रारभ मे सूर्य, चद्रमा तथा सब ग्रह[1] आकाश के एक विदु पर थे, और चद्रमा तथा ग्रहो की कक्षाओ के पात और सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के शीघ्रोच्च[2] भी वही थे। तब लबे युग मे उनके भगणो (चक्करो) की सख्याएँ बतायी जाती थी, जो स्वभावत ऐसी होती थी कि ग्रथकार के समय मे आकाशीय पिडो की स्थितियाँ ठीक निकले और उनकी दैनिक गतियाँ भी यथासभव ठीक निकले।

सूर्य-सिद्धात के अनुसार सत्युग के आरभ मे सब ग्रह मेष राशि के आदि विदु पर थे, केवल उनके उच्च और पात उस स्थान पर न थे। गणना से देखा जा सकता है कि कलियुग के आरभ मे भी यही बात सच थी। सर्वसम्मति से यह आरभ ३१०२ ई० पू० की उज्जयनी की उस अर्धरात्रि को हुआ था जो १७ फरवरी के अत और १८ फरवरी के आरभ मे पडती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वस्तुत उक्त दिनाक पर सब ग्रहादि साथ थे। बरजेस ने विनलॉक से गणना करायी, जो अमरीका के नॉटिकल अलमनक कार्यालय के उस समय अध्यक्ष थे। बेटली और बेली ने भी स्वतत्र रूप से गणना की। इतने

[1] प्राचीन ग्रथो में सूर्य और चद्रमा को भी ग्रह मानते थे। जब सूर्य और चद्रमा को छोड अन्य ग्रहो का ही उल्लेख करने की आवश्यकता पडती थी तो उनको तारा-ग्रह कहते थे। हम इस पुस्तक मे तारा-ग्रहो को केवल ग्रह कहेंगे और सूर्य तथा चद्रमा को ग्रह न मानेंगे।

[2] आगे पृष्ठ १३४ पर ये शब्द समझाये गये है।

दिन पहले के लिए ग्रहादि की स्थितियाँ बताने मे उनकी नपी हुई गतियो की अवश्य-भावी त्रुटियो का प्रत्यक्षत बडा प्रभाव पडता है। आधुनिक ज्योतिष मे अभी इतनी परिशुद्धता नही है कि निश्चयात्मक रूप से कहा जा सके कि कलियुग के आरभ मे ग्रहादि के स्थान ठीक-ठीक क्या थे। इसी से विनलॉक, बेली और बेटली के उत्तरो मे अतर आया, परतु इतना निश्चित है कि कलियुग के आरभ मे सब ग्रह और सूर्य तथा चद्रमा, एक स्थान पर नही थे, यद्यपि वे एक दूसरे से बहुत दूर भी नही थे। जान पडता है कि सूर्य-सिद्धात के ग्रथकार ने, अथवा किसी अन्य सिद्धातकार ने, अपने समय मे ग्रहो की स्थितियो और उनकी दैनिक गतियो के आधार पर गणना की होगी और तब ऐसा समय चुना होगा जब ग्रहादि लगभग एक साथ थे, और उसी समय को कलि-युग का आरभ माना होगा। यदि कलियुग के आरभ मे सचमुच ग्रहादि एक साथ थे और लोगो ने उन्हे देखा था और सूर्य-सिद्धात के समय तक ऐसी लोक-कथा चली आ रही थी, तो अवश्य वेदो मे, या वेदाग-ज्योतिष, या महाभारत या पुराणो मे इस बात की चर्चा होती। बरजेस के अनुसार ग्रहादि की स्थितियाँ स्थूल रूप से कलियुग के आरभ मे यो थी —

	भोगाश
सूर्य	३०२°
बुध	२६९
शुक्र	३३५
मगल	२९०
वृहस्पति	३१८
शनि	२८२
चद्रमा	३०८

बीज-संस्कार

सूर्य-सिद्धात के आधार पर अब भी कुछ पचागो की गणना होती है, परतु दैनिक गतियो मे त्रुटि रहने के कारण अब ग्रहो की स्थितियो में नौ-दस अश (डिगरी) का अतर पड जाता है। प्राचीन सूर्य-सिद्धात के स्थिराक और भी अशुद्ध थे। इसलिए उस ग्रथ के बनने के कुछ ही सौ वर्ष बाद उसके आधार पर गणना और वेध मे अतर पडने लगा होगा। इसीलिए पीछे के ग्रथकारो ने सूर्य आदि आकाशीय पिंडो के लिए बीज-सस्कार बताया, अर्थात युग मे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के भगणो की सख्या मे परिवर्तन कर दिया, दूसरे शब्दो मे उनकी दैनिक गति बदल दी।

यह लगभग १६वी शताब्दी ई० मे किया गया होगा, क्योकि नवीन आँकडो के अनुसार उसी समय चद्रमा और सूर्य की सापेक्षिक स्थितियो मे न्यूनतम त्रुटि पडती है और अवश्य ही ये ही दो पिड महत्तम महत्त्व के है, क्योकि उन्ही से अमावस्या और पूर्णिमा की गणना होती है । इन बीज सस्कारो से अमावस्याओ और पूर्णिमाओ की त्रुटियाँ इतनी कम हो गयी है कि आज भी उनसे गणना करने पर घटे, दो घटे से अधिक का अन्तर नही पडता ।

बरजेस ने सारणी दी है जिसमे दिखाया गया है कि सूर्य-सिद्धात, सिद्धात-शिरोमणि, टालमी और आधुनिक ज्योतिष के अनुसार सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के भगण-काल क्या है । इस सारणी की दो पक्तियाँ यहाँ दी जाती है

पिड सूर्य-सिद्धात सिद्धात-शिरोमणि टालमी आधुनिक
दिन घ०मि०से० दिन घ०मि० से० दिन घ० मि० से० दिन घ०मि० से०
सूर्य ३६५ ६ १२ ३६ ६ ३६५ ६ १२ ९ ० ३६५ ३६ ९ ४८ ६ ३६५ ६ ९ १० ८
चद्रमा २७ ७ ४३ २ ६ २७ ७ ४३ १२ १ २७ ७ ४३ १२ १ २७ ७ ४३ ११ ४

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धात के मान पर्याप्त शुद्ध है ।

फिर बताया गया है कि एक युग मे कितनी तिथियो का क्षय होता है, कितने अधिमास लगते है । कहा गया है कि एक महायुग मे १,५७,७९,१७,८२८ दिन, १,६०,३०,००,०८० तिथियाँ, १५,९३,३३६ अधिमास, २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियाँ, तथा ५,१८,४०,००० सौर मास होते है ।

इसके बाद बताया गया है कि एक कल्प मे सूर्य, मगल आदि के मदोच्च कितने चक्कर लगाते है, एक महायुग मे चद्रमा तथा ग्रहो के भगणो की सख्या भी बतायी गयी है ।

मंदोच्च और पात

यह समझने के लिए कि मदोच्च और पात क्या है, ध्यान रखना चाहिये कि सूर्य, चद्रमा, ग्रह आदि समान कोणिय वेग से नही चलते । जब उनकी दैनिक कोणीय गति न्यूनतम रहती है तब कहा जाता है कि वे मदोच्च पर है, जिस विंदु पर कोणीय वेग महत्तम रहता है उसे शीघ्रोच्च कहते है । फिर, चद्रमा और ग्रहो का आधा मार्ग रविमार्ग से दक्षिण रहता है, आधा उत्तर । जिन दो विदुओ मे ये मार्ग रविमार्ग को काटते है वे पात कहलाते है ।

सूर्य-सिद्धात के अनुसार सूर्य का मदोच्च एक कल्प मे (४,३२,००,००,००० वर्षो में) पूर्व की ओर चलकर ३८७ भगण करता है, अर्थात ३८७ चक्कर लगाता है । यह वास्तविकता से बहुत कम है, लगभग $\frac{1}{६०}$वाँ भाग । अन्य सिद्धात-

कारो ने भी मदोच्च-गति के लिए सूक्ष्म मान दिये है। वस्तुत उनका मान इन ग्रथो के अनुसार इतना कम है कि कहना पडता है कि सिद्धातकार सूर्य और ग्रहो के मदोच्च को स्थिर ही मानते थे। चद्र-कक्षा का मदोच्च प्रत्यक्षत चलता रहता है। सभवत इसीलिए सिद्धातकारो ने सूर्य और ग्रहो के मदोच्चो को भी चलायमान माना परतु उनकी गति इतनी कम बतायी कि उनका चलना, न चलना, बराबर ही रह गया।

मंदोच्च की गति कैसे नापी गयी

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि मदोच्चो की गति नापना बहुत कठिन है और उनका सूक्ष्म मान जानने के लिए शक्तिशाली यत्रो की आवश्यकता पडती है, जो सूर्य-सिद्धात के समय मे नही थे, और लगातार बहुत लबे काल तक वेध करना चाहिए, या, कम-से-कम, इस काल के आदि और अत मे वेध करना चाहिए।

सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की भगण-सख्याएँ जो ऊपर दी गयी है उन्हे जानने के लिए आवश्यक वेध अपेक्षाकृत सरल है। तो भी निश्चयात्मक रूप से यह बता सकना कि १,५७,७९,१७,८२८ दिनो मे ठीक १,६०,३०,००,०८० तिथियाँ होती है, अर्थात् १,६०,३०,००,०८० — ३० मास होते है, न एक कम, न एक अधिक, बहुत ही कठिन है। प्रश्न यह उठता है कि क्या सचमुच वेध उस समय इतना सूक्ष्म होता था कि ये सब बाते ठीक-ठीक बतायी जा सकती थी, या केवल सुनी-सुनायी या दूसरो के वेधो पर आश्रित बातो पर ही ये बाते लिख दी गयी और विभिन्न सिद्धातकारो ने यह देखकर कि उनके समय मे वेध और गणना मे कितना अतर पडता है बीज-सस्कार कर लिया। इसका उत्तर प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य ने यो दिया है[1] —

> किंतु यह रीति केवल वही जान सकता है जिसने (ज्योतिषशास्त्र की) विशेष भाषा मे कुशलता प्राप्त की हो, नक्षत्रादि स्थानो को जानता हो, और जिसने भूगोल-खगोल के बारे मे अच्छी तरह सुना हो। अपने-अपने मार्गों मे जाते हुए ग्रह (सूर्य, चद्रमा, बुध, शुक्र मगल आदि), मदोच्च, शीघ्रोच्च तथा पात एक कल्प में इतने भगण करते है, इसका प्रमाण आगम अर्थात् परपरागत ज्ञान ही है। किन्तु अधिक समय बीतने के कारण लेखको, अध्यापको, तथा पढनेवालो की भूल से आगम अनेक हो गये है। इसलिए प्रश्न होता है कि कौन-सा आगम प्रमाण माना जाय। यदि ऐसा कहा जाय कि जो आगम

[1] **सिद्धात-शिरोमणि, गणिताध्याय। संस्कृत मूल के लिए सूर्य-सिद्धांत का विज्ञान-भाष्य देखें (पृष्ठ ३७); यहाँ महावीरप्रसाद कृत अनुवाद दिया गया है।**

गणित के अनुसार खरा सिद्ध हो उसी को प्रमाण मानकर जो भगण निकले वे ही माने जायँ तो यह भी ठीक नही है, क्योकि अत्यत ज्ञानी पुरुष भी केवल रीति के जानने मे समर्थ हो सकता है, परतु (केवल) रीति से ग्रहो के भगण की सख्या नही निकल सकती। [उसे वेध की आवश्यकता पडेगी, और वेध से भी वह पूर्णतया सफल नही हो सकता।] कारण यह है कि मनुष्य की आयु बहुत थोडी होती है और उपपत्ति जानने के लिए ग्रह को प्रति दिन वेध करना होता है, जब तक कि भगण (कई बार) पूरा न हो जाय, और शनि का एक भगण तो ३० वर्षो मे पूरा होता है, मदोच्चो के भगण अनेक शताब्दियो मे पूरे होते है। इसलिए यह कार्य पुरुष-साध्य नही है। इसलिए बुद्धिमान गणक, किसी ऐसे अगम को मानकर जो उस समय ठीक समझा जाता हो और जिसकी गणना की कुशलता प्रतिष्ठाप्राप्त गणको ने स्वीकार कर लिया हो, अपनी गणित तथा गोल सबधी ग्रहो को दिखाने के लिए, तथा भ्रमवश जो कुछ अनर्थकारी दोष आ गये है उनको दूर करने के लिए, दूसरे ग्रथ बनाते है।

भास्कराचार्य का जन्म सन १११४ ई० मे हुआ था। ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य सूर्य, चद्रमा, बुध, शुक्र आदि का भगणकाल वेध से ठीक-ठीक निकालना असभव समझते थे। भारतीय ज्योतिषियो मे से सबसे अधिक विस्तृत और विशद सिद्धात भास्कराचार्य का ही है। यदि वे इस काम को असभव समझते थे तो उनके कई पीढी पहले वाले ज्योतिषी भी स्वय भगण-सख्याएँ न निकाल सके होगे। इससे कुछ लोग अनुमान करते है कि ये सख्याएँ प्रथम बार विदेश से आयी और तब विविध ज्योतिषियो ने आवश्यकतानुसार उनमे सुधार कर लिया। मय के असुर होने से भी सकेत मिलता है कि सूर्य-सिद्धात का अधिकाश विदेश से आया। परतु यह भी विचारणीय है कि सुधार करने के बाद कुछ बातो मे सूर्य-सिद्धात के ध्रुवाको से निकाला फल टॉलमी के ध्रुवाको से निकाले गये फल से अधिक शुद्ध होता था[१]।

अहर्गण

सूर्य-सिद्धात के आगामी तीन श्लोको मे बताया गया है कि सृष्टि के आरभ से किसी इष्ट समय तक सावन[२] दिनो की सख्या कैसे जानी जा सकती है। इन दिनो

[१] सूर्य-सिद्धात का विज्ञान-भाष्य, पृ० ५३।

[२] सावन दिन साधारण दिन को कहते थे, जिसे सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक नापा जाता था। दिव्य दिन, नाक्षत्र दिन, आदि, से स्पष्ट करने के लिए ही इसे सावन दिन कहते थे।

को सम्मिलित रूप से द्युगण या दिनराशि कहा गया है। पीछे इसी को अन्य सिद्धांत-कार अहर्गण कहने लगे। तीनो शब्दो का अर्थ एक ही है।

अहर्गण की गणना मे बडी-बडी सख्याएँ आती है। उदाहरणत, १९७९ विक्रमीय की वसत पचमी (माघ सुदी ५) तक का अहर्गण

७,१४,४०,४१,३१,६०३

है[1]। इसी से करण ग्रथो की सहायता से गणना करने मे सुगमता रहती है। करण-ग्रथो मे कल्प की आदि से या कलियुग के आरभ से गणना करने के बदले किसी निकट दिनाक से ही गणना की जाती है। परतु सिद्धात का ही स्थान विद्वानो मे अधिक ऊँचा रहा है।

फिर, इष्टकाल कौन-सा वार है और वर्षपति तथा मासपति कौन-कौन है इसे जानने की रीति बतायी गयी है। मासपति और वर्षपति सूर्य, चद्रमा, मगल आदि ग्रह ही होते है और साधारण काम के लिए वे महत्त्वपूर्ण नही है।

इसके बाद बताया गया है कि किसी विशेष ग्रह की मध्यम स्थिति कैसे जानी जा सकती है। कलियुग के आरभ मे इनका स्थान ज्ञात है ही। युग मे भगणो की सख्या भी ज्ञात है। इसलिए साधारण अकगणित से ग्रहो की स्थिति ज्ञात हो जाती है। इसी प्रकार पात और मदोच्च की भी स्थितियो के लिए नियम बताये गये है।

छप्पनवे श्लोक मे यह है

विस्तरेणैतदुदित सक्षेपाद्व्यावहारिकम्।
मध्यमानयन कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात्॥

अर्थ—ग्रहो के मध्यम स्थान जानने की रीति अब तक विस्तार के साथ कही गयी है, परतु व्यवहार के लिए इष्ट युग से ही यह काम सक्षेप मे करना चाहिए।

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धात का रचयिता भी यह अनुभव कर रहा था कि सृष्टि के आरभ से गणना करना निष्प्रयोजन बहुत-सा कार्य बढा देता है।

पृथ्वी की नाप

इसके बाद पृथ्वी की नाप बताई गयी है (८०० योजन), फिर पृथ्वी की परिधि। सभी जानते है कि व्यास को ३ १४१६ से गुणा करने से परिधि निकलती है। सूर्य-सिद्धात में $\sqrt{(१०)}$ अर्थात ३ १६२ से गुणा करने को कहा गया है। इससे सन्निकट मान निकलेगा, जिसमे लगभग $\frac{३}{४}$ प्रतिशत, अर्थात एक प्रतिशत से कम, की

[1]विज्ञान-भाष्य, पृ० ५७।

अशुद्धि रहेगी। विषुवत के समानातर किसी विशेष स्थान से होकर जाने वाले लघुवृत्त की परिधि जानने का सूत्र भी दिया गया है, जो पूर्णतया शुद्ध है।

मध्य याम्योत्तर रेखा वह बतायी गयी है जो अवती (उज्जैन) से होकर जाती है। इसी रेखा पर रोहीतक (सभवत वर्तमान रोहतक) है यह भी बताया गया है। आगे के तीन श्लोको मे बताया गया है कि किसी स्थान का देशातर कैसे नापा जा सकता है। वर्तमान समय मे रेडियो-सकेतो से देशातर जाना जाता है। इसके पहले तार-सकेतो से जाना जाता था। सूर्य-सिद्धात मे सर्व चद्र-ग्रहण के आरभ या अत को देखकर देशातर नापने का आदेश है।

मध्य याम्योत्तर से पूर्व या पश्चिम वाले स्थानो मे दिन का आरभ कब से मानना चाहिए यह बता कर नियम दिया गया है जिससे सूर्य, चद्र, मगल आदि का मध्यक स्थान, मध्यरात्रि से इच्छानुसार घडी आगे या पीछे, जाना जा सकता है। इस प्रकार इष्ट समय पर इन आकाशीय पिडो का भोगाश जानने का सपूर्ण और ब्योरेवार नियम है। उसके बाद के श्लोको मे इसकी गणना बतायी गयी है कि चद्रमा, मगल, आदि, रविमार्ग से कितना उत्तर या दक्षिण हटे रहते है; दूसरे शब्दो मे, उनका शर क्या है।

स्पष्टाधिकार

प्रथम अध्याय का नाम है मध्यमाधिकार, क्योकि इसमे सूर्य आदि की मध्यक स्थितियाँ है, अर्थात वे स्थितियाँ जहाँ सूर्य आदि दिखायी पडते यदि वे सदा समान वेग से चलते और औसतन उतने ही काल मे एक चक्कर लगाते जितने मे वे वस्तुत लगाते ह। द्वितीय अध्याय का नाम स्पष्टाधिकार है। इसमे बताया गया है कि सूर्य आदि की मध्यक स्थितियो में क्या-क्या सशोधन करना चाहिए जिसमे सशोधित स्थितियाँ वही हो जायँ जो आकाश मे वस्तुत रहती है।

पहले तो एक व्यापक सिद्धात दिया गया है कि सूर्य आदि क्यो मध्यक वेग से कभी शीघ्रतर चलते है, कभी मदतर। इस सिद्धात का साराश यह है कि अतरिक्ष मे वायु-धाराएँ है जो उनको नियमित रूप से इधर या उधर खीचती रहती है। फिर शीघ्रतर, शीघ्र, सम, मद, मदतर वेग बताये गये है।

तेरह श्लोको मे ज्या-सारणी बतायी गयी है, जो पर्याप्त शुद्ध है। बरजेस ने बताया है कि ये ज्याएँ पहले कैसे निकाली गयी होगी और फिर उनकी वृद्धि की जाँच करके उनकी गणना के लिए अधिक सुगम नियम कैसे बने होगे[1]। उप-

[1]कलकत्ता वाला संस्करण, पृष्ठ ६१।

लब्ध साक्ष्य की जाँच से बरजेस का विश्वास है कि ज्या की सारणी अवश्य भारत मे बनी होगी।

ज्या की सारणी बनाने मे वृत्त की परिधि और व्यास की निष्पत्ति की आवश्यकता पडती है और यहाँ $\sqrt{(१०)}$ के बदले प्राय पूर्णतया शुद्ध मान लिया गया है। इससे स्पष्ट है कि शुद्ध मान सिद्धातकारो को ज्ञात था, केवल सुविधा के विचार से, स्थूल गणना के लिए, उसका मान $\sqrt{(१०)}$ भी ले लिया जाता था।

यदि **कखग** कोई कोण है और विंदु **ग** से भुजा **खग** पर लब **गघ** गिराया गया है तो **गघ**—**खग** के मान को कोण **कखग** की 'ज्या' कहते है। यह आधुनिक परिभाषा है। सूर्य-सिद्धात मे **खग** को ३४३८ मान लिया गया है और तब बताया गया है कि विविध कोणो के लिए **गघ** का मान कितना होता है और **गघ** के मान को ज्या कहा गया है। एक समकोण को २४ बराबर भागो मे बाँट कर एक भाग, दो भाग, तीन भाग, इत्यादि की ज्याएँ बतायी गयी है। ज्या की आवश्यकता कई गणनाओ मे पड़ती है।
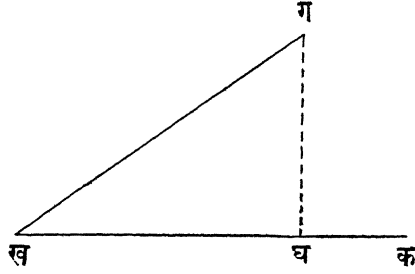
आगामी श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य की परम क्राति, अर्थात महत्तम क्राति, कितनी होती है, वस्तुत परम क्राति की ज्या बतायी गयी है। फिर उसी श्लोक मे यह भी बताया गया है कि किसी अन्य अवस्था मे क्राति की गणना कैसे की जा सकती है।

श्लोक २९ मे बताया गया है कि मदोच्च, शीघ्र, केद्र, पद, भुजज्या और कोटि की गणना कैसे करनी चाहिए। यहाँ केद्र शब्द संस्कृत नही है, क्योकि इसके पहले की पुस्तको मे इसका प्रयोग नही होता था। बरजेस ने लिखा है कि केद्र ग्रीक शब्द *Κεντρον* (केंट्रन) है, और ग्रह के स्पष्ट स्थान निकालने की नीव मे ही इस शब्द के आने मे गढ रहस्य है।

सारणी से ३ अश या इसके दुगुने, तिगुने आदि की ही ज्या जानी जा सकती है; अब बताया गया है कि अन्य कोणो की ज्या किस प्रकार जानी जा सकती है, जो नियम दिया गया है वह सरल अत क्षेपण का नियम है।

मद-परिधि

चौतीसवे और उसके बाद वाले श्लोको मे बताया गया है कि सूर्य, चद्रमा, मगल आदि का स्पष्ट स्थान कैसे ज्ञात किया जा सकता है। इसके समझने के लिए साथ के चित्र पर विचार करे। गणना के लिए कल्पना की जाती थी कि पिड एक छोटे से वृत्त पर समान वेग से चलता है और उस वृत्त का केद्र समान वेग से दूसरे वृत्त पर चलता है। छोटे वृत्त को सूर्य-सिद्धात मे मद-परिधि कहा गया है। बडा वृत्त वही है जिस पर पिड की मध्यक स्थिति रहती है, वस्तुत मद-परिधि का केद्र पिड की मध्यक स्थिति है।

उदाहरण के लिए सूर्य पर विचार करे। चित्र मे **पृ** पृथ्वी है। मध्यक सूर्य[1] वृत्त **म॰, म, म१** पर चलता है। जब मध्यक सूर्य विदु **म॰** पर रहता है तब वास्तविक सूर्य **स॰** पर रहता है। जब तक मध्यक सूर्य **म॰** से **म** पर जाता है तब तक
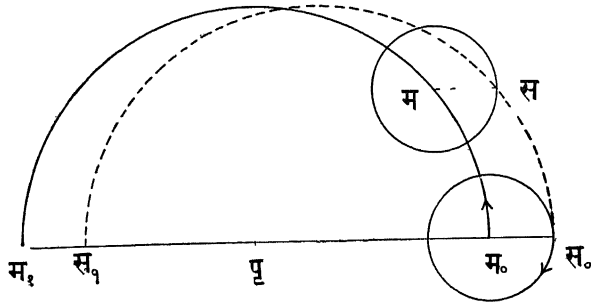
वास्तविक सूर्य विंदु **स** पर पहुँचता है, और जब मध्यक सूर्य **म१** पर पहुँचता ह तब वास्तविक सूर्य विदु **स१** पर पहुँचता है। इस प्रकार वास्तविक सूर्य कक्षा **स॰ स स१** पर चलता है। गणित से सिद्ध किया जा सकता है कि कक्षा **स॰ स स१** एक वृत्त है जो मध्यक सूर्य की कक्षा के ठीक बराबर है, परतु पृथ्वी कक्षा **स॰ स स१** के केद्र पर नही है। परिणाम यह होता है कि गणना के अनुसार सूर्य की दूरी जो निकलती है वह समय के अनुसार कभी कम, कभी अधिक रहती है और इसी प्रकार सूर्य की दैनिक कोणीय गति भी न्यूनाधिक निकलती है, और ये दोनो गणना-प्राप्त मान वास्तविक मान के प्राय- बराबर होते है।

[1] **अर्थात सूर्य की मध्यक स्थिति, अथवा वह कल्पित विंदु जो वास्तविक सूर्य के औसत कोणीय वेग से और औसत दूरी पर चलता है।**

मद-परिधि मे सूर्य के एक चक्कर लगाने का समय ठीक उतना ही माना जाता है जितने मे मध्यक सूर्य अपनी कक्षा मे एक चक्कर लगाता है, परतु चद्रमा के लिए दोनो के चक्कर लगाने का समय एक नही माना जाता। मगल आदि ग्रहो मे भी सूर्य की ही तरह मद-परिधि मे वास्तविक ग्रह के चक्कर लगाने का समय और मध्यक ग्रह के चक्कर लगाने का समय एक माना जाता है, परतु इन ग्रहो के लिए और भी काम करना पडता है, जो, कुछ कठिन होने के कारण, यहाँ नही समझाया जायगा।

टालमी से तुलना

जब सूर्य और चद्रमा की स्पष्ट स्थिति निकालने की रीति की तुलना टालमी की रीति से की जाती है तो कई बातो मे विभिन्नता दिखायी पडती है। चद्रमा का स्थान टालमी के अनुसार गणना करने पर कुछ अधिक सच्चा निकलता है। वर्तमान गणित से तुलना करने पर सूर्य-सिद्धात की रीति बहुत स्थूल है विशेष कर चद्रमा की स्पष्ट स्थिति जानने की रीति। वर्तमान रीति से चद्रमा की स्पष्ट स्थिति निकालने के लिए कई सौ सशोधन करने पडते है। ब्रिटिश तथा अन्य पाश्चात्य नाविक पचागो के लिए ब्राउन[1] की चद्र-सारणियो से काम लिया जाता है, जो दो बडे आकार के मोटे खडो मे छपा है, एक साल की चाद्र स्थितियो की गणना मे कई व्यक्ति पाँच-छ महीने तक गणना करते है, गणक-मशीनो की सहायता लेते है और वेध-प्राप्त बीज सस्कार करते है। इतना करने पर भी सूर्य-ग्रहण की गणना मे वास्तविकता से तुलना करने पर कुछ सेकड का अतर रह ही जाता है। इसलिए कोई आश्चर्य न होना चाहिए कि सूर्य-सिद्धात के अनुसार गणना करने पर घटे, दो घटे का अतर पड जाता है। सूर्य-ग्रहण की गणना के लिए सूर्य और चद्रमा की स्पष्ट स्थितियाँ सूक्ष्मता से ज्ञात रहनी चाहिए। सूर्य का स्थान तो प्राय ठीक ही ज्ञात रहता है। चद्रमा की स्थिति मे कुछ अनिश्चितता आधुनिक गणित मे भी रह जाती है। इसी से सूर्य-ग्रहण के लिए गणना-प्राप्त समय मे कुछ त्रुटि रह जाती है।

सूर्य-सिद्धात मे एक अन्य सूक्ष्मता भी लायी गयी है। मद-परिधि को सब स्थितियो मे एक ही व्यास का नही माना गया है। माना गया है कि इसका व्यास एक ओर अधिक रहता है, और जैसे-जैसे इसका केंद्र मध्यक ग्रह की कक्षा की दूसरी ओर पहुँचता है तैसे-तैसे इसका व्यास घट कर लघुतम हो जाता है।

[1] देखो गोरखप्रसाद. चंद्र-सारणी (काशी-नागरीप्रचारिणी सभा)।

ग्रहो की स्थितियो की गणना बताने के बाद इसकी गणना बतायी गयी है कि किसी दिन कौन-सी तिथि है यह कैसे जाना जाय। फिर करणो की गणना बतायी गयी है।[१]

त्रिप्रश्नाधिकार

त्रिप्रश्नाधिकार मे तीन विषयो पर विचार किया गया है दिशा, देश और काल (समय)। पहले तो शकु स्थापित करने के लिए आदेश है -

शकु।
शकु की पूर्वाह्ण और अपराह्ण छाया देख कर पूर्व-पश्चिम रेखा खीचो जाती थी।

जल के द्वारा शोध कर समतल किये हुए पत्थर के तल पर अथवा वज्रलेप (सुर्खी, चूने आदि के मिश्रण) से बने हुए समतल चबूतरे पर शकु के अनुसार इष्ट अगुल (अर्थात इच्छानुसार नाप) के व्यासार्ध का एक वृत्त खीचो। इस वृत्त के केंद्र मे बारह अगुल का एक शकु लब रूप मे स्थापित करो। इसकी छाया की नोक मध्याह्न के पहले और पीछे पूर्वोक्त वृत्त को जहाँ-जहाँ स्पर्श करे वहाँ-वहाँ वृत्त पर विंदु बना दो, इन दो विंदुओ को पूर्वाह्ण और अपराह्ण विंदु कहते है। फिर इन दो विदुओ के बीच मे तिमि द्वारा (अर्थात मछली की आकृति की ज्यामितीय रचना
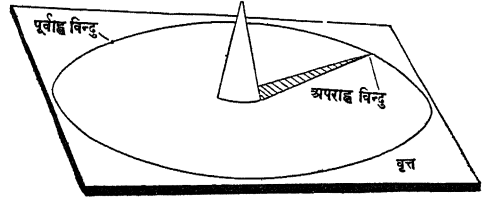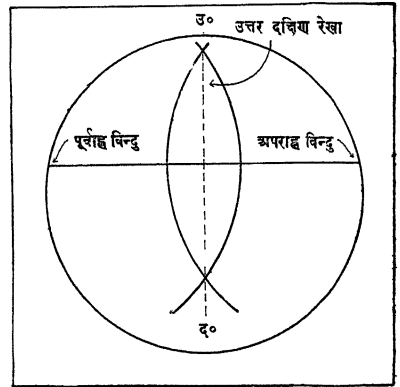
उत्तर-दक्षिण दिशा जानने की रीति।

[१] करण, योग आदि क्या है यह इस पुस्तक के अंतिम अध्याय में बताया गया है।

करके[१]) उत्तर-दक्षिण रेखा खीचो। उत्तर-दक्षिण दिशाओ के बीच मे तिमि द्वारा पूरब-पच्छिम रेखा खीचो।

यहॉ शकु की सब नाप नही बतायी गयी है।

भारतीय ज्यौतिष ग्रथो मे कही भी यत्रो का ब्योरेवार वर्णन नही है, परतु जान पडता है कि शकु उस समय एक महत्त्वपूर्ण यत्र माना जाता था। इसका वर्णन सूर्य-सिद्धात मे है ही। अन्यत्र भी इसका वर्णन मिलता है।

श्लोक ५ से ८ तक मे छाया सबधी परिभाषाएँ तथा आदेश है।

श्लोक ९ और १० मे एक अत्यत महत्त्वपूर्ण बात बतायी गयी है। कहा गया है

एक युग मे नक्षत्र-चक्र ६०० बार पूर्व की ओर लोलक की तरह आन्दोलन करता है। इस ६०० को इष्ट अहर्गण से गुणा करके महायुगीय सावन दिनो की सख्या से भाग देने पर जो आये उसका भुज बना कर भुज से ३ को गुणा करके १० से भाग दे दो। ऐसा करने से जो कुछ आये वही अयनाश कहलाता है। ग्रहो (अर्थात सूर्य, चद्रमा, मगल, आदि) के स्थानो मे इसका सस्कार देकर (जोड कर) ग्रहो की क्राति, छाया, चरदल, इत्यादि जानना चाहिए।"

अयन

इस श्लोक का महत्त्व यह है कि इसमे अयन की गणना बतायी गयी है। अयन को समझने के लिए ध्यान दे कि आकाश मे तारे, ग्रह, चद्रमा, सूर्य, सब पूर्व क्षितिज पर उदित होते है और मोटे हिसाब से २४ घटे मे एक चक्कर लगाकर दूसरे दिन फिर पूर्व क्षितिज पर पहुँच जाते है। आकाशीय पिंडों की यह दैनिक गति है। यदि आकाश को गोले से निरूपित किया जाय और इस
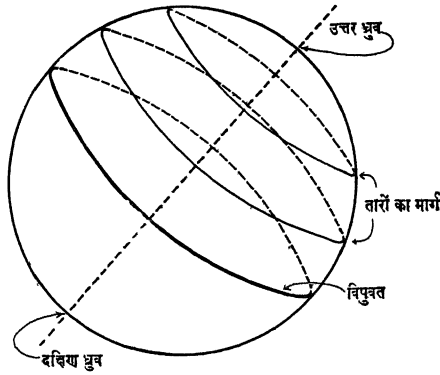
[१] यह वही रचना है जिससे दी हुई सरल रेखा पर लंब-अर्धक खड़ा किया जाता है।

पर तारो के दैनिक मार्ग अकित किये जायँ तो वे सब समानातर वृत्त होगे। इस गोले को हम खगोल कहेगे। खगोल के केंद्र से जो रेखा पूर्वोक्त सब वृत्तो के समतल पर लब खीची जा सकती है वही खगोल का अक्ष है। अक्ष खगोल को दो विंदुओ मे काटता है जिनमे से एक उत्तर ध्रुव है और दूसरा दक्षिण ध्रुव। इन दोनो ध्रुवो के ठीक मध्य मे रहने वाला खगोल पर खीचा गया वृत्त विषुवत कहलाता है।

हम खगोल पर सूर्य की स्थिति भी अकित कर सकते है। यदि हम शकु की छाया देखे तो हमे सूर्य की दिशा और उन्नताश (ऊँचाई) ज्ञात हो जाती है, और इससे खगोल पर सूर्य की स्थिति का पता चल जाता है। यदि हम प्रतिदिन मध्याह्न पर सूर्य की स्थिति ज्ञात करके उसे अपने खगोल पर अकित करे तो एक वर्ष मे ज्ञात होगा कि सूर्य एक वृत्त पर चलता है, जिसे हम रविमार्ग कहेगे। हम देखेगे कि रविमार्ग विषुवत को दो व्यास्त सम्मुख (अर्थात आमने-सामने के) विन्दुओ मे काटता है। इनमे एक वसंत विषुव विंदु (सक्षेपत वसत विषुव) है और दूसरा शरद विषुव विंदु।

खगोल।
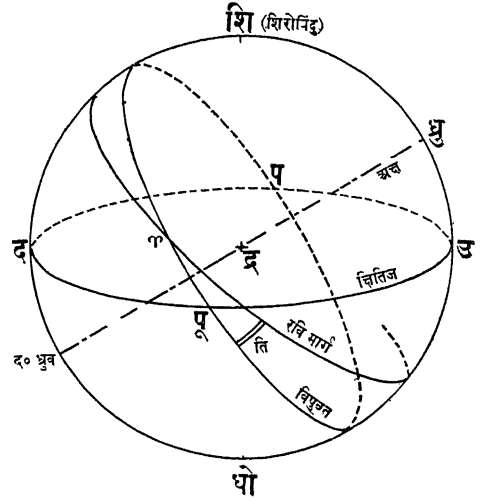
रविमार्ग विषुवत को लगभग २३½ अश के कोण पर काटता है।

यदि वसत विषुव विंदु का स्थान समय-समय पर खगोल पर अकित किया जाय तो पता चलेगा कि वसत विषुव (और इसलिए शरद विषुव भी) तारो के सापेक्ष धीरे-धीरे खिसकता रहता है। इसी को अयन कहते है। यह गति बडी ही धीमी है। एक चक्कर लगाने मे विषुव को लगभग २६,००० वर्ष लगता है।

अब गति-विज्ञान के नियमो से सिद्ध कर दिया गया है कि विषुव बराबर ही एक दिशा मे चलता रहेगा और समय पा कर चक्कर पूरा कर लेगा। परतु केवल वेध से बताना असभव है कि विषुव चक्कर लगायेगा या कुछ दूर जा कर लौट आयेगा। सूर्य-सिद्धात का मत है कि विषुव बराबर एक ही दिशा मे नही चलता, यह अपनी

औसत स्थिति के इधर-उधर दोलन किया करता है, जैसे तागे से लटका हुआ लगर।

सूर्य-सिद्धात मे जो बाते दी है उनसे यह परिणाम निकलता है कि विषुव एक वर्ष मे ५४ विकला चलता है। गणना से यह ज्ञात है कि सूर्य-सिद्धात के समय मे विषुव प्रति वर्ष ५० विकला ही चलता रहा होगा। इस प्रकार दोनो मे कुछ अतर है, परतु अयन का नापना इतना टेढा है कि आश्चर्य होता है कि कैसे इतनी सूक्ष्मता से इसे उस काल मे किसी ने नापा होगा। अयन का पता यवन (ग्रीक) ज्योतिषी हिपार्कस ने लगाया (पृष्ठ १२१ देखो) और उसने कहा कि अयन ३६ विकला प्रति वर्ष से कम न होगा। प्रसिद्ध टालमी ने अयन को अधिक सूक्ष्मता से नापने के बदले ३६ विकला प्रति सेकड को ही शुद्ध मान लिया। जिन लोगो की यह धारणा है कि ज्योतिष सबधी सब सूक्ष्म ज्ञान भारत मे ग्रीस से आया यह नही बता पाते कि भारतीयो ने अयन का इतना अच्छा मान कैसे प्राप्त किया। हम देख चुके है (पृष्ठ ५६) कि पहले कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर थी। क्या कोई पारपर्य था जिससे सूर्य-सिद्धात के समय के ज्योतिषी अनुमान कर सके कि शतपथ ब्राह्मण के काल से उस समय तक लगभग कितने वर्ष बीते थे और इस प्रकार अपने समय मे विषुव की स्थिति को देख कर वे गणना कर सके कि इतने वर्षो मे विषुव इतना चला तो एक वर्ष मे कितना चलता होगा? कम-से-कम इतना तो है कि सूर्य-सिद्धात के अनुसार विषुव इधर-उधर २७ अश तक दोलन करता है और कृत्तिका से सूर्य-सिद्धात के समय तक विषुव कुल २६$\frac{3}{4}$ अश चला था। बहुत संभव है कि २७ अश इसीलिए चुना गया हो, सिद्धातकार का विश्वास रहा होगा कि पुरानी स्थिति फिर आयेगी।

कुछ पाश्चात्यो को सदेह है, वे समझते है कि सयोगवश ही भारतीयो का पूर्वोक्त मान इतना सच्चा निकला।

क्या वसंत विषुव दोलन करता है?

हम देख चुके है कि वर्तमान सूर्य-सिद्धात मे और वराहमिहिर के समय मे उपलब्ध सूर्य-सिद्धात मे अतर है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सूर्य-सिद्धात के प्राचीन रूप मे भी अयन की चर्चा थी। ब्रह्मगुप्त ने अपने सिद्धान्त मे अयन की कोई चर्चा नही की है, यद्यपि वह वराहमिहिर के बहुत पीछे हुआ, और इसलिए प्राचीन सूर्य-सिद्धात के बहुत ही पीछे। इससे सभावना यही जान पडती है कि सूर्य-सिद्धात के प्राचीन पाठ मे अयन न रहा होगा। जब हम इस पर विचार करते है कि शकु की छाया वाले अध्याय में अयन बताने के बदले इसे प्रथम अध्याय मे बताना

अधिक उचित होता, और इस पर भी विचार करते है कि इस अध्याय के श्लोक ८ तक शकु-छाया सबधी बाते है और ग्यारहवे श्लोक से फिर छाया-सबधी बाते आरभ हो जाती है, तो सदेह की कुछ पुष्टि ही हो जाती है। भास्कराचार्य ने अपने ग्रथ सिद्धात-शिरोमणि मे यही लिखा है कि विषुव बराबर एक दिशा मे चलता रहता है, परतु उनके भाष्यकारो ने उस सिद्धात को ठीक नही माना, वे यही मानते थे कि विषुव दोलन करता है, और भारत से यह अशुद्ध सिद्धात अरब मे और वहाँ से प्रारभिक यूरोपीय ज्योतिष मे भी पहुँच गया[1]।

शंकु की छाया

बारहवे श्लोक मे उस दिन मध्याह्न काल के क्षण शकु-छाया पर विचार किया गया है जिस दिन सूर्य विषुवत पर रहता है। आगामी श्लोक मे शकु-छाया से स्थान का अक्षाश जानने की रीति बतायी गयी है। आगे चलकर बताया गया है कि मध्याह्न पर छाया नाप कर किस प्रकार सूर्य की क्राति नापी जा सकती है और उससे सूर्य के भोगाश की गणना की जा सकती है। इसी प्रकार के अन्य कई एक शकु और छाया से सबध रखने वाले प्रश्नो के लिए नियम दिये गये है। बयालिसवे श्लोक मे शकु की छाया की नोक का मार्ग खीचने की रीति बतायी गयी है। इस मार्ग को वृत्त मान लिया गया है, जो ठीक नही है। भास्कराचार्य ने भी स्वीकार किया ह कि यह नियम अशुद्ध है।

इसके बाद बताया गया है कि लका और इष्ट स्थान मे मेष आदि राशियो के उदयकाल की गणना किस प्रकार की जा सकती है। भारतीय ज्योतिष ग्रथो मे लका वह विदु है जहाँ उज्जैन की याम्योत्तर रेखा भूमध्य रेखा को काटती है। यह विदु श्रीलका (वर्तमान सीलोन) से दूर है। लग्न[2] जानने की रीति भी बतायी गयी है।

चद्रग्रहणाधिकार

चद्रग्रहणाधिकार नामक चौथे अध्याय के पहले श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य का व्यास ६५०० योजन है और चद्रमा का ४८० योजन। सूर्य-सिद्धात ने

[1] बरजेस, पृष्ठ ११९।

[2] इष्ट समय पर रविमार्ग का जो विदु क्षितिज पर रहता है वही उस समय का लग्न (अर्थात लगा हुआ विदु) कहलाता है।

प्रथम अध्याय मे ही बता दिया है कि पृथ्वी का व्यास १६०० योजन है । इस प्रकार चद्रमा का व्यास सूर्य-सिद्धात के अनुसार पृथ्वी के व्यास का ० ३३ है, वास्तविक नाप लगभग ० २७ है । इस प्रकार चद्रमा का व्यास सूर्य-सिद्धात मे एक प्रकार से बहुत शुद्ध है । परतु सूर्य का व्यास बहुत अशुद्ध है ।

चद्रमा के व्यास की नाप किस प्रकार प्राप्त की गयी थी इसकी चर्चा कही नही है । कोणीय व्यास का अनुमान तो रहा ही होगा । परतु इससे अनुरेख व्यास का पता तभी लग सकता है जब चद्रमा की दूरी ज्ञात हो । दूरी नापने के लिए आवश्यक है कि नापा जाय कि दो स्थानो से देखने पर चद्रमा की दिशाओ मे कितना अतर पडता है । प्रत्यक्ष है कि यह अतर जितना ही अधिक होगा चद्रमा की दूरी उतनी ही कम होगी, अतर जितना ही कम होगा, दूरी उतनी ही अधिक होगी । परतु दो स्थानो से चद्रमा की दिशाओ का अतर नापना सुगम नही है । इससे आश्चर्य होता है कि चद्रमा की दूरी कैसे नापी गयी होगी ।

सूर्य की दूरी नापी नही गयी है । एक सिद्धात पर उसकी दूरी की गणना कर ली गयी है । सिद्धान्त यह था कि सूर्य, चद्रमा, मगल आदि सब समान वेग से अतरिक्ष मे चलते है । परतु यह सिद्धात ठीक नही है । फलत, इसके आधार पर निकाली गयी सूर्य की दूरी भी अशुद्ध निकली और इसलिए सूर्य का व्यास भी । सूर्य-सिद्धात के अनुसार सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग चौगुना है । आधुनिक वेधो से पता चलता है कि सूर्य इससे कही अधिक बडा है—उसका व्यास पृथ्वी के व्यास के १०० गुने से भी कुछ अधिक है ।

पृथ्वी के अर्ध-व्यास के सम्मुख चद्रमा पर जो कोण बनेगा उसे चद्रमा का लबन कहते है । पृथ्वी से चद्रमा की दूरी घटती-बढती रहती है । इसी से लबन भी घटता-बढता रहता है । आधुनिक नापो के अनुसार इसका औसत मान लगभग ५७ कला है, और वास्तविक मान लगभग ६१ कला और ५४ कला के बीच घटता-बढता रहता है । सूर्य-सिद्धात ने चाद्र लबन को स्थिर माना है और उसका मान ५३$\frac{1}{3}$ कला लिया है । हिपार्कस ने चाद्र लबन को अपनी नापो के अनुसार ५७ कला माना था जो प्राय शुद्ध है । परतु हिपार्कस ने भी सूर्य की नाप बताने मे गलती की । उसके पहले अपनी नापो के आधार पर अरिस्टार्कस की धारणा थी कि सूर्य चद्रमा की अपेक्षा कुल १९ गुनी दूरी पर है । परतु यह मान बहुत ही अशुद्ध है । वस्तुत सूर्य चद्रमा की अपेक्षा लगभग ४०० गुनी दूरी पर है । परिणामत, हिपार्कस ने सूर्य का लबन ३ कला माना । सूर्य-सिद्धात ने सूर्य का लबन ४ सेकड माना । दोनो मान शुद्ध मान से बहुत अधिक है । शुद्ध मान लगभग $\frac{1}{3}$ कला है ।

इसके बाद चद्रग्रहणाधिकार मे सूर्य और चद्रमा के आभासी (कोणीय) व्यासो के जानने की रीति बतायी गयी है। तब यह बताया गया है कि चद्रमा की कक्षा के पास पृथ्वी की छाया कितनी बडी रहती है। सभी जानते है कि इसी छाया मे घुसने से चद्रग्रहण लगता है। चद्रमा को राहु और केतु के ग्रसने की बात तो जनता के सतोष के लिए पुराण आदि मे कह दी गयी है। सूर्य-सिद्धात के रचयिता को, तथा अन्य ज्योतिषियो को, ग्रहणो का ठीक कारण ज्ञात था और वे उसकी गणना भी कर सकते थे। नवॉ श्लोक यह है

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत् ।
भच्छाया प्राङमुखश्चद्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥

अर्थ—सूर्य के नीचे आ जाने पर चद्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है [इस प्रकार सूर्य-ग्रहण लगता है]। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चद्रमा भू छाया मे प्रवेश कर जाता है, इस प्रकार चद्रमा का ग्रहण लगता है।

इसके बाद निम्न बाते जानने के लिए नियम बताये गये है ग्रस्त भाग का परिमाण , सर्व-ग्रहण होगा, या खड-ग्रहण, या ग्रहण लगेगा ही नही, ग्रहण और सर्व-ग्रहण कितने समय तक रहेगा, ग्रहण का आरभ और अत कब होगा , सर्व-ग्रहण का आरभ और अत कब होगा, ज्ञात समय पर कितना भाग ग्रस्त रहता है, ज्ञातग्रास किस समय दिखायी पडेगा, ग्रहण का चित्र।

विषय के कठिन होने के कारण अधिक ब्योरा यहॉ देना उचित नही जान पडता।

सूर्यग्रहणाधिकार

इस अध्याय मे १७ श्लोको मे सूर्य-ग्रहण की गणना करने की रीति बतायी गयी है। बडी बुद्धिमत्ता से कई एक नियम बनाये गये है जो लगभग ठीक ह, परतु कुल मिलाकर इतने सशोधन छूट गये है कि अतिम परिणाम बेकार ही रह जाता है। बरजेस ने २६ मई, सन १८५४ के सूर्य-ग्रहण की गणना अमरीका के एक नगर के लिए अपने सहायक भारतीय पडित से सूर्य-सिद्धात के अनुसार कराकर प्रकाशित की है और गणना मे जहॉ कही अशुद्धता रह गयी थी उसका सशोधन भी कर दिया है। बडे पृष्ठो पर छोटे टाइप मे छापने पर भी गणना मे लगभग २१ पृष्ठ लगे है। अतिम परिणाम यह निकला है कि ऑख से देखे गये ग्रहण के समय और गणना द्वारा प्राप्त समय मे पौने दो घटे से अधिक का अतर पडता है। विज्ञान भाष्य मे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने उदाहरण स्वरूप काशी के लिए सवत १९८२ के माघ कृष्ण अमावस्या के सूर्य-ग्रहण की गणना सूर्य-सिद्धात के अनुसार की है। इस गणना मे लगभग ४० पृष्ठ लगे है। अतिम परिणाम यह निकला है कि ग्रास का

परिमाण लगभग २६ कला है, अर्थात सूर्य के व्यास का तीन-चौथाई से अधिक भाग छिप जाना चाहिए और सूर्य-ग्रहण ६ घडी ४४ पल (दो घटे से अधिक समय तक) लगा रहना चाहिए। परतु वास्तव मे यह ग्रहण लगा नही। काशी के जो लोग इस ग्रहण को देखने की चेष्टा मे थे उन्हे भी ग्रहण नही दिखायी पडा और आधुनिक गणना से भी सिद्ध हुआ कि ग्रहण नही दिखायी पडना चाहिए।

परिलेखाधिकार

सूर्य-सिद्धात के छठवे अध्याय का नाम परिलेखाधिकार है। किसी-किसी प्रति मे इसे छेद्यकाधिकार भी कहा गया है। दोनो का अर्थ एक है। इस अध्याय मे क्या है यह पहले श्लोक मे बताया गया है

"छेद्यक, परिलेख या चित्र के बिना सूर्य और चद्रमा के ग्रहणो के भेद का ठीक-ठीक ज्ञान नही होता कि बिब की किस दशा से ग्रहण का आरभ होगा, और किस दिशा से मोक्ष, तथा ग्रास कितना होगा। इसलिए छेद्यक बनाने का उत्तम ज्ञान मै कहता हूँ।"

इस अध्याय मे २४ श्लोक है। तेईसव श्लोक मे कोई गणित नही है। वह यो है .

अर्धादूने सधूम्र स्यात्कृष्णमर्धाधिक भवेत्।
विमुंचतः कृष्णताम्र कपिल सकलग्रहे ॥२३॥

अर्थ—जब चद्र-बिब का आधे से कम भाग ग्रस्त होता है तब ग्रस्त भाग का रग धुएँ की तरह होता है। आधे से अधिक ग्रस्त होने पर ग्रस्त भाग काला देख पडता है। जब चद्र-बिब का बहुत-सा भाग ग्रस्त हो जाता है और थोडा ही-सा बचा रहता है तब ग्रस्त भाग का रग साँवले ताँबे के रग का होता है। परतु सर्वग्रास ग्रहण का रग कत्थई (अथवा लोबान के रग का) होता है। [सूर्यग्रहण में सूर्य के ग्रस्त भाग का रग सदैव काला होता है।]

अतिम श्लोक रोचक है

रहस्यमेतद्देवाना न देयं यस्य कस्यचित्।
सुपरीक्षितशिष्याय देयं वत्सरवासिने ॥२४॥

अर्थ—परिलेख खीचने की विद्या देवताओ की गोप्य वस्तु है। यह विद्या ऐसे-वैसे आदमी को न बतानी चाहिए। अच्छी तरह परीक्षा किये हुए शिष्य को जो एक वर्ष तक साथ रह चुका हो यह विद्या बतानी चाहिए।

इसी से मै भी पाठक को परिलेख खीचने की विद्या नही बता रहा हूँ!

ग्रहयुत्यधिकार और नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार

सूर्य-सिद्धात का सातवॉ अध्याय ग्रहयुत्यधिकार है। इसमे बताया गया है कि ग्रह एक दूसरे के निकट कब और कहॉ देख पडते है और इनका शुभाशुभ फल क्या होता है। यह भी बताया गया है कि जब ग्रह सूर्य के पास आ जाता है तब कहा जाता है कि वह ग्रह अस्त हो गया है।

नक्षत्र ग्रहयुत्यधिकार नामक आठवे अध्याय के नाम का अर्थ है वह अध्याय जिसमे नक्षत्रो और ग्रहो की युति (अर्थात एक साथ होने) पर विचार किया गया है। परतु नक्षत्रो और ग्रहो की युति पर इस अध्याय मे केवल दो श्लोक (१४-१५) है और वहॉ इतना ही कहा गया है कि पूर्वगामी अध्याय की रीति से यहॉ भी गणना करो। इस अध्याय का महत्त्व इसमे है कि नक्षत्रो और कुछ विशेष तारो की स्थितियॉ इसमे दी गयी है। इसका उद्देश्य यह था कि नक्षत्रो और ग्रहो की युतियो की ठीक गणना हो सके, परतु हमारे लिए महत्त्व यह है कि इनसे हम सूर्य-सिद्धात के काल के विषय मे महत्त्वपूर्ण परिणाम निकाल सकते है।

तारो के निर्देशाक

तारो के निर्देशाक (अर्थात वे अक जिनसे तारो की स्थितियॉ बतायी जा सकतीं है) आधुनिक ज्योतिष मे दो प्रकार के ही अधिक उपयुक्त होते है। वे है (१) विषुवाश और क्राति, तथा (२) भोगाश और शर। मान ले साथ के चित्र मे **क** वसत विषुव है, **क ख** विषुवत है और रेखा **त थ** विदु **त** से विषुवत पर गिराया गया लब है। तो **क थ** को विषुवाश कहते है और **त थ** को क्राति।
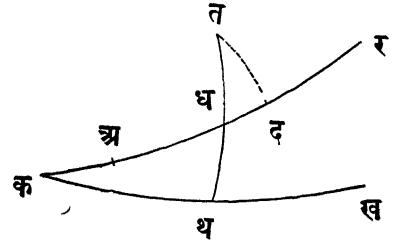
अब मान लो **क र** रविमार्ग है और रेखा **त द** विदु **त** से **क र** पर गिराया गया लब। तो **क द** भोगाश है और **त द** शर।

परतु सूर्य-सिद्धात मे ध्रुवक और विक्षेप का प्रयोग किया गया है, जिनकी परिभाषाएँ यो है :

मान लो रेखा **त थ** रविमार्ग **क र** को विंदु **ध** में काटता है और **अ** अश्विनी नक्षत्र का आदि विंदु है। तो **अ ध** ध्रुवक है और **त ध** विक्षेप।

यहाँ यह ध्यान मे रखना चाहिए कि ध्रुवक और विक्षेप को सूक्ष्मता से नापने की कोई रीति ज्ञात नही है। वस्तुत भोगाश और शर भी नही नापे जाते। आधुनिक ज्योतिष मे विषुवाश और क्राति ये दोनो ही नापे जाते है और तब, यदि आवश्यकता हुई तो, उनसे भोगाश और शर की गणना की जाती है। कारण यह है कि विषुवाश और क्राति विषुवत के सापेक्ष नापे जाते है जो आकाश मे स्थिर रहता है, इसलिए नाप सरल है और बहुत सूक्ष्मता से की जा सकती है, परतु भोगाश शर, ध्रुवक, आदि रविमार्ग के सापेक्ष नापे जाते है और रविमार्ग आकाश मे स्थिर नही रहता। चीन के प्राचीन ज्योतिषी भी विषुवाश और क्राति ही नापते थे, यद्यपि उस काल मे समय नापने के लिए जल-घटी से कोई अधिक अच्छा प्रबध नही था और विषुवाश नापने मे समय की सच्ची नाप की आवश्यकता पडती है।

ध्रुवक और विक्षेप की नाप

सूर्य-सिद्धात तथा अन्य भारतीय ग्रथो मे रविमार्ग को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। जैसा ऊपर की परिभाषाओ से स्पष्ट है, भोगाश और शर, अथवा ध्रुवक और विक्षेप, ये दोनो पद्धतियाँ रविमार्ग से सबधित है। पता नही कि सिद्धातकार इन्हे नापते थे, अथवा वे विषुवाश और क्राति नापकर ध्रुवक और विक्षेप गणना से निकालते थे। हम केवल अनुमान कर सकते है कि यदि वे इसे नापते थे तो बाँस की तीली या तार से बने गोले का वे प्रयोग करते रहे होगे। इस पर रविमार्ग तार या तागे से अकित रहता रहा होगा और वेध करने के पहले वे केद्र पर आँख लगा कर चमकीले तारो को देखकर खगोल की दिशा को ठीक करते रहे होगे। इसी यत्र से अज्ञात तारो के निर्देशाक वे नापते रहे होगे। बारहवे श्लोक के उत्तरार्ध से इसका सकेत भी मिलता है, जो यो है

गोलं बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटं ॥१२॥

अर्थ—गोल नामक यत्र बनाकर इन स्फुट (सशोधित) विक्षेपो और ध्रुवको की परीक्षा करनी चाहिए।

गोल यत्र के बनाने की रीति तेरहवे अध्याय मे दी गयी है। परतु वस्तुत यह ऐसा यत्र नही है जिससे दस कला तक तारो का स्थान नापा जा सके। कोई और रीति रही होगी, सभवत गणना।

योग तारे

सूर्य-सिद्धात मे तारो की स्थितियाँ बताने के लिए केवल सख्याएँ दी गयी है और उनके सबध मे निम्न आदेश दिया गया है .

प्रोच्यते लिप्तिका भानां स्वभोगोऽथ दशाहतः ।
भवन्त्यतीतधिष्ण्याना भोगलिप्तायुता ध्रुवाः ॥१॥

अर्थ—(अश्विनी आदि) तारो के जो भोग आगे बताये गये है उनको दस से गुणा करके गुणनफल को गत नक्षत्रो की भोग-कलाओ मे जोडने से जो आता है वही उन तारो के ध्रुवक[1] है।

यहाँ कला के लिए 'लिप्तिका' शब्द का प्रयोग किया गया है, जो प्राचीन सस्कृत शब्द नही है, ग्रीक λεπτου (लेप्टन) से लिया गया जान पडता है।

ऊपर के आदेश को समझने के लिए ध्यान देना चाहिए कि रविमार्ग को सत्ताइस बराबर भागो मे बाँटा जाता था और प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा जाता था। प्रत्येक भाग का नाम भी था और वही नाम उस तारका-पुज (तारो के छोटे समूह) का भी था जो उस भाग मे पडता था। प्रत्येक तारका-पुंज मे से कोई एक प्रमुख तारा चुन लिया जाता था जो उस नक्षत्र का योग-तारा कहलाता था। अवश्य ही, योग-तारा नक्षत्र (रविमार्ग के सताइसवे भाग) के ठीक आरभ पर नही पडता था। सूर्य-सिद्धात मे यह बताया गया है कि योग-तारा नक्षत्र के आदि विदु से कितनीदूरी पर है। दूरी को कलाओ मे बताने के बदले दस कलाओ की एकाई लेकर बताया गया है जिसमे बडी सख्याओ का प्रयोग न करना पडे। इन सख्याओ से योग-तारों के ध्रुवक ज्ञात होते है, आगे चलकर उनके विक्षेप भी बताये गये है। फिर कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तारो के भी ध्रुवक और विक्षेप बताये गये है।

सूर्य-सिद्धात का काल

एक बात सूर्य-सिद्धात से पता नही चलता कि सूर्य-सिद्धात के समय इन योग तारो के सापेक्ष, वसत विषुव कहाँ था। परतु इन योग-तारो की स्थितियो से अश्विनी नक्षत्र के आदि विदु का पता लग जाता है। प्रत्येक तारे से अलग-अलग गणना करने पर परिणाम भिन्न-भिन्न मिलते है, परतु उनका औसत लिया जा सकता है और औसत मान को सच्चा समझा जा सकता है। अब यदि हम यह कल्पना करे कि अश्विनी का आदि विदु सूर्य-सिद्धात के समय ठीक वसत विषुव पर था, तो हम सूर्य-सिद्धात का समय ज्ञात कर सकते है, क्योकि वसत विषुव की वर्तमान स्थिति ज्ञात है और उसकी वार्षिक गति भी ज्ञात है।

[1] ध्रुवक को ध्रुव भी कहते थे; श्लोक में ध्रुव ही है; परंतु भ्रम से बचने के लिए सदा ध्रुवक शब्द का प्रयोग ही अधिक अच्छा है।

डाक्टर मेघनाथ साहा[1] ने अपने आचार्य श्री प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की तरह योग-तारो को, उनके सूर्य-सिद्धात वाले और वर्तमान भोगाशो के अतर के न्यूनाधिक होने के अनुसार तीन समूहो मे बाँटा है और उनका विश्वास है कि एक समूह के योग-तारो की नापे उस समय की है जब सूर्य-सिद्धात प्रथम बार रचा गया, दूसरे समूह के योग-तारो की नापे उस समय की है जब प्रथम बार उसमे सशोधन किया गया और तीसरे समूह की नापे उस समय की है जब उसमे अतिम बार सशोधन किया गया। परतु सूर्य-सिद्धात वाले और वर्तमान भोगाशो के अतर अपने औसत से निम्न प्रकार विभिन्न है[2]

+२° १६′	+०° ३७′	—०° ३३′
+२ १२	+० २५	—१ १
+१ ४०	+० २१	—१ १०
+१ ३३	+० १६	—१ २०
+१ २०	+० ९	—१ २७
+१ १८	+० ६	—१ ४३
+० ५८	+० ०	—२ ७
+० ५६	—० ५	—२ २०
+० ३८	—० ३१	—२ ३२

इन त्रुटियो के देखने से ऐसा नही जान पडता कि बिना कृत्रिमता लाये उनको तीन समूहो मे पृथक किया जा सकता है; त्रुटियो को मान के क्रम मे रखने पर वे लगातार (धीरे-धीरे) बढती है। सभवत सूर्य-सिद्धात के रचयिता के नापने की रीति इतनी स्थूल थी कि ये त्रुटियाँ अपने-आप हो गयी।

साथ की सारणी मे सूर्य-सिद्धात के अनुसार योग-तारों के निर्देशाक दिये गये है और उनकी तुलना आधुनिक मानो से की गयी है[3]।

इन आँकडो से सूर्य-सिद्धात का औसत काल लगभग ५०० ई० आता है।

[1] देखें: रिपोर्ट ऑव दि कैलेंडर रिफॉर्म कमिटी, भारत सरकार; (प्रकाशक, काउसिल ऑव सायटिफिक ऐंड इडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली) १९५५, पृष्ठ २६३।

[2] इनमें चार योग-तारो को सम्मिलित नहीं किया गया है, क्योकि उनकी पहचान ठीक से नहीं हो पायी है, और अतर बहुत है। अन्य तारो के लिए अतर, नक्षत्रो के क्रम में नही, मान के क्रम में यहाँ दिखाये गये है।

[3] देखें: पूर्वोक्त रिपोर्ट, पृष्ठ २६४।

इति० ११

सारणी—सूर्य-सिद्धांत के नक्षत्र

क्रम संख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० मे भोगाश भो	१९५० मे शर श	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगाश भो॰ (सूर्य-सि० से परिगणित)	शर श॰ (सूर्य॰सि॰ से परिगणित)	भो—भो॰	श—श॰
१	अश्विनी	β मेष	२ ७२	३३°१६′	+ ८°२९′	८° ०′	+१०° ०′	१२° ०′	+ ९° १०′	+२१°१६′	—०° ४१′
२	भरणी	४१ मेष	३·६८	४७ ३०	+१० २७	२० ०	+१२ ०	२४ ३७	+११ ५	२२ ५३	—० ३८
	,,	३५ मेष	४ ५८	४६ १४	+११ १९	२० ०	+१२ ०	२४ ३७	+११ ५	२१ ३७	+० १४
३	कृत्तिका	η वृष	२ ९६	५९ १८	+ ४ ३	३७ ३०	+ ५ ०	३९ ८	+ ४ ४३	२० १०	—० ४०
४	रोहिणी	α वृष	१ ०६	६९ ५	— ५ २८	४९ ३०	— ५ ०	४८ ८	— ४ ४९	२० ५७	—० ३९
५	मृगशिरा	λ वृष	३ ७०	८३ १	—१३ २३	६३ ०	—१० ०	६१ २	— ९ ४९	२१ ५९	—३ ३४
६	आर्द्रा	α मृग	० ६†	८८ ३	—१६ २	६७ २०	— ९ ०	६५ ४९	— ८ ५२	२२ १४	—७ १०
७	पुनर्वसु	β मिथुन	१ २१	११२ ३२	+ ६ ४१	९३ ०	+ ६ ०	९२ ५२	+ ६ ०	१९ ४०	+० ४१
८	पुष्य	δ कर्क	४ १७	१२८ १	+ ० ५	१०६ ०	० ०	१०६ ०	० ०	२२ १	+० ५
९	आश्लेषा	α कर्क	४ २७	१३२ ५७	— ५ ५	१०९ ०	— ७ ०	११० ०	— ६ ५६	२२ ५७	+१ ५१
	,,	ϵ वासुकी	३·४८	१३१ ३९	—११ ६	१०९ ०	— ७ ०	११० ०	— ६ ५६	२१ ३९	—४ १०
१०	मघा	α सिंह	१ ३४	१४९ ८	+ ० २८	१२९ ०	० ०	१२९ ०	० ०	२० ८	+० २८

क्रम सख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० मे भोगाश भो	१९५० मे शर श	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगाश भो॰ (सू०-सि० से परिगणित)	शर श॰ (सू०-सि० से परिगणित)	भो — भो॰	श — श॰
११	पूर्वाफाल्गुनी	δ सिह	२ ५८	१६०°३७′	+१४°२०′	१४४° ०′	+१२° ०′	१३९° ५६′	+११° १८′	२०°४१′	+३° २′
१२	उ० फाल्गुनी	β सिह	२ २३	१७० ५५	+१२ १६	१५५ ०	+१३ ०	१५० ८	+१२ ४		+० १२
१३	हस्त	δ काक	३ ११	१९२ ४५	—१२ ११	१७० ०	—११ ०	१७४ २४	—१० ६	+१८ २१	—२ ५
१४	चित्रा	α कन्या	१ २१	२०३ ९	— २ ३	१८० ०	— २ ०	१८० ४८	— १ ५०	२२ २१	—० १३
१५	स्वाती	α भूतप	० २४	२०३ ३२	+३० ४६	१९९ ०	+३७ ०	१८२ ५६	+३३ ४७	२० ३६	—३ १
१६	विशाखा*	α तुला	२ ९०	२२४ २३	+ ० २०	२१३ ०	— १ ३०	२१३ ३१	— १ २४	१० ५२	+१ ४४
	विशाखा*	ι तुला	४ ६६	२३० १८	— १ ५१	२१३ ०	— १ ३०	२१३ ३१	— १ २४	१६ ४७	—० २७
१७	अनुराधा*	δ वृश्चिक	२ ५४	२४१ ५२	— १ ५९	२२४ ०	— ३ ०	२२४ ५४	— २ ५२	१६ ५८	+० ५३
१८	ज्येष्ठा	α वृश्चिक	१·२२	२४९ ४	— ४ ३४	२२९ ०	— ४ ०	२३० ६	— ३ ५१	१८ ५८	—० ४३
१९	मूल	λ वृश्चिक	१·७१	२६३ ५३	—१३ ४७	२४१ ०	— ९ ०	२४२ ५३	— ८ ४८	२१ ०	—४ ५९
२०	पूर्वाषाढा	δ धनु	२ ८४	२७३ ५३	— ६ २८	२५४ ०	— ५ ३०	२५४ ३९	— ५ २८	१९ १४	—१ ०
२१	उत्तराषाढा	σ धनु	२ १४	२८१ ४१	— ३ २७	२६० ०	— ५ ०	२६० २३	— ४ ५९	२१ १८	+१ ३२

क्रम संख्या	नक्षत्र-नाम	योग-तारा	श्रेणी	१९५० मे भोगाश **भो**	१९५० मे शर **श**	ध्रुवक (सूर्य-सि०)	विक्षेप (सूर्य-सि०)	भोगाश भो॰ (सू०-सि०से परिगणित)	शर श॰ (सू०-सि० से परिगणित)	**भो—भो॰**	**श—श॰**
२२	श्रवण	α गरुड	० ८९	३०१° ४′	+२९°१८′	२८०° ०′	+३०° ०′	२८२°३०′	+२९°५४′	१८°३४′	— ०°३६′
२३	धनिष्ठा	β उलूपी	३ ७२	३१५ ३९	+३१ ५५	२९० ०	+३६ ०	२९६ ८	+३५ ३३	१९ ३१	— ३ ३८
२४	शतभिषज	λ कुंभ	३ ८४	३४० ५३	— ० २३	३२० ०	— ० ३०	३१९ ५१	— ० २८	२१ २	+ ० ५
२५	पूर्वा भाद्रपदा	α उच्चैश्रवा	२ ५७	३५२ ४७	+१९ २४	३२६ ०	+२४ ०	३३४ ३८	+२२ २९	१८ ९	— ३ ५
२६	उत्तराभाद्रपदा	γ उच्चैश्रवा	२ ८७	८ २८	+१२ ३६	३३७ ०	+२६ ०	३४७ १९	+२४ ०	२१ ९	—११ २४
	उ०भाद्रपदा*	α देवयानी	२ १५	१३ ३७	+२५ ४१	३३७ ०	+२६ ०	३४७ १९	+२४ ०	२६ १८	+ १ ४१
२७	रेवती	ζ मीन	५·५७	१९ ११	— ० १३	३५९५०	० ०	३५९ ५०	० ०	+१९ २१	— ० १३

* पहचान संदिग्ध ।

† प्रकाश घटता-बढ़ता है ।

अन्य अध्याय

सूर्य-सिद्धात के नवे अध्याय का नाम है उदयास्ताधिकार। इसमे बताया गया है कि सूर्य के निकट जाने के कारण ग्रह कब अस्त और कब उदित होते है और इसकी गणना कैसे की जाय। यह भी बताया गया है कि अभिजित, ब्रह्महृदय, स्वाती श्रविष्ठा और उत्तरभाद्रपद कभी अस्त नही होते क्योकि वे बहुत उत्तर मे है। चद्रमा का उदय और अस्त आगामी अध्याय मे बताया गया है जिसका नाम है शृगोन्नत्यधिकार। उसमे बताया गया है कि जब चद्रमा सूर्य से १२ अश से कम दूरी पर रहता है तो अदृश्य रहता है। यह भी बताया गया है कि चद्रमा के शृगो (नोको) की स्थितियो की गणना किस प्रकार की जा सकती है। ग्यारहवे अध्याय का नाम पाताधिकार है। पात शब्द प्राय विपत्ति के अर्थ मे प्रयोग किया गया है। जब सूर्य और चद्रमा की क्रातियॉ बराबर होती है तब विशेष विपत्ति की आशका समझ कर उसे व्यतीपात (बडी विपत्ति) कहा गया है। यह भी बताया गया है कि ऐसे अवसरो की गणना कैसे करनी चाहिए, और इस अध्याय के विषयो मे से इतना ही गणित ज्योतिष से सबध रखता है।

आगामी अध्याय भूगोलाध्याय है। आरभ के श्लोको मे वे प्रश्न है जिनका उत्तर पुस्तक के शेष अध्यायो मे है। इन श्लोको का अर्थ नीचे दिया जाता है। एक बात विचित्र है कि इस अध्याय को अन्य अध्यायो की तरह 'अधिकार' न कह कर 'अध्याय' ही कहा गया है और आगामी दो अध्यायो को भी अध्याय कहा गया है.

(१) इसके उपरात मयासुर ने सूर्य के अश से उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोड कर प्रणाम करके और बडी भक्ति से पूजा करके यह पूछा (२) हे भगवान, इस पृथ्वी का परिणाम क्या है? इसका आकार कैसा है और यह किसके आधार पर है? इसके कितने विभाग है और इसमे सात पातालो की भूमि कैसे स्थित है? (३) सूर्य अहोरात्र की व्यवस्था कैसे करते है और भुवनो को प्रकाशित करते हुए पृथ्वी के चारो ओर कैसे घूमते है? (४) देवताओ और असुरो के दिन-रात एक दूसरे के विपरीत क्यो होते है और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है? (५) पितरो का दिन-रात एक मास का और मनुष्यो का ६० घडियो का क्यो होता है? सब जगह एक ही प्रकार के दिन-रात क्यो नही होते? (६) दिन, वर्ष, मास और होरा (घटा) के स्वामी समान क्यो नही होते? ग्रहों के साथ नक्षत्र-मडल कैसे घूमता है और इसका आधार क्या है? (७) ग्रहो और नक्षत्रो की कक्षाएँ पृथ्वी से ऊपर कितनी-कितनी ऊँचाई पर तथा परस्पर कितने अन्तर

पर है ? इनके मान क्या है और ये किस क्रम से स्थित है ? (८) ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणे बहुत तीव्र क्यो होती है और हेमन्त ऋतु मे वैसी क्यो नही होती ? ये किरणे कितनी दूर तक जाती है, सौर, चद्र आदि मान कितने है और इनसे क्या प्रयोजन निकलता है ? (९) हे भूतभावन भगवन, मेरी इन शकाओ को दूर कीजिए, क्योकि आप सर्वज्ञ है, इसलिए आप के सिवा दूसरा मनुष्य मेरी शकाओ को नही दूर कर सकता। (१०) भक्ति से कहे हुए मयासुर के इन वचनो को सुनकर सूर्याश पुरुष ने उससे फिर पहले के रहस्य स्वरूप दूसरा अध्याय कहा। (११) एकाग्रचित्त होकर यह अध्यात्म नामक तत्त्व सुनो जिसे मै कहता हूँ, क्योकि भक्तो के लिए मैं कोई वस्तु अदेय नही समझता।

इन प्रश्नो का उत्तर तो दिया ही गया है, ऊपर से पहले सृष्टि की कथा भी बतायी गयी है। यह कथा "वेदात, साख्य, श्रीमद्भागवत आदि मे बताये गये सृष्टि-क्रम का मिश्रण है"[1]। मयासुर के प्रश्नो का जो उत्तर दिया गया है वह स्पष्ट और शुद्ध है। उनका समझना विशेष कठिन भी नही है, परतु स्थानाभाव से यहाँ नही दिया जा सकता। केवल एक-दो श्लोक यहाँ उदाहरण-स्वरूप दे देना पर्याप्त होगा

अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम् ।
भद्राश्वकेतुमालस्था लंकासिद्धपुराश्रिता. ॥ ५२ ॥
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम् ।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्व वाप्यध॰ ॥ ५३ ॥

अर्थ—वे भी जो एक ही व्यास पर रहते है एक दूसरे के बारे मे सोचते हैं कि दूसरा हमारे नीचे है, जैसे भद्राश्व के लोग केतुमाल वालो को, और लका के लोग सिद्धपुर वालो को, और इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने ही स्थान को ऊपर स्थित मानते है, परतु पृथ्वी तो अतरिक्ष मे एक गोला है, इसलिए उसका ऊपर कहाँ है और नीचे कहाँ है ?

ज्योतिषोपनिषदध्याय

सूर्य-सिद्धात के तेरहवे अध्याय का नाम ज्योतिषोपनिषदध्याय है। इसमें बताया गया है कि ज्यौतिष यत्रो को कैसे बनाना चाहिए। इन यत्रो के बारे मे इतना कम ब्योरा है कि ठीक पता नही चलता कि रचयिता के काल मे भी ऐसे यत्र बन पाये

[1] विज्ञान-भाष्य, पृष्ठ १०४१।

थे या नही। चूँकि विषय महत्त्वपूर्ण और साथ ही रोचक है, इसलिए कुछ चुने हुए श्लोको का अर्थ नीचे दिया जाता है

"लकडी का अभीष्ट नाप का एक गोला बनाकर इसमे छेद करके एक डडा कस देना चाहिए जो उस काठ के गोले के केद्र से होकर जाय और दोनो ओर निकला रहे और धुरी का काम करे। इसी दड मे दो आधार-वृत्त बाँधो, जिनके बीच मे विषुवत-वृत्त हो। इन तीनो वृत्तो मे से प्रत्येक को ३६० अशो मे बाँट दो।"

गोल बाँधने की रीती।

इसके बाद अनेक वृत्त बाँधने का आदेश है। इन वृत्तो से ज्योतिष की बाते समझने मे सहायता मिल सकती है, वेध मे नही। वस्तुत ऊपर बताये गये यत्र से वेध किया ही नही जा सकता, क्योकि बीच मे काठ के गोले के कारण (जो पृथ्वी को निरूपित करता है) वहाँ न तो आँख लगायी जा सकती है, और न किसी व्यास के अत मे आँख लगा कर व्यास की सीध मे कोई आकाशीय पिड देखा जा सकता है। फिर इतने वृत्त इस यत्र मे बाँधने के लिए बताये गये है कि पूर्णतया सच्चा यत्र कभी बन ही न पाता रहा होगा। वृत्त किस पदार्थ का बने यह यहाँ नही बताया गया है, परतु अन्य पुस्तको मे बाँस की तीली के प्रयोग के लिए आदेश है।
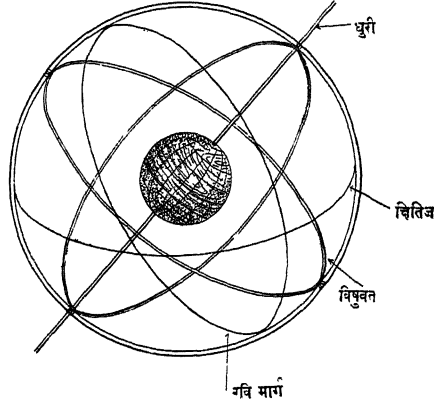
"काठ के गोले पर अपने स्थान को सबसे ऊँचा करो, फिर खगोल के मध्य में क्षितिज वृत्त बाँधो, नीचे वाले आधे को कपडे से ढक दो (परतु यह कपडा खगोल को छूने न पाये), फिर जल-प्रवाह द्वारा ऐसा प्रबध करो कि (यत्र समान वेग से बराबर घूमता रह कर) नाक्षत्र समय सूचित करे[1], अथवा इस यत्र को पारे के सयोग से ऐसा बनाओ कि यह अपने-आप घूमे। इसको गुप्त रखना चाहिए, स्पष्ट बता देने से सबको भेद ज्ञात हो जायगा।"[2]

[1] **केवल बाहरी ढाँचे को घुमाना चाहिए, भीतरी काठ के गोले को नहीं।**

[2] **आरभ की पक्तियाँ शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद नहीं है, लेखक का अभिप्राय क्या रहा होगा यह यहाँ बताया गया है।**

इसे पढने से सदेह होने लगता है कि यत्र का बनाना सिद्धातकार स्वय नही जानता था। यदि यत्र पारे से चल सकता तो पारे से चलने वाली घडियाँ भी बन सकती, परन्तु समय नापने के लिए सरल नाडिका यत्र का ही वर्णन किया गया है, जो आगे दिया गया है।

"शकु, यष्टि, धनु और चक्र नामक अनेक प्रकार के छाया-यत्रो के द्वारा चतुर और परिश्रमी मनुष्य गुरू के उपदेश से काल का ज्ञान प्राप्त करते है। कपाल आदि जल यत्रो से, और मयूर, नर तथा वानर यत्रो से, जिनके पेट मे बालू रहती है और जिनमे सूत्र (तागा) रहता है, समय का ठीक ज्ञान किया जा सकता है। पारे की चक्की, पानी, तागा, रस्सी, तेल और पानी, तथा पारा और बालू का इनमे प्रयोग होता है, परतु यह भी कठिन है।"

"ताँबे का कटोरा, जिसके पेदे मे छेद हो और जो निर्मल जल के कुड मे रखने से दिन-रात मे ६० बार डूबे, शुद्ध कपाल यत्र होता है"।

अतिम श्लोक यह है

ग्रहनक्षत्रचरित ज्ञात्वा गोल च तत्वतः।
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान् नरः॥ २५॥

अर्थ—ग्रह और नक्षत्रो की चाल तथा गोल गणित के तत्त्व को जानने वाला मनुष्य ग्रह लोक को प्राप्त होता है और जन्मातर मे आत्म-ज्ञानी होता है।

अतिम अध्याय

सूर्य-सिद्धात के अतिम अध्याय का नाम है मानाध्याय। इसमे समय की विविध एकाइयो और विविध प्रकार के समयो की (उदाहरणत, सौर, सावन, चाद्र और नक्षत्र समयो की) चर्चा है। अयन, सक्राति, उत्तरायण, दक्षिणायन, ऋतु, तिथि, पक्ष, महीनो के नाम, आदि का भी विवेचन है। बताया गया है कि सावन दिन सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय तक के समय को कहते है।

अतिम दो श्लोको मे बताया गया है कि किस प्रकार ऋषियो ने मय से ज्योतिष विद्या सीखी।

रचना-काल

सूर्य-सिद्धात मे ठीक ५०० श्लोक है और पाठ वह है जिसे रगनाथ ने स्थिर किया और जिसपर उन्होने भाष्य लिखा। कई स्थानो मे नवीन पक्तियाँ जोडे जाने के

चिह्न है और सभव है कि कही-कही कुछ पक्तियाँ छोड भी दी गयी हो। किसी को इसमे सदेह नही है कि प्रचलित सूर्य-सिद्धात प्राचीनतम सूर्य-सिद्धात से कुछ भिन्न है। पचसिद्धातिका और वर्तमान सूर्य-सिद्धात के स्थिराको की तुलना ही इसके लिए पर्याप्त है। रगनाथ का समय १६०३ ई० है और उसके बाद सूर्य-सिद्धात मे क्षेपक मिलाना असभव हो गया। प्रोफेसर प्रबोधचद्र सेनगुप्त[1] का मत है कि सूर्य-सिद्धात मे कई विभिन्न समयो की रचनाएँ मिली हुई है। प्राचीनतम लगभग ४०० ई० की है और नूतनतम सभवत ग्यारहवी शताब्दी के अत की। उनका कहना है कि निम्न तीन अवस्थाएँ स्पष्ट रूप से दिखायी पडती है

(१) वराहमिहिर के पहले की पुस्तक,

(२) वराहमिहिर का सस्करण, जिसमे मद-परिधि का सिद्धात भी है,

(३) वराहमिहिर के बाद वाले परिवर्तन और क्षेपक।

उनके अनुसार इन अवस्थाओ के प्रमाण के लिए स्थिराको की तुलना पर्याप्त है। वराहमिहिर के बताये सूर्य-सिद्धात के स्थिराक वे ही है जो ब्रह्मगुप्त के खड-खाद्यक मे है, परतु आधुनिक सूर्य-सिद्धात मे महायुगीय भगणो मे निम्नलिखित परिवर्तन कर दिये गये है

मगल, +८ भगण, शनि, +४ भगण, चाद्र उच्च, —१६ भगण, शुक्र, —१२ भगण, बुध, +६० भगण, चाद्र पात, +१२ भगण।

इससे स्पष्ट है कि वराहमिहिर के बाद सूर्य-सिद्धात मे परिवर्तन हुए। आधुनिक सूर्य-सिद्धात मे उच्चो के भोगाश भी ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के अधिक निकट है, यद्यपि प्राचीन सूर्य-सिद्धात मे ये स्थिराक खडखाद्यक से ठीक-ठीक मिलते है। इसलिए सेनगुप्त का विचार है कि (१) वराहमिहिर के पहले एक सूर्य-सिद्धात था जिसको वराह ने बदल कर खडखाद्यक के अनुसार कर दिया और (२) वराह के अको को बदल कर पीछे किसी ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के अनुसार कर दिया, (३) स्थिराक ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के स्थिराको के निकट अवश्य है, परतु ठीक-ठीक वही नही है, इसलिए किसी ने उनमे फिर सूक्ष्म सशोधन कर दिया। बेटली का कहना है कि सूर्य-सिद्धात के ब्राह्मस्फुट-सिद्धात वाले स्थिराको मे सोलहवी शताब्दी ई० मे सशोधन (बीज-सस्कार) किया गया, क्योकि आधुनिक सूर्य-सिद्धात और आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार गणना करने पर चद्रमा, मगल आदि की स्थितियो की त्रुटियाँ

[1] **सूर्य-सिद्धांत के बरजेस कृत अनुवाद में प्रबोधचद्र सेनगुप्त की भूमिका (कलकत्ता विश्वविद्यालय), १९५३।**

लगभग १५४० मे न्यूनतम निकलती है। दीक्षित का मत है कि ये सस्कार मकरद-सारणी के रचयिता द्वारा किये गये होगे[1]।

बरजेस का मत

बरजेस और सेनगुप्त दोनो का मत है कि सूर्य-सिद्धात के द्वितीय अध्याय के प्रारभिक श्लोक, जो यह बताते है कि रविमार्ग मे शीघ्रोच्च, मदोच्च और पातो पर अदृश्य प्राणियाँ है जो ग्रहो के सम वेग को विचलित कर देते है, पुस्तक के प्राचीनतम सस्करण के अवशेष है। पीछे के सिद्धात मे तो यह था कि ग्रह मद-परिधि मे चलता है और इस मद-परिधि का केद्र प्रधान वृत्त पर चलता है। यद्यपि यह तर्क बहुत दृढ नही है, क्योकि द्वितीय सिद्धात तो केवल गणना की सुगमता के लिए कल्पना-मात्र है और उसका प्रथम सिद्धात के प्रतिकूल माना जाना आवश्यक नही है, तो भी बात ठीक हो सकती है।

सेनगुप्त ने दिखाया है कि आधुनिक सूर्य-सिद्धात की कई एक रीतियाँ प्रथम आर्यभट या ब्रह्मगुप्त की रीतियो से मिलती है। इसलिए उनकी धारणा है कि, सूर्य-सिद्धात मे परिवर्तन ब्रह्मगुप्त के बाद तक होते रहे। चूँकि उन्होने यह सिद्ध करने की चेष्टा ही नही की है कि सूर्य-सिद्धात मे इन रीतियो का पहले से रहना और दूसरो का उनकी नकल करना असभव है, उनकी बात विशेष जँचती नही।

फिर सूर्य-सिद्धात के अध्याय ८ मे दिये गये योग-तारो के भोगाशो की तुलना आधुनिक मानो से तथा ब्रह्मगुप्त के मानो से करके सेनगुप्त ने यह दिखाने को चेष्टा की है कि अयन के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ तारो के भोगाश लगभग ४०० ई० के नपे है। सोलह भोगाश ब्रह्मगुप्त के मानो से बहुत मिलते-जुलते है, सेनगुप्त का कहना है कि वे ब्राह्मस्फुट-सिद्धात से लिये गये होगे, जिसका समय ६२८ ई० है, और पाँच तारो के भोगाश बाद के है, ये लगभग ७ २० ई० के होगे। इस प्रकार सेनगुप्त इस परिणाम पर पहुँचे है कि सूर्य-सिद्धात का मूल पाठ लगभग सन ४०० ई० मे लिखा गया और उसमे ११०० ई० तक परिवर्तन होते रहे।

मेनगुप्त का कहना है कि सूर्य-सिद्धात ४०० ई० के बहुत पहले न लिखा गया होगा, क्योकि कौटिल्य अर्थ-शास्त्र (लगभग ३०० ई० पू०), सूर्य-प्रज्ञप्ति (लगभग २०० ई० पू०) और पितामह-सिद्धात (जिसका साराश पचसिद्धातिका मे है और जिसकी गणना का आरभिक वर्ष ८० ई० है), इन सबमे बहुत स्थूल ज्योतिष है।

[1] दीक्षित · भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ १८४।

इस प्रकार केवल १०० ई० से ४०० ई० का समय बच रहता है और इसी मे बाबुल और यूनान (ग्रीस) से अधिक सूक्ष्म ज्योतिष का ज्ञान जो कुछ भी आया हो आया होगा ।

जैसा हम देख चुके है (पृष्ठ १४३), सूर्य-सिद्धात मे अयन की चर्चा है, परतु आर्य-भटीय मे, और ब्राह्मस्फुट-सिद्धात (६२८ ई०) मे भी इसकी चर्चा नही है । सूर्य-सिद्धात और आर्यभटीय मे इतनी समानता है कि मुनीश्वर (१६४६ ई०) का मत था कि प्रथम आर्यभट ही सूर्य-सिद्धात के भी रचयिता थे। परतु कुछ ऐसी विभिन्नताएँ भी है कि इसे ठीक मानना उचित नही जान पडता ।

अलबीरूनी का मत

सूर्य-सिद्धात के बनने के कई सौ वर्ष बाद अलबीरूनी ने भारतवर्ष पर अपनी पुस्तक मे लिखा था[1] कि सूर्य-सिद्धात के रचयिता लाटदेव थे, परतु यह बात विश्वसनीय नही जान पडती । वराहमिहिर के अनुसार रोमक और पौलिश सिद्धातो के रचयिता लाटदेव थे । वे प्रथम आर्यभट के शिष्य थे । यदि वराहमिहिर के समय मे लोग यह जानते होते कि लाटदेव ने ही सूर्य-सिद्धात भी लिखा है तो निस्सदेह वराहमिहिर इसे पचसिद्धातिका मे लिखते । फिर, अधिक सभावना यही थी कि लाटदेव गणना के आरभिक वर्ष के लिए अपने ही समय के आस-पास का कोई वर्ष चुनते । इसके अतिरिक्त, लाटदेव यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना आरभ करते थे और आर्यभट अर्धरात्रि अथवा मध्याह्न से (उन्होने दोनो पद्धतियो के अनुसार गणना बतायी है) । सूर्य-सिद्धात मे उज्जयनी की अर्धरात्रि से अहर्गण की गणना का आरभ होता है । यद्यपि इन सब बातो के होते हुए भी यह सभव है कि लाटदेव ही ने सूर्य-सिद्धात को एक गुमनामी पुस्तक के रूप मे अतुल पुण्य अर्जन करने के लिए लिखी हो, तो भी इसकी सभावना कम ही दिखायी पडती है ।

मुझे तो ऐसा जान पडता है कि आरभ से ही सूर्य-सिद्धात ऐसा उत्तम ग्रथ था कि उसी का उपयोग अधिक होने लगा । जैसे-जैसे वेध से पता चला कि आँख से देखी बातो और गणना मे अतर पडता है तैसे-तैसे ज्योतिषियो ने उसके अको को थोडा-बहुत बदल कर उसे अधिक उपयोगी और शुद्ध बना लिया, परतु पुस्तक का परित्याग कभी नही किया । आर्यभटीय, ब्राह्मस्फुट-सिद्धात, आदि ग्रथ व्यक्ति

[1] अलबीरूनी का 'भारतवर्ष', साचौ अनुवादित, १।१५३ ।

विशेष द्वारा विरचित ग्रथ थे, नामो से ही यह बात टपकती थी। सूर्य-सिद्धात भगवान सूर्य की कही पुस्तक मानी जाती थी, सभव है इसका भी कुछ प्रभाव पडा हो।

आगामी अध्याय मे इस पर विचार किया जायगा कि कहाँ तक ज्योतिष का ज्ञान ग्रीस से भारतवर्ष मे आया।

अध्याय १२

भारतीय और यवन ज्योतिष

बरजेस का मत

कुछ पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि भारत मे ज्योतिष का सब ज्ञान विदेश से आया, अनेक भारतीयो का विश्वास है कि ज्योतिष का ज्ञान यही से विदेश गया। प्राचीन भारत ज्योतिष मे दूसरो का कहाँ तक ऋणी था इस विवादग्रस्त विषय पर स्वय विचार न करके श्री एबेनेजर बरजेस के विवेचन को पाठको के सम्मुख रखना मै अधिक उत्तम समझता हूँ। ये विचार १८६० मे उन्होने सूर्य-सिद्धात के अपने अँग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित किये थे। उनके विचार अब भी वैसे ही ठीक जान पडते है जैसे वे उस समय थे। उनका कहना है कि

"प्रोफेसर व्हिटनी की ऐसी सम्मति जान पडती है कि हिंदुओ ने गणित और फलित ज्योतिष का ज्ञान प्राय कुल का कुल यवनो से प्राप्त किया—और जो कुछ उन्होने यवनो से नही पाया उन्होने दूसरो से पाया, जैसे अरब, खाल्दी और चीनी लोगो से। परतु मै समझता हूँ कि हिदुओ को वे उतना यश नही दे रहे है जितना उनका अधिकार है और यवनो को वे उचित से अधिक यश दे रहे है। इस विचार के उपस्थित करने के साथ-साथ मै यह अवश्य मानता हूँ कि यवन लोगो ने पीछे, ज्योतिष-विज्ञान की उन्नति अधिक सफलता से की। हिंदू सिद्धातो मे कुछ भी ऐसी वस्तु नही है जो टालमी की महान कृति सिनटैक्सिस के टक्कर की हो। तो भी, जितना प्रकाश मुझे अब मिला है उससे मुझे यह मानना आवश्यक है कि ज्योतिष की सरल बातो और सिद्धातो मे, जैसा हिंदुओ की पुस्तको मे मिलता है, हिंदू मौलिक थे, और इस विज्ञान की उन्नति मे भी वे अधिकतर मौलिक ही रहे, और यवनो ने उनसे ज्ञान प्राप्त किया, या किसी ऐसे मध्यस्थ द्वारा उन्होने ज्ञान प्राप्त किया जिन्हे यह ज्ञान भारत से मिला था। यदि इस विचार मे परिवर्तन करना पडे तो मै यहाँ तक मान सकता हूँ कि यवन और हिंदुओ ने एक दूसरे से ज्ञान सभवत न लिया हो और किसी

एक ही स्थान से दोनो ने ज्ञान प्राप्त किया हो। परतु वर्तमान ज्ञान के आधार पर मैं इससे सहमत नही हो सकता कि हिंदू लोग, कुछ भी अधिक मात्रा मे, अपने ज्योतिष के लिए यवनो के ऋणी है, अथवा यवन लोग ज्योतिष-विज्ञान के उन सरल तथ्यो और सिद्धातो की मौलिकता के लिए सम्मान पाने के सच्चे अधिकारी है जो अन्य प्राचीन पद्धतियो मे भी पाये जाते है, और जो इस प्रकार के है कि जान पडते है कि एक ही मूल से उत्पन्न हुए है और एक स्थान से दूसरे को गये है।

समानताएँ

"स्पष्टता के लिए, अच्छा होगा यदि मै पूर्वोक्त भाँति के महत्त्वपूर्ण तथ्यो और सिद्धातो मे से कुछ को अधिक विशद रूप से बता दूँ। वे इस प्रकार है

"१ चद्रमा की गति के लिए रविमार्ग का सत्ताइस या अट्ठाइस नक्षत्रो मे बाँटा जाना। थोडा हेर-फेर से ऐसा विभाजन हिंदुओ की, अरब वालो की, और चीन वालो की पद्धतियो मे है।

"२ रवि की गति के लिए रविमार्ग का बारह राशियो मे बाँटा जाना और प्रत्येक का नाम। इन नामो का अर्थ हिंदू और यवन दोनो पद्धतियो मे एक है। इन मे ऐसी अभिन्नता है कि विभाजन-सिद्धात और नामकरण एक ही मूल से उत्पन्न होने की कल्पना निस्सदेह ठीक है।

"३ हिंदू, यवन और अरब की फलित ज्योतिष पद्धतियो मे समानता और कही-कही पूर्ण अभिन्नता से प्रबल धारणा होती है कि प्राथमिक और सारभूत बातो मे ये पद्धतियाँ एक ही मूल से उत्पन्न हुई है।

"४ प्राचीन लोगो को जो पाँच ग्रह ज्ञात थे उनके नाम, और उनपर सप्ताह के दिनो का नाम, एक होना।

"इन बातो के बारे मे मुझे यह कहना है

"पहली बात तो यह है कि पूर्वोक्त मे से किसी भी विषय के लिए मौलिक आविष्कारक कहाने का अधिकार हिंदुओ की अपेक्षा अन्य किसी देश के लोगो का अधिक दृढ नही है।

"दूसरी बात यह है कि पूर्वोक्त मे से अधिकाश विषयो के लिए मौलिकता का साक्ष्य, मेरी सम्मति मे, स्पष्ट रूप से हिंदुओ के पक्ष मे है, और कुछ के लिए, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है, मुझे तो साक्ष्य प्राय या पूर्णतया अखडच जान पडता है।

हिंदू मूल से उत्पन्न

"यहाँ ब्योरे के लिए स्थान नही है और न किसी विषय पर ब्योरा देना मेरा उद्देश्य है। परतु स्पष्टता के लिए, ऊपर के प्रत्येक विषय पर सक्षिप्त टिप्पणी देना आवश्यक जान पडता है।

"१ चद्रमा की गति के लिए रविमार्ग का सत्ताइस या अट्ठाइस भागो मे विभाजन। हिदुओ मे इस विभाजन की असदिग्ध प्राचीनता, अपने पूर्ण विकसित रूप मे भी, और साथ ही अन्य देश के लोगो मे इस प्रकार के साक्ष्य का अभाव, निश्चित रूप से मुझे इस सम्मति के लिए प्रेरित करते है कि यह विभाजन विशुद्ध हिदू मूल से उत्पन्न हुआ है। श्री बायो और दूसरे विद्वानो की सम्मति इसके विरुद्ध होते हुए भी मेरी यही सम्मति है।

"२ सूर्य की गति के लिए रविमार्ग का बारह भागो मे विभाजन और उन भागो के नाम। यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस विभाजन का प्रयोग और राशियो के वर्तमान नाम भारत मे उतने ही प्राचीन काल से प्रचलित है, जितने से वे किसी अन्य देश मे, और इसके अतिरिक्त इस का भी साक्ष्य है—यह सच है कि यह साक्ष्य कम स्पष्ट और कम सतोषजनक है, तो भी इस प्रकार का है कि बहुत अधिक सभावना हो जाती है—कि अन्य देशो मे इस विभाजन का लेश-मात्र भी जब नही पाया जाता, उसके शताब्दियो पहले यह भारतवर्ष मे हिदुओ को ज्ञात था।

"अपने विचारो के अशत समर्थन मे, और इस विचार के बलपूर्वक समर्थन मे कि यदि पूर्वोक्त विभाजन भारत मे नही उत्पन्न हुआ तो कम-से-कम कही पूरब मे उत्पन्न हुआ, मै इडेलर और लेप्सियस की सम्मति को उद्धृत करना चाहता हूँ, जैसा वह हबोल्ट की पुस्तक मे दिया गया है (कॉसमॉस, हारपर का सस्करण, ३।१२०। टिप्पणी) 'इडेलर का विश्वास है कि पूरबी लोगो ने ही बारह राशियो का नाम रक्खा .'। हबोल्ट की सम्मति है कि यवनो को रविमार्ग के बारह विभाजन और उनके नाम खाल्दियो से मिले। मेरी सम्मति है कि अधिक साक्ष्य इस बात का है कि इनकी उत्पत्ति यदि हिंदुओ मे न हुई तो कम-से-कम पूरब मे हुई।

"३ मद-परिधियो का सिद्धात। इस सिद्धात के विकास में यवन और हिदू पद्धितियो मे जो अतर है उससे इस कल्पना के लिए कि इन दो जातियो मे से किसी एक को दूसरे से इस विषय मे सकेत मात्र से कुछ अधिक मिला, कोई स्थान नही रह जाता। और जहाँ तक इस विषय का सबध है यवनो ने हिंदुओ से ये

बातें सीखी इसे सत्य मानने के लिए भी उतना ही कारण है जितना उलटी बात मानने के लिए, परतु कुछ और कारण है, जो इस धारणा के अनुकूल है कि इस सिद्धात के मूल आविष्कारक हिंदू थे।

फलित ज्योतिष

"४ फलित ज्योतिष के बारे मे, मेरी समझ मे, इसके आविष्कार और अनुशीलन मे अधिक सम्मान नही है। हिंदू और यवन पद्धतियो मे जो अभिन्नताएँ पायी जाती है वे इतनी अपूर्व है कि उनकी पृथक-पृथक उत्पत्ति की कल्पना असभव है। परतु मौलिक आविष्कार का सम्मान, यदि इसमे कोई सम्मान है भी तो, हिंदुओं और खाल्दियो मे से किसी एक को मिलना चाहिए। आविष्कार और अनुशीलन की प्रथमता का साक्ष्य, कुल मिला कर, हिंदुओ के पक्ष मे जान पडता है, तीन-चार अरबी या यवन शब्द जो हिंदू पद्धति मे आ गये है, उनका निराकरण इस कल्पना से हो जाता है कि वे अपेक्षाकृत बहुत बाद मे लिये गये। परतु होरा शब्द के सबध मे, जो यवन शब्द ωρα है, यवन हेरोडोटस का साक्ष्य यहाँ देना अनुचित न होगा (२।१०९) 'सूर्य-घडी और शकु, तथा दिन का बारह भागो मे विभाजन यवनो ने बाबुल लोगो से पाया'। इस बात के लिए बहुत-सा साक्ष्य है कि अहोरात्र का चौबीस घटो मे विभाजन, यदि भारत मे नही तो पूरब मे, यवन देश मे प्रचलित होने के पहले ही से, प्रचलित था। फिर, हिंदू ज्योतिष ग्रथो मे पाये जाने वाले उन शब्दो को जिन्हे यवन बताया जाता है, मै यह कहना चाहता हूँ कि पूर्ण औचित्य के साथ हम उस बहुसख्यक शब्दो के वर्ग मे रख सकते है[1] जो यवन और सस्कृत भाषाओ मे

[1]श्री बरजेस की यह बात मुझे ठीक नही जँचती। वराहमिहिर ने बारह राशियो के जो नाम अपने बृहज्जातक में दिये है वे मेष, वृष, मिथुन आदि के बदले क्रियः, ताबुरि, जित्तुम आदि है, जो यवन शब्दों के भ्रष्ट रूप जान पड़ते है। उनका प्रचार न हो सका, उनके बदले मेष, वृष, आदि नाम चले, जो यवन शब्दो के अनुवाद है। नीचे यवन और वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त बारहो राशिनाम दिये जा रहे है, जिसमें पाठक स्वय उनकी तुलना कर सके। यद्यपि वराहमिहिर वाले शब्द सस्कृत-से जान पडते है, तो भी स्मरण रखना चाहिए कि उनका प्रयोग उसके पहले के किसी भी ग्रथ में नहीं हुआ। दूसरी ओर इसका प्रमाण है कि यवन वालो ने बाबुल लोगो के राशिनामो का अनुवाद कर लिया और उनके देश मे इन नामो का प्रचलन ५३२ ई० पूर्व से आरंभ हुआ (भारत सरकार की पंचांग-सशोधन समिति की रिपोर्ट, पृष्ठ १९३

उभयनिष्ठ है, और जो या तो एक ही मूल से दोनो भाषाओ मे पहुँचे, या अति प्राचीन काल मे सस्कृत से यवन भाषा मे पहुँचे, क्योकि, जहाँ तक मै जानता हूँ, कोई यह नही कहता कि यवन भाषा सस्कृत की जन्मदात्री है, यद्यपि बहुत-से शब्दो मे और व्याकरण के प्रयोगो मे दोनो भाषाओ मे समानता है।

ग्रह

"५ ग्रहो के सबध मे मुझे यह कहना है कि हिंदू और यवन पद्धतियो मे उनकी अभिन्नता सिद्ध नही हो पायी है। चाहे जो हो, मेरा विचार है कि यवन ज्योतिष के वर्तमान नामो की उत्पत्ति कम-से-कम खाल्दी तक पूरब तो अवश्य हुई। हेरोडोटस ने लिखा है (२।५२) "देवताओ के नाम यवन मे मिस्र देश से आये।" ग्रहो के नाम देवताओ के नाम है। इन नामो की उत्पत्ति के बारे मे यवनो का विश्वास हेरोडोटस के कथन से स्पष्ट है। अन्य कारणो से उनकी उत्पत्ति, निस्सदेह रूप से, खाल्दी या उससे भी अधिक पूरब देश मे हुई दिखायी पडती है।

"सप्ताह के दिनो के साथ ग्रहो के नाम जुटने के सबध मे यह निश्चय करना असभव है कि उस प्रथा की उत्पत्ति कहाँ हुई। इस बारे मे प्रोफेसर एच० एच० विल्सन की राय है—और मै उनसे पूर्णतया सहमत हूँ—कि 'इस प्रथा की उत्पत्ति ठीक से निश्चित नही हो पायी है, कारण कि यवनो को यह प्रथा अज्ञात थी, और रोम-निवासी भी इसे बहुत पीछे अपनाये। साधारणत लोग इसे मिस्र और बाबुल लोगो की देन बताते है, परतु इसके लिए पर्याप्त प्रमाण नही है, और इस आविष्कार के श्रेय के अधिकारी हिंदू भी कम-से-कम उतने ही है, जितने अन्य कही के लोग।' (जरनल रॉयल एशियाटिक सोसायटी, ९।८४)।

अरब में ज्योतिष

"ज्योतिष विज्ञान में मौलिक आविष्कार के श्रेय के अधिकारी अरबवाले कहाँ तक है इस पर भी दो शब्द कहना आवश्यक है। वे तो स्वय स्वीकार करते है कि

पर आवश्यक उद्धरण मिलेंगे)। इसलिए इसकी संभावना बहुत कम ही जान पड़ती है कि भारत से ये नाम ग्रीस में गये।

राशियो के यवन नाम और वराहमिहिर में आये नाम यो है· क्रियॉस= क्रियः; टॉरस=ताबुरि; डिडुमाय=जित्तुम; कार्किसनॉस=कुलीर; लियोन= लेय; पार्थेनॉस=पाथोन; जुगस=जूकः, स्कौर्पियस=कौर्प्यः; तोक्सायटस= तौक्षिक; लिगोक्सेरस=आकोकेर; ग्ड्रॉक्सोस=हृदरोग; इक्थुएस=इथुसी।

इति० १२

उन्हे यह विद्या भारत और ग्रीस से मिली। आरभ मे ही दो या तीन भारतीय ज्यौतिष ग्रथ उन्होने प्राप्त कर लिये।" द्वितीय अब्बासिद खलीफा अलमसूर (७७३ ई०) के राज्यकाल में, जैसा कि बिन-अल-अदमी की ज्यौतिष सारणियो की भूमिका मे लिखा है, जो ९२० ई० मे प्रकाशित हुई थी, एक भारतीय ज्योतिषी, जो अपने विषय का पारगत विद्वान था, खलीफा के दरबार मे आया। वह अपने साथ ग्रहो की सारणियाँ भी लाया था और चाद्र तथा सौर ग्रहणो के वेध, और राशियो के निर्देशाक भी, जो, जैसा उसने बताया, एक भारतीय राजकुमार के परिगणित सारणियो से लिये गये थे, जिसका नाम, उस अरबी लेखक के लिखने के अनुसार, फिचर था" (कोलब्रुक हिंदू अलजेबरा पृष्ठ ६४)। यह बात कि यवन ज्योतिष से परिचित होने के पहले वे हिंदू ज्योतिष के ज्ञान से परिपूरित थे टालमी कृत सिनटैक्सिस के अरबी अनुवाद से प्रत्यक्ष है। यह सभी जानते है कि इस यवन ज्योतिषी की महान कृति की जानकारी यूरोप मे अरबी अनुवाद से ही हुई। इस अनुवाद के लैटिन अनुवाद मे आरोही पात को शिर वाला पात और अवरोही पात को पुच्छवाला पात कहा गया है और ये शब्द हिंदू राहु और केतु के विशुद्ध अनुवाद है। यह बात और अन्य साक्ष्य स्पष्ट रूप से दिखाते है कि अरब वालो पर हिंदू ज्योतिष की गहरी छाप पडी थी। वस्तुत जान पडता है कि अरब वालो ने ज्योतिष मे कुल इतना ही किया कि वे अपने पूरबी और पच्छिमी पडोसियो से प्राप्त सामग्री को परिष्कृत कर सके।

"एक दूसरी बात की भी चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ जान पडती है, जिससे स्वय अरब वालो का विश्वास प्रकट होता है कि विज्ञान के विषय मे हिदुओ के वे ऋणी थे। वे अको के आविष्कार को हिदुओ का बताते है (जिसको साधारणत सभी यूरोप वाले अरब का आविष्कार समझते है)।

"ऊपर के तथ्यो और तर्कों का, जो दिखाते है कि गणितीय तथा ज्योतिष विज्ञानो में अरब वाले हिंदुओ के कितने ऋणी थे, स्पष्टतया इस प्रश्न से भी महत्त्वपूर्ण सबध है कि चद्रमा की गति के लिए रविमार्ग को अट्ठाइस नक्षत्रो मे विभाजित करने का आविष्कार किसने पहले किया, कम-से-कम जहाँ तक अरब वालो का इससे सपर्क है। सब बातो को ध्यान मे रख कर यह मानना असभव है कि अरब के लोगो ने इसका आविष्कार किया।

समाप्ति

"इस लेख को मै प्रसिद्ध प्राचीनज्ञ एच० टी० कोलब्रुक से लिये गये एक अवतरण से समाप्त करता हूँ। अपने बहुमूल्य लेख मे, जिसका शीर्षक है "विषुवो के अयन

और ग्रहो की गतियो पर हिंदू ज्योतिषियो के विचार", पहले हिंदू पद्धतियों के अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताओं मे से कुछ को ब्योरेवार बता कर, और उसी प्रकार उनकी और यवनो की पद्धतियों मे पायी जाने वाली समताओ को भी बता कर, और इन दोनों लोगो मे उस समय मे आवागमन के साक्ष्य को भी दिखा कर, वे कहते है कि "यदि इन परिस्थितियो से, और इनके अतिरिक्त ऐसी समानता से, जिसे आकस्मिक मानना कठिन है, और जो मद-परिधि और उत्केद्र वृत्तो के उपकरण से सुसज्जित हिंदू ज्योतिष और यवन ज्योतिष मे कई बातो मे पायी जाती है, कोई समझे कि ऐसा विश्वास करना उचित होगा कि हिंदुओ को यवनो से वह ज्ञान मिला जिससे वे ज्योतिष के अपने त्रुटिमय ज्ञान को शुद्ध और परिष्कृत कर सके तो उनसे मतभेद के लिए मुझे कोई इच्छा न होगी" (एशियाटिक रिसर्चेज़) ।

"इतने विद्वान और इतने सतर्क लेखक होते हुए भी श्री कोलब्रुक इस मत के पक्ष मे कि हिंदुओ ने अपना ज्योतिष का ज्ञान यवनो से पाया है कुल इतना ही कह सके जितना ऊपर लिखा है । इससे अधिक मै भी कुछ नही कह सकता । रविमार्ग के बारह भागो मे बँट जाने पर और उनके नाम पड जाने पर, मै समझता हूँ कि केवल कुछ सकेत ही एक देश से दूसरे को पहुँच सका होगा, और वह भी बहुत प्रारभिक काल में, क्योकि यदि यह माना जाय कि पीछे के समय मे हिंदुओ ने यवनो से ज्ञान प्राप्त किया तो यह दिखायी पडना ही कठिन हो जाता है कि आखिर उन्होने किस बात का ज्ञान प्राप्त किया, क्योकि किसी बात मे न तो स्थिराक ठीक-ठीक मिलते है और न परिणाम । और फिर, इन स्थिराको और परिणामो मे से महत्त्वपूर्ण बातो मे—उदाहरणत, विषुव के वार्षिक अयन के मान मे, पृथ्वी के सापेक्ष सूर्य और चद्रमा की नापो मे, सूर्य के महत्तम केद्र-समीकार मे—यवनो की अपेक्षा हिंदू ही अधिक शुद्ध थे, और ग्रहो के भगण-कालो मे वे प्राय उतने ही शुद्ध थे जितने यवन । ग्रहो के नाक्षत्र भगण कालो की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि चार भगण-काल हिंदुओ के अधिक शुद्ध थे और टॉलमी के छ । प्रत्यक्ष है कि हिंदुओ और यवनो के वीच ज्यौतिष ज्ञान का आदान-प्रदान बहुत कम ही हुआ है । और उन विषयो के बारे मे जहाँ सिद्ध है कि एक देश के लोगो ने दूसरे से कुछ लिया ही, मुझे इस समय जहाँ तक ज्ञान है, मेरी तो यही सम्मति हो रही है कि ज्ञान-प्राप्ति की धारा कोलब्रुक की धारणा से उलटी ही रही है—पश्चिम से पूर्व के बदले पूर्व से पश्चिम हो, और ज्योतिष मे भी मै अपना मत उसी भाषा मे प्रकट करना चाहूँगा जिसने इस प्रकाड विद्वान ने विचारशील दर्शन और धार्मिक व्यवस्थाओ की, विशेष कर पुनर्जन्म-सिद्धात की, कुछ अभिन्नताओ के बारे मे, जो यवन और हिंदू पद्धतियो मे पाये जाते है, अपनी सम्मति

दी है . "मुझे इसी परिणाम पर पहुँचना उचित जान पडता है कि इस बात मे भारतीय शिक्षक थे, न कि शिष्य" (ट्रैंज़ैक्शन्स रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १।५७९)। यह सम्मति प्राच्य दर्शन पर कोलब्रुक की लेखनी से निकले अतिम निबध मे व्यक्त की गयी है।

अध्याय १३

लाटदेव से भास्कराचार्य तक

लाटदेव, पाडुरंग, नि.शंक, श्रीषेण, आदि

वराहमिहिर ने पचसिद्धातिका में जिन ग्रथो का सग्रह किया है उनके नाम ये हे—पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह सिद्धात[1]। इनमे से पहले दो ग्रथो के व्याख्याता[2] लाटदेव बताये गये है, जिससे सिद्ध होता है कि लाटदेव सूर्य-सिद्धात के बनाने वाले नही थे, जैसा अलबेरूनी ने कई सौ वर्ष पीछे विक्रम की ११वी शताब्दी मे लिखा है। यदि ऐसा होता तो वराहमिहिर अवश्य स्वीकार करते। भास्कर प्रथम के रचे महाभास्करीय से तो प्रकट होता है कि लाटदेव, पाण्डुरग स्वामी, नि शंकु आदि आर्यभट के शिष्य थे[3]। रोमक सिद्धात निस्सदेह यवन (यूनानी) ज्योतिष के आधार पर बनाया गया था, क्योकि इसमे यवनपुर के सूर्यास्तकाल[4] से अहर्गण बनाने की रीति बतायी गयी है। यह यवनपुर वर्तमान युक्तप्रान्त का जवनपुर नही है, वरन् सभवत एलेक्ज़ेड्रिया है जो यूनानी ज्योतिष का केद्र था। अस्त होते हुए सूर्य से अहर्गण निकालने की बात भी यही प्रकट करती है, क्योंकि मुसलमानी महीने अब भी दूइज के चद्रदर्शन के समय से, अर्थात जब सूर्यास्त होता है तब से, आरभ होते है। ब्रह्मगुप्त ने भी रोमक-सिद्धात को स्मृतिबाह्य[5] माना है। इससे यह बात

[1] इस अध्याय की सारी बातें मेरे द्वारा संपादित सरल विज्ञान-सागर नामक ग्रंथ में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी है।

[2] पंचसिद्धांतिका, १।३।

[3] प्रबोधचंद्र सेनगुप्त के खण्डखाद्यक की भूमिका, पृष्ठ १९।

[4] पं० सि०, १।८।

[5] ब्रा० सि०, १।१३।

और भी स्पष्ट हो जाती है। पाडुरगस्वामी और निशकु के बनाये कोई ग्रथ नही मिले है। ब्रह्मगुप्त ने श्रीषेण, विष्णुचद्र और विजयनन्दि की चर्चा कई स्थानो पर विशेषकर तन्त्र परीक्षाध्याय मे की है, जिससे प्रकट होता है कि इन्होने कोई स्वतन्त्र ग्रथ नही लिखा था वरन् पुराने ग्रथो का सग्रह मात्र अथवा सशोधन मात्र किया था। ऊपर के पिछले चार ज्योतिषियो का समय वराहमिहिर के उपरान्त और ब्रह्मगुप्त के पहले, अर्थात सवत ५६२ से ६६५ के बीच मे, है। ब्रह्मगुप्त कहते है कि श्रीषेण ने लाट, वशिष्ठ, विजयनन्दि और आयभट के मूलाको को लेकर रोमन नामक गुदडी[१] तैयार की है और इन सबके आधार पर विष्णुचन्द्र ने वाशिष्ट नामक ग्रन्थ रचा है।

भास्कर प्रथम

महाभास्करीय और लघुभास्करीय नामक दो ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ भारत के कई पुस्तकालयो मे है, जैसे मद्रास सरकार का हस्तलिपियो वाला ग्रथालय, ट्रिवेंड्रम की पैलेस लायब्रेरी, तथा क्यूरेटर्स ऑफिस लायब्रेरी, ट्रिवेंड्रम। इन दोनो ग्रथो मे आर्यभट के ज्योतिष का समावेश है और इनके रचयिता भास्कर नाम के एक ज्योतिषी थे, जो लीलावती के लेखक प्रसिद्ध भास्कराचार्य से भिन्न थे। इसलिए इनका नाम प्रथम भास्कर लिखना उपयुक्त होगा। लखनऊ विश्वविद्यालय के डाक्टर कृपाशकर शुक्ल ने अपनी डाक्टर को डिगरी के लिए भास्कर प्रथम पर विशेष अनुसधान किया है। उनके अनुसार भास्कर प्रथम ने एक तीसरा ग्रथ भी लिखा है जो आर्यभटीय की टीका है, और जिसका नाम ग्रथकार ने आर्यभटतत्र-भाष्य रक्खा है। इस टीका मे लेखक ने दिनाक भी डाल दिया है, जिसके अनुसार यह टीका सन ६२९ ई० मे लिखी गयी थी। इस टीका की एक प्रति ट्रिवेंड्रम मे है और एक इडिया ऑफिस लायब्रेरी, लडन, मे। टीका बहुत विस्तृत और विशद है। भास्कराचार्य प्रथम आर्यभट प्रथम की शिष्य-परपरा मे थे और इनका जन्म-स्थान अश्मक मे था, जो नर्मदा और गोदावरी के बीच मे था। इनके दोनो प्रधान ग्रथो (महाभास्करीय और लघुभास्करीय) का प्रयोग लगभग पद्रहवी शताब्दी ई० के अत तक दक्षिण भारत मे होता रहा। इनके दोनो ग्रथो मे गणना कलियुग के आरभ से की गयी है।

[१] ब्रा० स्फु० सि०, ११।४८-५१।

कल्याण वर्मा

प० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार[1] इनका समय शक ५०० के लगभग है। इन्होने 'सारावली' नामक जातक शास्त्र की रचना वराहमिहिर वृहज्जातक से बडे आकार मे की है और स्पष्ट लिखा है कि वराहमिहिर, यवन, और नरेन्द्र रचित होराशास्त्र के सार को लेकर सारावली नामक ग्रन्थ की रचना की गयी है। इसमे ४२ अध्याय है। इस पुस्तक की चर्चा भटोत्पल ने की है। शकर बालकृष्ण दीक्षित[2] के मत से इनका समय ८२१ शक के लगभग है।

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त गणित-ज्योतिष के बहुत बडे आचार्य हो गये है। प्रसिद्ध भास्कराचार्य ने इनको गणकचक्रचूडामणि कहा है और इनके मूलाको को[3] अपने सिद्धात-शिरोमणि का आधार माना है। इनके ग्रथो का अनुवाद अरबी भाषा मे भी कराया गया था, जिन्हे अरबी मे अस् सिन्ध हिन्द और अल् अर्कन्द कहते है। पहली पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धात का अनुवाद है और दूसरी खण्डखाद्यक का। इनका जन्म शक ५१८ (६५३ वि०) मे हुआ था और इन्होने शक ५५० (६८५ वि०) मे ब्राह्मस्फुट सिद्धात की रचना[4] की थी। इन्होने स्थान-स्थान पर लिखा है कि आर्यभट, श्रीषेण विष्णुचन्द्र आदि की गणना से ग्रहो का स्पष्ट स्थान शुद्ध नही आता, इसलिए वे त्याज्य है, और ब्राह्मस्फुट सिद्धात मे दृग्गणितैक्य[5] होता है, इसलिए वही मानना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धात की रचना ग्रहो का प्रत्यक्ष वेध करके की थी और वे इस बात की आवश्यकता समझते थे कि जब कभी गणना और वेध मे अन्तर पडने लगे तो वेध के द्वारा गणना शुद्ध कर लेनी चाहिए। यह पहले आचार्य थे जिन्होने गणित ज्योतिष की रचना विशेष क्रम से की, और ज्योतिष और गणित के विषयो को अलग-अलग अध्यायो में बाँटा।

[1] गणक तरगिणी, पृष्ठ १६।

[2] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० ४८६;।

[3] सिद्धांत-शिरोमणि, भगणाध्याय।

[4] संज्ञाध्याय, ७, ८।

[5] तंत्रभ्रंशे प्रतिदिनमेवं विज्ञाय धीमता यत्नः। कार्यस्तस्मिन् यस्मिन दृग्गणितैक्य सदा भवति ॥६०॥ तत्रपरीक्षाध्याय।

ब्राह्मस्फुट-सिद्धात

ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के अध्यायो का ब्योरा नीचे दिया जाता है .

१—मध्यमाधिकार मे ग्रहो की मध्यम गति की गणना है । २—स्पष्टाधिकार मे स्पष्ट गति जानने की रीति बतायी गयी है । इसी अध्याय मे ज्या निकालने की रीति भी बतायी गयी है, जिसमे त्रिज्या का मान ३२७० कला माना गया है, यद्यपि आर्यभट ने ३४३८ कला माना था और उसी को सूर्यसिद्धात ने भी माना था और पीछे सिद्धात-शिरोमणि आदि ग्रथो मे भी स्वीकार किया गया।

३—त्रिप्रश्नाधिकार मे ज्योतिष के तीन मुख्य विषयो (दिशा, देश और काल) के जानने की रीति है ।

४—चद्रग्रहणाधिकार मे चद्रग्रहण की गणना करने की रीति है ।

५—सूर्यग्रहणाधिकार मे सूर्यग्रहण की गणना करने की रीति है ।

६—उदयास्ताधिकार मे बताया गया है कि चद्रमा, मगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये सूर्य के कितने पास आने पर अस्त हो जाते है, अर्थात अदृश्य हो जाते है, और कितनी दूर होने से उदय होते है, अर्थात दिखायी पडने लगते है ।

७—चद्रश्रृङ्गोन्नत्यधिकार मे बताया गया है कि शुक्लपक्ष की दूइज के दिन जब चद्रमा सन्ध्या मे पहले-पहल दिखायी पडता है तब उसकी कौन-सी नोक उठी रहती है ।

८—चद्रच्छायाधिकार मे उदय और अस्त होते हुए चद्रमा के वेध से छाया आदि का ज्ञान करने की रीति है । अन्य ग्रथो मे इसके लिए कोई अलग अध्याय नही है ।

९—ग्रहयुत्यधिकार मे बताया गया है कि ग्रह एक दूसरे के पास कब आ जाते है और इनकी युति की गणना कैसे की जाती है ।

१०—भग्रहयुत्यधिकार मे बताया गया है कि नक्षत्रो या तारो के साथ ग्रहो की युति कब होती है और इसकी गणना कैसे की जाती है । इसी अध्याय मे नक्षत्रो के ध्रुवीय भोगाश और शर[1] भी दिये गये है और नक्षत्रो की पूरी सूची है । ज्योतिष गणित सबधी ये दस अध्याय मुख्य है ।

११—तत्रपरीक्षाध्याय मे ब्रह्मगुप्त ने पहले के आर्यभट, श्रीषेण, विष्णुचद्र, आदि, की पुस्तको का खण्डन बडे कडे शब्दो मे किया है, जो एक प्रकार से ज्योतिषियो

[1] अर्थात ध्रुवक और विक्षेप; पृष्ठ १५० देखें ।

की परिपाटी-सी है, परंतु इससे यह बात सिद्ध होती है कि उस प्राचीन काल मे भी ज्योतिषी वेध-सिद्ध शुद्ध गणना के पक्ष मे थे। वे पुरानी लकीर के फकीर नही रहना चाहते थे।

१२—गणिताध्याय शुद्ध गणित के सबध मे है। इसमे जोडना, घटाना, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्नो का जोडना, घटाना आदि, त्रैराशिक, व्यस्त-त्रैराशिक, भाण्ड प्रति भाण्ड (बदले के प्रश्न), मिश्रक व्यवहार, आदि, अक-गणित या पाटीगणित के विषय है। श्रेढी व्यवहार (समातर श्रेढी), क्षेत्र व्यवहार (त्रिभुज, चतुर्भुज आदि के क्षेत्रफल जानने की रीति), वृत्त-क्षेत्र गणित, खात व्यवहार (खाई आदि का घनफल जानने की रीति), चिति व्यवहार (ढालू खाई का घनफल जानने की रीति), क्राकचिक व्यवहार (आरा चलाने वाले के काम का गणित), राशि व्यवहार (अन्न के ढेर का परिमाण जानने की रीति), छाया व्यवहार (दीप स्तभ और उसकी छाया के सबध के अनेक प्रश्न करने की रीति) आदि, २८ प्रकार के कर्म इसी अध्याय के अतर्गत है। इसके आगे प्रश्नोत्तर के रूप मे पीछे के अध्यायो मे बतायी हुई बातो का अभ्यास करने के लिए कई अध्याय है।

१३—मध्यगति उत्तराध्याय मे ग्रहो की मध्यगति सबधी प्रश्न और उत्तर है।

१४—स्फुटगति उत्तराध्याय मे ग्रहो की स्पष्टगति सबधी प्रश्न और उत्तर है।

१५—त्रिप्रश्नोत्तराध्याय मे त्रिप्रश्नाध्याय सबधी प्रश्नोत्तर है।

१६—ग्रहणोत्तराध्याय मे सूर्य-चद्रमा के ग्रहण सबधी प्रश्नोत्तर है।

१७—श्रृङ्गोन्नत्युत्तराध्याय मे चन्द्रमा की श्रृङ्गोन्नति सबधी प्रश्नोत्तर है।

१८—कुट्टकाध्याय मे कुट्टक की विधि से प्रश्नो का उत्तर जानने की रीति है। इस अध्याय मे ब्रह्मगुप्त ने प्रत्येक प्रकार के कुट्टक की रीति बतायी है और दिखाया है कि इससे ग्रहो के भगण आदि के काल कैसे जाने जा सकते है। इस अध्याय का अँग्रेजी अनुवाद कोलब्रुक ने किया है। इस अध्याय के अतर्गत कई खड है। एक खड मे धन, ऋण और शून्य का जोड, बाकी, गुणा, भाग, करणी[1] का जोड, बाकी, गुणा, भाग, आदि करने की रीति है। दूसरे खड मे एकवर्ण समीकरण, वर्ग समीकरण, अनेक वर्ण समीकरण, आदि, बीजगणित के प्रश्न है। तीसरा खड बीजगणित सबधी भावित बीज नामक है। चौथा खड वर्गप्रकृति नामक है। पाँचवें खड मे अनेक उदाहरण दिये गये है। इस प्रकार यह अध्याय १०३ श्लोको मे पूर्ण होता है।

[1] √२, √१५, ..., अर्थात ऐसी राशियाँ जिनमें वर्गमूल, धनमूल, आदि निकालना पड़े, करणी अथवा करणीगत सख्याएँ कहलाती है।

१९—शकुच्छायादि ज्ञानाध्याय मे छाया से समय या किसी वस्तु की ऊँचाई आदि जानने की रीति बतायी गयी है। यह त्रिकोणमिति से सबध रखता है।

२०—छदश्चित्युत्तराध्याय मे १९ श्लोक है जिनका अर्थ इतना दुरूह है कि समझ मे नही आता।

२१—गोलाध्याय मे भूगोल और खगोल सबधी कुछ गणना है। इसमे भी कई खड है—ज्या प्रकरण, स्फुटगतिवासना, ग्रहणवासना, गोलबन्धाधिकार। इनमे भूगोल तथा खगोल सबधी परिभाषाएँ और ग्रहो के बिम्बो के व्यास आदि जानने की रीति है।

२२—यत्राध्याय मे ५७ श्लोक है, इनमे अनेक प्रकार के यत्रो का वर्णन किया गया है जिनसे समय का ज्ञान होता है और ग्रहो के उन्नताश, नताश आदि जाने जाते है। स्वय वह यत्र की भी चर्चा है जो पारे की सहायता से अपने-आप चलता कहा गया है।

२३—मानाध्याय नामक छोटे से अध्याय मे सौर, चाद्र, सावन आदि नव मानो की चर्चा है।

२४—सज्ञाध्याय मे कई महत्त्व की बाते बतायी गयी है। पहले बताया गया है कि सूर्य, सोम, पुलिश, रोमक, वासिष्ठ और यवन सिद्धातो मे एक ही सिद्धात का प्रतिपादन किया गया है। यदि कुछ भेद है तो वैसे ही जैसे सूर्य की सक्राति स्थान भेद के कारण भिन्न-भिन्न कालो मे कही जाती है। इससे पता चलता है कि ब्रह्मगुप्त के समय उपर्युक्त सिद्धात प्रचलित हो गये थे और सब मे प्राय एक ही-सी बात थी। फिर, ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के २४ अध्यायो की सूची दी गयी है। इसके बाद बताया गया है कि चापवश-तिलक व्याघ्रमुख नामक राजा के समय मे ५५० शक मे विष्णुसुत ब्रह्मगुप्त ने ३२ वर्ष की अवस्था मे गणितज्ञो और गोलज्ञो की प्रसन्नता के लिए यह ग्रथ रचा। एक श्लोक मे बताया है कि ७२ आर्या छन्दो का ध्यानग्रहोपदेशाध्याय ब्राह्मस्फुट-सिद्धात मे, जिसके २४ अध्यायो मे कुल १००८ आर्या छन्द है, नही जोडा गया है। यह भी याद रखना चाहिए कि प्रत्येक अध्याय के अत मे यह बताया गया है कि उसमे कितने छन्द है।

ध्यानग्रहोपदेशाध्याय मे तिथि, नक्षत्र, आदि, की गणना करने की सरल रीति बतायी गयी है।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिष सबधी बातो के सिवा बीजगणित, अकगणित, क्षेत्रमिति, आदि, पर भी पर्याप्त ऊँची बाते आज से १३०० वर्ष पहले लिखी थी और यह उसी गणना को ठीक मानते थे जो वेध से भी ठीक उतरती थी।

खण्डखाद्यक

शक ५८७ मे जब ब्रह्मगुप्त ६९ वर्ष के हो गये थे तब खण्डखाद्यक नामक करण ग्रथ भी उन्होने रचा था जिससे तिथि, नक्षत्र और ग्रहो की गणना सुगम रीति से की जा सके। आश्चर्य की बात तो यह है कि ब्राह्मस्फुट-सिद्धात मे जिस आर्यभट की निन्दा अनेक स्थानो मे की गयी थी उसी के अनुसार इस खण्ड-खाद्यक[१] की रचना की गयी है। इससे प्रकट होता है कि वृद्धावस्था मे इनको भी आर्यभट का महत्त्व समझ पडा। परतु इस ग्रथ मे भी ब्रह्मगुप्त ने नवीन बाते बतायी है और कुछ सशोधन भी किये है। इस ग्रथ मे कुल १० अध्याय है जिनमे तिथि, नक्षत्रादि की गणना, पच ताराग्रहो की मध्य और स्पष्ट गणना, त्रिप्रश्ना-धिकार, चद्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, उदयास्ताधिकार, चद्रशृङ्गोन्नत्य-धिकार, ग्रहयुत्यधिकार नामक आठ अध्याय पूर्व खण्डखाद्यक मे है। उत्तर खण्ड-खाद्यक मे दो अध्याय है, जिसके पहले अध्याय मे ब्रह्मगुप्त ने अपने सशोधनो की चर्चा की है और नयी बाते बतायी है और दूसरे अध्याय मे ताराग्रहो और नक्षत्रो की युति के सबध मे विचार किया है और नक्षत्रो के योग-तारो का ध्रुवक और विक्षेप बताया है।

इन सब बातो का विचार करने से सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त एक महान आचार्य थे। इन्होने जो पद्धति चलायी उसी का अनुसरण पीछे के प्राय सभी आचार्यो ने किया। इनके दोनो ग्रथो की कई टीकाएँ केवल सस्कृत मे ही नही निकली, वरन् अरबी मे भी बनी, जिससे इनका नाम अरब और तुर्किस्तान मे भी फैल गया था।

लल्ल

लल्ल के समय के सबध मे विद्वानो मे बडा मतभेद है। महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी गणक-तरगिणी मे इनका समय ४२१ शक लिखते है, क्योकि आर्य-भटीय के अनुसार आये हुए ग्रहो में बीज-सस्कार देने के लिए ४२० शक घटाकर[२]

[१] वक्ष्यामि खण्डखाद्यकमाचार्यार्यभटतुल्यफलम् ॥१॥
प्रायेणार्यभटेन व्यवहारः प्रतिदिन यतोऽशक्य.।
उद्वाहजातकादिषु तत्समफल लघुतरोक्तिरत.॥२॥

प्रथम अध्याय

[२] शाके नखाब्धिरहिते. ऽभ्रशराक्षिभक्ते॥ शिष्यधीवृद्धिद, अध्याय १, ५९–६०, अध्याय १३, १८-१९।

ग्रह स्पष्ट करने के लिए इन्होने कहा है। परन्तु इसी श्लोक मे बताये गये नियम के अनुसार प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त अपनी खण्डखाद्यक की टीका की भूमिका[१] मे बताते है कि लल्ल का समय इससे २५० वर्ष पश्चात शक ६७० है, क्योकि २५० से भाग देने की बात से प्रकट होता है कि यह बीज-सस्कार लल्ल ने ४२० शक से २५० वर्ष पीछे निश्चित किए थे। यह बात सेनगुप्त जी ने दूसरी तरह से भी सिद्ध की है। वे कहते है कि लल्ल ने नक्षत्रो के योगतारो के जो ध्रुवक दिये है वे ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के ६ तारो के ध्रुवक से लगभग २ अश अधिक है और दो तारो के ध्रुवक से लगभग १° १०′ अधिक है, इसलिए इनका समय ब्रह्मगुप्त के समय से कम से कम ८५ वर्ष और अधिक से अधिक १४० वर्ष पश्चात होता है ब्रह्मगुप्त के पश्चात लल्ल के होने की बात श्री बबुआ मिश्र की सपादित खण्डखाद्यक की टीका से भी सिद्ध होती है। सुधाकर द्विवेदी का मत तो इस बात से भी ठीक नही समझ पडता कि यदि लल्ल इतने पुराने होते तो ब्रह्मगुप्त, जिन्होने आर्यभट, श्रीषेण, आदि अपने पहले के ग्रथकारो की चर्चा कई जगह की है, इनकी चर्चा भी अवश्य करते। शकर बालकृष्ण दीक्षित इनका समय ५६० शक के लगभग बताते है जिससे यह ब्रह्मगुप्त के समकालीन सिद्ध होते है। परतु यह बात भी ठीक नही समझ पडती, क्योकि तब बीज-सस्कार के लिए २५० से भाग देने की बात समझ मे नही आती। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त का ही अनुमान ठीक समझ पडता है।

शिष्यधीवृद्धिद तत्र

शिष्यधीवृद्धिद तत्र लल्ल का बहुत प्रसिद्ध ग्रथ है, जिसे आर्यभटीय के आधार पर लिखा गया है और बीज-सस्कार देकर उसे शुद्ध करने की बात भी लिखी गयी है। इस ग्रन्थ के रचने का कारण[२] यह बताया जाता है कि आर्यभट या इनके शिष्यो के लिखे ग्रथो से विद्यार्थियो के समझने मे सुविधा नही होती थी, इसलिए विस्तार के साथ उदाहरण देकर (कर्मक्रम से) यह ग्रथ लिखा गया है। इसमे अकगणित या

[१] पृष्ठ २७।

[२] **विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभटप्रणीतं।**
तंत्राणि यद्यपि कृतानि तदीयशिष्यै॰ ॥
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तै.।
कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तदुक्तं ॥२॥

मध्यमाधिकार

बीजगणित सबधी अध्याय नही है, केवल ज्योतिष सबधी अध्याय विस्तार के साथ दिये गये है और कुल श्लोको की सख्या १००० है। इस ग्रथ के गणिताध्याय मे मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चद्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, ग्रहोदयास्ताधिकार, चद्रछायाधिकार, चद्रशृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार, महापाताधिकार और उत्तराधिकार नामक १३ अध्याय है। गोलाध्याय मे छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, मध्यगतिवासना, भूगोलाध्याय, ग्रहभ्रम-सस्थाध्याय, भुवनकोश, मिथ्याज्ञानाध्याय, यत्राध्याय और प्रश्नाध्याय है। इन अध्यायो के नाम से भी प्रकट होता है कि यह पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धात के पश्चात लिखी गयी है और ज्योतिष सबधी जिन बातो की कमी ब्राह्मस्फुट सिद्धात मे थी, वह यहाँ पूरी की गयी है। शुद्ध गणित, अकगणित या बीजगणित सबधी कोई अध्याय इसमे नही है, जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त के बाद, जब ज्योतिष और गणित सबधी विकास बहुत बढ गया तब, इन दोनो शाखाओ को अलग-अलग विस्तार के साथ लिखने की परिपाटी चली, किसी ने शुद्ध गणित पर विस्तार के साथ लिखना आरभ किया, जैसे श्रीधर और महावीर ने, और किसी ने केवल ज्योतिष पर, जैसे लल्ल, पृथूदक स्वामी, भटोत्पल, आदि। यह आश्चर्य-जनक है कि आर्यभट के सिवा किसी अन्य प्राचीन आचार्य का नाम शिष्यधीवृद्धिद मे नही आया है।

रत्नकोष

शकर बालकृष्ण दीक्षित[1] लिखते है कि रत्नकोष नाम का एक मुहूर्त ग्रथ लल्ल का रचा हुआ है। इसका अनुमान प० सुधाकर द्विवेदी अपनी गणक-तरगिणी मे भी करते है, क्योकि मुहूर्त चितामणि की पीयूषधारा टीका मे लल्ल के मत की चर्चा है, परतु यह पुस्तक सुधाकर द्विवेदी के देखने मे नही आयी थी, न आधुनिक समय मे और कही किसी के देखने मे आयी है।

पाटीगणित (अकगणित) और बीजगणित की कोई पुस्तक भी लल्ल की बनायी हुई थी, ऐसा सुधाकर द्विवेदी अनुमान करते है, परतु यह पुस्तक भी अब उपलब्ध नही है। सब बातो का विचार करने से प्रकट होता है कि लल्ल एक विद्वान ज्योतिषी थे और आकाश के निरीक्षण के द्वारा ग्रहो को स्पष्ट करने की आवश्यकता समझते थे।

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २१७ ।

पद्मनाभ

पद्मनाभ बीजगणित के आचार्य थे जिनके ग्रथ का उल्लेख भास्कराचार्य ने अपने बीजगणित मे किया है, परतु इनके समय का पता किसी ने नही दिया है। डा० दत्त और सिह[1] लिखते है कि इनका बीजगणित कही नही मिलता। शकर बालकृष्ण दीक्षित[2] लिखते है कि कोलब्रुक के मतानुसार इनका काल श्रीधर से पहले का है, इसलिए ७०० शक के लगभग ठहरता है।

सुधाकर द्विवेदी गणक-तरगिणी मे व्यवहारप्रदीप नामक ज्योतिष ग्रथ के कर्त्ता पद्मनाभ मिश्र का वर्णन करते है, परतु वे इनसे भिन्न है। सुधाकर द्विवेदी ने निश्चयपूर्वक नही कहा है कि दोनो एक ही है या भिन्न।

श्रीधर

श्रीधर भी बीजगणित के आचार्य थे, जिनका उल्लेख भास्कराचार्य ने बीजगणित मे कई जगह किया है। डाक्टर दत्त और सिह के मत से इनका समय ७५० ई० के लगभग है, जो ६७२ शक के लगभग ठहरता है। इनकी पुस्तक का नाम त्रिशतिका है जिसकी एक प्रति गणक-तरगिणी[3] के अनुसार काशी के राजकीय पुस्तकालय में और एक प्रति प० सुधाकर द्विवेदी के मित्र राजाजी ज्योतिर्विद के पास थी। इसमें ३०० श्लोक है, जिसके एक श्लोक से विदित होता है कि यह श्रीधर के किसी बडे ग्रथ का सार है। यह प्रधानत पाटीगणित की पुस्तक है जिसमे श्रेढी व्यवहार, क्षेत्र व्यवहार, खात व्यवहार, चिति व्यवहार, राशि व्यवहार, छाया, व्यवहार आदि पर विचार किया गया है। सुधाकर द्विवेदी का मत है कि न्याय-कन्दली नामक ग्रथ के रचयिता भी यही श्रीधर है। उस ग्रथ की रचना ९१३ शक मे की गयी थी, इसलिए श्रीधर का समय भी यही है। परतु यह ठीक नही है, क्योकि इस मत का समर्थन न तो दीक्षित करते है और न डा० दत्त और सिह। दीक्षित[4] कहते है कि महावीर के गणितसारसग्रह नामक ग्रथ मे श्रीधर के मिश्रकव्यवहार के कुछ वाक्य आये है, जिनसे प्रकट होता है कि श्रीधर महावीर के पहले हुए है और महावीर का समय दीक्षित

[1] हिस्ट्री आव हिन्दू मैथिमैटिक्स, भाग २, पृ० १२ की पाद टिप्पणी।

[2] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २२९।

[3] गणक-तरगिणी, पृष्ठ २२।

[4] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३०।

के मत[1] से ७७५ शक तथा डा० दत्त और सिह के मत[2] से ८५० ई० या ७७२ शक होता है।

महावीर

महावीर बीजगणित और पाटीगणित के प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं, जिनके ग्रथ गणितसारसग्रह के अनेक अवतरण डा० दत्त और सिह ने अपने हिंदूगणित के इतिहास मे दिये है। इनका समय ८५० ई० अथवा ७७२ शक कहा जाता है। यह जैनधर्मी थे और जैनधर्मी राजा अमोघवर्ष के आश्रय मे रहते थे। राष्ट्रकूट वश के राजा अमोघवर्ष ७७५ शक के लगभग थे, इसलिए यही इनका समय समझना चाहिए। दीक्षित के अनुसार गणितसारसग्रह भास्कराचार्य की लीलावती के सदृश है, परतु विस्तार मे उससे बडा है। गणक-तरगिणी मे इनकी कही चर्चा नहीं है।

आर्यभट द्वितीय

आर्यभट द्वितीय गणित और ज्योतिष दोनो विषयो के अच्छे आचार्य थे। उनका बनाया हुआ महासिद्धात ग्रथ ज्यौतिष सिद्धात का अच्छा ग्रथ है। इन्होने भी अपना समय कही नही लिखा है। डा० दत्त और सिह का मत[3] है कि ये ९५० ई० के लगभग थे, जो शककाल ८७२ होता है। दीक्षित भी इनका समय लगभग ८७५ शक बताते है, इसलिए यही समय ठीक समझना चाहिए। गणक-तरगिणी मे इनकी चर्चा तक नही है, यद्यपि सुधाकर द्विवेदी ने इनके महासिद्धात का स्वय सम्पादन किया है। सुधाकर द्विवेदी इसकी भूमिका मे केवल इतना लिखते है कि भास्कराचार्य ने दृक्काणोदय के लिए जिस आर्यभट की चर्चा की है वह आर्यभट प्रथम नही हो सकते, क्योकि उनके ग्रथ आर्यभटीय मे दृक्काणोदय की गणना नही है, परतु महासिद्धात मे है, इसलिए महासिद्धात के रचयिता आर्यभट दूसरे है जो भास्कराचार्य से पहले के है। यही बात दीक्षित भी लिखते है। परतु यह ब्रह्मगुप्त के पीछे हुए है, क्योकि ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की जिन बातो का खण्डन किया है वे आर्यभटीय से मिलती हैं, महासिद्धात से नही। महासिद्धात से तो प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की जिन-जिन बातों का खण्डन किया है वे इसमे सुधार दी गयी

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३०।

[2] हिस्ट्री आव हिंदू मैथिमैटिक्स, भाग २, पृष्ठ २०।

[3] हिस्ट्री आव हिंदू मैथिमैटिक्स, भाग २, पृष्ठ ८९।

है। कुट्टक की विधि मे भी आर्यभट प्रथम, भास्कर प्रथम तथा ब्रह्मगुप्त की विधियो से कुछ उन्नति दिखायी पडती है, इसलिए इसमे सदेह नही है कि आर्यभट द्वितीय ब्रह्मगुप्त के बाद हुए है।

ब्रह्मगुप्त और लल्ल ने अयन-चलन के सबध मे कोई चर्चा नही की है, परतु आर्यभट द्वितीय ने इस पर बहुत विचार किया है। मध्यमाध्याय के श्लोक ११-१२ मे इन्होने अयनविन्दु को ग्रह मानकर इसके कल्पभगण की सख्या ५७८१५९ लिखी है, जिससे अयनविन्दु की वार्षिक गति १७३ विकला होती है, जो बहुत ही अशुद्ध है। स्पष्टाधिकार मे स्पष्ट अयनाश जानने के लिए जो रीति बतायी गयी है उससे प्रकट होता है कि इसके अनुसार अयनाश २४ अश से अधिक नही हो सकता और अयन की वार्षिक गति भी सदा एक-सी नही रहती, कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढते-बढते १७३ विकला हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट द्वितीय का समय वह था जब अयनगति के सबध मे हमारे सिद्धातो मे कोई निश्चय नही हुआ था। मुजाल के लघुमानस मे अयन-चलन के सबध मे स्पष्ट उल्लेख है, जिसके अनुसार एक कल्प मे अयनभगण १९९६६९ होता है, जो वर्ष मे ५९ ९ विकला होता है। मुजाल का समय ८५४ शक है, इसलिए आर्यभट द्वितीय का समय इससे भी कुछ पहले होना चाहिए। महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के मत से इनका समय ८०० शक के लगभग होना चाहिए।

इन्होने लिखा है[1] कि इनका सिद्धात और पराशर का सिद्धात दोनो एक साथ कलियुग के आरम्भ से कुछ वर्षो के बाद लिखे गये थे और इनकी ग्रह-गणना ऐसी है कि वेध से भी शुद्ध उतरती है। परतु यह कोरी कल्पना है, क्योकि वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, लल्ल आदि किसी आचार्य ने इनकी पुस्तक की कोई चर्चा नही की है। इन्होने सप्तर्षि की चाल के सबध मे भी वैसा ही लिखा है जैसा वराहमिहिर लिखते है, जिससे जान पडता है कि सप्तर्षि १०० वर्ष मे एक नक्षत्र चलते है। परतु यह भी कोरी कल्पना है। सप्तर्षि मे ऐसी कोई गति नही है।

सख्या लिखने की नवीन पद्धति

इनकी पुस्तक मे सख्या लिखने के लिए एक नवीन पद्धति बतायी गयी है, जो आर्यभट प्रथम की पद्धति से भिन्न है। इसे 'कटपयादि' पद्धति कहते है, क्योकि

[1] एतत्सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौयुगे जातम्।
स्वस्थानेदृक्तुल्या अनेन खेटाः स्फुटा· कार्याः ॥२॥

पराशरमताध्याय

१ के लिए **क, ट, प, य** अक्षर प्रयुक्त होते है, २ के लिए **ख, ठ, फ, र,** आदि। शून्य के लिए केवल **ञ** और **न** प्रयुक्त होते है।[1] सख्या लिखने के लिए अक्षरो को बाये से क्रमानुसार लिखते है, ठीक वैसे ही जैसे अको से सख्याएँ लिखी जाती है। स्वर या उसकी मात्राओ का इस पद्धति मे कोई मूल्य नही है। मात्राओ के जोडने से भी अक्षरो का वही अर्थ होता है जो बिना मात्रा के। वे केवल उच्चारण की सुविधा के लिए जोड दी जाती है। इस प्रकार **क, का, कि, कू** आदि से १ अक का ही बोध होता है। यह रीति आर्यभट प्रथम की रीति से सुगम है, क्योकि याद रखने का काम बहुत कम है। सक्षेप मे यह रीति नीचे दी जाती है

क, ट, प, य	=	१
ख, ठ, फ, र	=	२
ग, ड, ब, ल	=	३
घ, ढ, भ, व	=	४
ङ, ण, म, श	=	५
च, त, ष	=	६
छ, थ, स	=	७
ज, द, ह	=	८
झ, ध	=	९
ञ, न	=	०

इस पद्धति के अनुसार आर्यभट प्रथम के उदाहरण मे दिये गये एक कल्प में सूर्य और चद्रमा के भगण इस प्रकार लिखे जायँगे

१ कल्प मे सूर्य के भगण = घडफेननेननननुनीना
= ४३२००००००,

और १ कल्प मे चद्रमा के भगण = मथयमगग्लभननुना
= ५७७५३३३४०००।

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि यह पद्धति लिखने और याद रखने के लिए सुगम है।

[1] रूपात् कटपयपूर्वा वर्णा वर्णक्रमाद्भवन्त्यङ्काः।
ञनौ शून्यं प्रथमार्थ आ छेदे ऐ तृतीयार्थे ॥२॥

मध्यमाध्याय

इति० १३

इस ग्रन्थ में १८ अधिकार है और लगभग ६२५ आर्या छन्द है। पहले १३ अध्यायो के नाम वे ही है जो सूर्य-सिद्धात या ब्राह्मस्फुट सिद्धात के ज्योतिष सबधी अध्यायो के है, केवल दूसरे अध्याय का नाम है पराशरमताध्याय। १४वें अध्याय का नाम गोलाध्याय है, जिसमे ११ श्लोको तक पाटीगणित या अकगणित के प्रश्न है। इसके आगे के तीन श्लोको मे भूगोल के प्रश्न है और शेष ४३ श्लोकों में अहर्गण और ग्रहो की मध्यम गति के सबध मे प्रश्न है। १५वे अध्याय मे १२० आर्या छद है जिनमे पाटीगणित, क्षेत्रफल, घनफल आदि विषय है। १६वे अध्याय का नाम भुवनकोश-प्रश्नोत्तर है जिसमे खगोल, स्वर्गादि लोक, भूगोल आदि का वर्णन है। १७वाँ प्रश्नोत्तराध्याय है जिसमे ग्रहो की मध्यगति सबधी प्रश्न है। १८वें अध्याय का नाम कुट्टकाध्याय है जिसमे कुट्टक सबधी प्रश्नो पर ब्राह्मस्फुट सिद्धात की अपेक्षा कही अधिक विचार किया गया है। इससे भी प्रकट होता है कि आर्य-भट द्वितीय ब्रह्मगुप्त के पश्चात हुए है।

मुजाल या मजुल

मुजाल का समय प० सुधाकर द्विवेदी ने गणक-तरगिणी, पृष्ठ १९,२०, मे कोल-ब्रुक के मतानुसार भ्रमवश ५८४ शक लिख दिया है जो होना चाहिए ८५४, क्योकि इन्होने अपने लघुमानस नामक ग्रथ में ग्रहो का ध्रुवकाल ८५४ शक बताया है, जिसको द्विवेदी जी भी उद्धृत करते है, 'कृतेष्विभमिते, शाके ८५४ मध्याह्ने रविवासरे चैत्रादौ ध्रुवकान् वक्ष्ये रविचन्द्रेन्दुतुङ्गजान्।' इस समय की सच्चाई इनके अयन-चलन सबधी बातो से भी सिद्ध होती है। भास्कराचार्य द्वितीय ने[1] मुजाल की बतायी अयन गति लिखी है। मुनीश्वर ने अपनी मरीचि नामक टीका मे मुजाल के वचन[2] उद्धृत किये है, जिनसे सिद्ध होता है कि मुजाल के अनुसार एक कल्प मे अयन के १९९६६९ भगण होते है, इससे अयन की वार्षिक गति १ कला के लगभग आती है, जो प्रायः ठीक है। अलबीरूनी के अनुसार इस पुस्तक मे यह भी लिखा था कि उस समय अयनाश ६°५०' था। इसलिए यह निश्चित है कि मुजाल का समय ८५४ शक या ९३२ ई० है।

[1] गोलबन्धाधिकार, १८।

[2] तद्भगणाः कल्पे स्युर्गोरसरसगोंकचन्द्र १९९६६९ मितः॥ भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० ३१३।

मुजाल एक अच्छे ज्योतिषी थे इसमे कोई सन्देह नही। तारो का निरीक्षण कर के नयी बाते निकालने का श्रेय इनको मिलना चाहिए। इनके पहले अयन-गति के सबध मे किसी पौरुष सिद्धान्त-ग्रथ मे कोई चर्चा नही है। दूसरी महत्त्व की बात इनकी चद्र सम्बन्धी है। इनके पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने नही लिखा था कि चद्रमा मे मन्दफल सस्कार के सिवा और कोई सस्कार भी करना चाहिए। परतु इन्होने यह स्पष्ट लिखा है, इसकी चर्चा सुधाकर द्विवेदी[1] ने भी की है।

लघुमानस मुजाल का लिखा ग्रथ है, जिसमें ज्योतिष सबधी आठ अधिकार हैं। यह वृहन्मानस नामक ग्रथ का सक्षिप्त रूप है, जैसा अलबीरूनी लिखते हैं। वृहन्मानस के कर्त्ता कोई मनु है, इस ग्रथ की टीका उत्पल ने लिखी है; इसलिए इसका समय ८०० शक के लगभग है।

उत्पल

उत्पल या भटोत्पल ज्योतिष ग्रथो के बडे भारी टीकाकार थे। बृहज्जातक की टीका मे इन्होने लिखा है कि ८८८ शक (९६६ ई०) के चैत्र शुक्ल ५ गुरुवार को इसकी टीका लिखी गयी, और वृहत्सहिता की टीका मे लिखा गया है कि ८८८ शक की फाल्गुन कृष्ण द्वितीया गुरुवार को यह विवृति लिखी गयी। दीक्षित ने[2] इस पर शका प्रकट की है कि ये सवत गत नही है वर्तमान हैं, परतु उनकी यह शका निर्मूल जान पडती है। ये दोनों गत शक सवत है। दूसरी तिथि अमान्त फाल्गुन मास की है जिसे उत्तर प्रात की परिपाटी के अनुसार चैत्र कृष्ण कहा जा सकता है। खण्डखाद्यक की टीका इससे भी पहले लिखी गयी थी[3] क्योकि वृहत्सहिता की टीका में इसकी चर्चा है। लघुजातक पर भी इनकी टीका है।

वृहत्सहिता की टीका से पता चलता है कि इन्होने प्राचीन ग्रन्थो का गहरा अध्ययन किया था। वराहमिहिर ने जिन-जिन प्राचीन ग्रथो के आधार पर वृहत्सहिता की रचना की थी उन सब ग्रथो के अवतरण देकर इन्होने अपनी टीका की रचना

[1] चन्द्रोच्चरव्यन्तरेण रविचन्द्रान्तरेण च स्पष्टचन्द्रे तदीयमतौ चान्यः संस्कारश्च पूर्वाचार्यप्रणीतसंस्कारतो विलक्षणः प्रतिपादितः। ....अयं संस्कारश्च इवेक्शन् वेरिएशन् नामकसंस्कारवत् प्रतिभाति। [गणकतरंगिणी, पृ० २]

[2] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २३४।

[3] वही, पृष्ठ २३४।

की है[१]। इससे यह भी पता चलता है कि वराहमिहिर के पहले सहिता पर ८, १० आचार्यो ने ग्रथ लिखे थे। इस टीका मे सूर्य-सिद्धात के जो वचन उद्धृत किये गये है वे इस समय के सूर्य-सिद्धात मे नही मिलते। वराहमिहिर के पुत्र की लिखी षट्पचाशिका की भी इन्होने टीका लिखी है, जिसमे शुभाशुभ प्रश्न पर विचार किया गया है।

पृथूदक स्वामी

पृथूदक स्वामी ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धात पर एक टीका लिखी है। भास्कराचार्य द्वितीय ने अपने ग्रथो मे इनकी चर्चा कई स्थानो पर की है। दीक्षित के मत से यह भटोत्पल के समकालीन है। परन्तु बबुआ मिश्र की सम्पादित खण्डखाद्यक की आमराज की टीका मे लिखा है[२] कि शक ८०० मे इन्होने अयनाश ६½ अश देखा था। इस प्रकार इनका समय मुजाल से भी पहले का सिद्ध होता है। परतु भास्कराचार्य आदि ने इसका उल्लेख कही नही किया है। इन्होने खण्डखाद्यक की टीका भी की है, जिसकी चर्चा प्रबोधचद्र सेनगुप्त अपनी टीका मे करते है।[३]

श्रीपति

श्रीपति ज्योतिष की तीनो शाखाओ के अद्वितीय पडित थे। इनके लिखे ग्रथ है : सिद्धातशेखर, धीकोटिकरण, रत्नमाला (मुहूर्त ग्रथ), और जातक-पद्धति (जातक ग्रन्थ)। धीकोटिकरण मे गणित का जो उदाहरण दिया गया है उसमे ९६१ शक[४] की चर्चा है, इसलिए श्रीपति का समय इसी के लगभग सन १०३९ ई० हो सकता है। प्रबोधचद्र सेनगुप्त[५] के अनुसार श्रीपति के पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने काल-समीकरण के उस भाग का पता नही लगा पाया था जो रविमार्ग की तिर्यक्ता के कारण उत्पन्न होता है।

[१] वही, पृष्ठ २३५।

[२] चतुर्वेदपृथूदकस्वामिना त्वेतदसद्दूषणमित्यभिहितम्। यतस्तेन खखाष्टसख्यशाके सार्द्धाः षट्द्रष्टा इति। कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित और बबुआ मिश्र की सम्पादित खण्डखाद्यक की टीका, पृ० १०८।

[३] भूमिका, २३, ३४।

[४] चन्द्राङ्गनन्दोनशकोऽर्कनिघ्नश्चैत्रादिमासैर्युगधो द्विनिघ्नः, गणक-तरगिणी, पृष्ठ ३०।

[५] खण्डखाद्यक की अँग्रेजी टीका, पृष्ठ ९३।

भोजराज

राजमृगाङ्क नामक करणग्रथ के बनाने वाले राजा भोज कहे गये है। यह ग्रथ ब्रह्मसिद्धात के ग्रहो मे बीज-सस्कार देकर बनाया गया है। इसका आरम्भ-काल शक ९६४ है[1] और इसी समय के ग्रहो का क्षेपक[2] दिया गया है। यह नही कहा जा सकता कि इसके रचने वाले स्वय राजा भोज है अथवा उनका आश्रित कोई ज्योतिषी। इस पुस्तक का आदर चार-पाँच सौ वर्ष रहा। इनने मध्यमाधिकार और स्पष्टाधिकार के केवल ६९ श्लोक है[3]। अयनाश जानने का नियम भी दिया गया है।

ब्रह्मदेव

ब्रह्मदेव का लिखा करणप्रकाश नामक एक करणग्रथ है। इसका आरभ १०१४ शक (१०९२ ई०) मे किया गया था और इसका आधार आर्यभटीय है। ग्रहो की गणना के लिए आर्यभट के ध्रुवाङ्को मे लल्ल के बीज-सस्कार देकर काम लिया गया है। क्षेपक[2] चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार शाके १०१४ का है। इसमें ९ अधिकार है, जिनमे ज्योतिष सबधी सभी बाते आ गयी है। इस ग्रथ मे ४४५ शक को शून्य अयनाश का समय माना गया है और अयनाश की वार्षिक गति एक विकला मानी गयी है। यह ग्रन्थ आर्य पक्ष का है, इसलिए दक्षिण के माध्व सप्रदाय के वैष्णव इसी के अनुसार एकादशी व्रत का निश्चय करते आ रहे है[4]।

शतानन्द

भास्वतीकरण नामक करणग्रथ वराहमिहिर के सूर्य-सिद्धात के आधार पर बनाया गया है। इसके लेखक शतानन्द है जिन्होने ग्रथ का आरंभ १०२१ शक (१०९९ ई०) में किया था। यह ग्रथ बहुत प्रसिद्ध था। मलिक मोहम्मद जायसी

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २३८।

[2] किसी पुस्तक की ग्रहगणना के आरंभ काल में सूर्य, चद्र, आदि ग्रहों की जो स्थिति होती है उसे क्षेपक कहते हैं। इसको आगे होने वाली ग्रह की गति में जोड देने से उस समय की ग्रह-स्थिति ज्ञात हो जाती है।

[3] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २३९।

[4] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २२४।

ने अपनी पद्मावत मे इसकी चर्चा की है। इसकी कई टीकाएँ सस्कृत मे है। इस ग्रथ की कुछ विशेषताएँ नीचे दी जाती है

ग्रहो का क्षेपक शक १०२१ की स्पष्ट मेष सक्रान्ति काल (गुरुवार) का है। दूसरी विशेषता यह है कि इसमे अहर्गण की गणना से ग्रहो को स्पष्ट करने की रीति नही है, वरन् ग्रहो की वार्षिक गति के अनुसार है, जिससे गणना करने मे बडी सुविधा होती है, गुणा भाग नही करना पडता, केवल जोडने से काम चल जाता है। तीसरी विशेषता यह है कि इन्होने शताश पद्धति से काम लिया है, अर्थात राशि, अश, कला, विकला, आदि लिखने की जगह राशि के सवे भागो मे अथवा नक्षत्र के सवे भागों में ग्रह-स्थिति बतायी है। उदाहरणत चन्द्रमा की एक वर्ष की गति $\text{९९५}\frac{\text{५}}{\text{६}}$ नक्षत्र (शताशो मे) बतायी गयी है, जिसका अर्थ है[1].

$$\frac{\text{९९५}\frac{\text{५}}{\text{६}}}{\text{१००}}\text{ नक्षत्र} = \frac{\text{९९५}\frac{\text{५}}{\text{६}}}{\text{१००}} \times \text{८०० कला}$$

$$= \text{७९६६}\frac{\text{२}}{\text{३}}\text{ कला}$$

$$= \text{४ राशि १२ अश ४६ कला ४० विकला।}$$

शनि का क्षेपक ५९४ शताश राशि है, जिसका अर्थ दशमलव भिन्न मे हुआ ५ ९४ राशि। इस प्रकार प्रकट है कि शतानन्द ने दशमलव भिन्न का व्यावहरिक प्रयोग किया था। शायद शताश पद्धति के पक्षपाती होने के कारण उन्होने अपना नाम भी शतानन्द रक्खा था।

भास्वती मे तिथिध्रुवाधिकार, ग्रहध्रुवाधिकार, स्फुट तिथ्यधिकार, ग्रहस्फुटाधिकार, त्रिप्रश्न, चद्रग्रहण, सूर्य-ग्रहण, परिलेख नामक आठ अधिकार है। इसमें शक ४५० सून्य अयनाश का वर्ष माना गया है और अयनाश की वार्षिक गति १ कला मानी गयी है।

भास्वती की कई टीकाएँ हुई है। एक टीका हिंदी भाषा मे सवत १४८५ वि० (शक १३५०, १४२८ ई०) मे बनमाली पडित ने की थी, जिसकी एक खडित-प्रति काशी के सरस्वती भवन मे है[2]।

इस समय के आस-पास और कई ज्योतिषी हो गये है जिन्होने करणग्रथों की रचना की है, परन्तु इनका नाम न गिनाकर अब हम प्रसिद्ध भास्कराचार्य का वर्णन करेगे, जिनकी कीर्ति सात सौ वर्ष तक फैली रही और जिनकी बनायी पुस्तके,

[1] भारतीय ज्योतिष शास्त्र, पृ० २४४

[2] गणक-तरगिणी, पृ० ३३

सिद्धातशिरोमणि और लीलावती, अब तक भारतीय ज्योतिष के विद्यार्थियो को पढनी पडती है। इसी नाम के एक ज्योतिषी आर्यभट प्रथम की शिष्य-परपरा मे भी थे, इसलिए इनका नाम भास्कराचार्य द्वितीय रक्खा जायगा।

भास्कराचार्य द्वितीय

भास्कराचार्य द्वितीय ने अपना जन्म-स्थान सह्याद्रि पर्वत के निकट विज्जडविड ग्राम लिखा है, परतु पता नही इसका वर्तमान नाम क्या है। इन्होने अपना जन्मकाल तथा ग्रन्थनिर्माण-काल स्पष्ट भाषा मे लिखा है[1]। इनका जन्म शक १०३६ (१११४ ई०) मे हुआ था और ३६ वर्ष की आयु मे इन्होने सिद्धात-शिरोमणि की रचना की। करण-कुतूहल ग्रन्थ का आरम्भ ११०५ शक मे हुआ था, इसलिए यही इसका रचनाकाल है, जो ११८३ ई० होता है। इससे प्रकट होता है कि करण-कुतूहल की रचना ६९ वर्ष की अवस्था मे की गयी थी। इनके बनाये चार ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है १— सिद्धात-शिरोमणि, दो भागो मे, जिनके नाम गणिताध्याय और गोलाध्याय है, २—लीलावती, ३—बीजगणित और ४—करण-कुतूहल। सिद्धातशिरोमणि पर इन्होने स्वय वासना भाष्य टीका लिखी है, जो सिद्धात-शिरोमणि का अग समझी जाती है और साथ ही साथ छपती है।

लीलावती और बीजगणित भी यथार्थ मे सिद्धात-शिरोमणि के ही अग माने गये है (और इनके अत मे यह लिख भी दिया गया है), क्योकि सिद्धात-ज्योतिष का पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब विद्यार्थियो को पाटीगणित का, जिसमें क्षेत्रफल, घनफल आदि विषयो का भी समावेश है, तथा बीजगणित का आवश्यक ज्ञान हो।

लीलावती

लीलावती नामक ग्रथ में लीलावती नामक लडकी को सबोधन करके प्रश्नोत्तर के रूप मे पाटीगणित, क्षेत्रमिति, आदि के प्रश्न बहुत रोचक ढग से बताये गये है। इसमे वे सब विषय आ गये है जिनकी चर्चा ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के शुद्ध गणित भाग

[1] रसगुणपूर्णमहीसमशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्ति.।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥५८॥
गोलाध्याय का प्रश्नाध्याय

मे की गयी है। अत मे गणितपाश (क्रमचय[1]) नामक एक अध्याय और है। इसकी भाषा बडी ललित है। इसकी सस्कृत और हिंदी टीकाएँ कई है, जो बम्बई और लखनऊ से प्रकाशित होकर ज्योतिष के विद्यार्थियो के काम मे आती है। इसकी कई प्राचीन टीकाएँ भी है, जैसे गगाधर की गणितामृत सागरी (१३४२ शक), ग्रह-लाघवकार गणेश दैवज्ञ की बुद्धिविलासिनी (१४६७ शक), धनेश्वर दैवज्ञ की लीला-वतीभूषण, मुनीश्वर की लीलावतीविवृति (१५४७ शक), महीधर की लीलावती-विवरण, रामकृष्ण की गणितामृतलहरी, नारायण की पाटीगणित-कौमुदी, राम-कृष्ण देव की मनोरजना, रामचद्र कृत लीलावती-भूषण, विश्वरूप की निसृष्ट-दूती, सूर्यदास की गणितामृतकूपिका, इत्यादि। वर्तमान काल मे प० बापूदेव शास्त्री की टिप्पणी और प० सुधाकर द्विवेदी की उपपत्ति सहित टीकाएँ भी प्रकाशित हुई है।

अन्य ग्रथ

भास्कराचार्य के बीजगणित पर कृष्ण दैवज्ञ की बीजनवाकुर (शक १५२४) और सूर्यदास की टीका प्रसिद्ध है। उपपत्ति के साथ इसकी टीका प० सुधाकर द्विवेदी ने भी की है। इनके अतिरिक्त और भी कई टीकाएँ है।

सिद्धात-शिरोमणि (गणिताध्याय और गोलाध्याय) ज्योतिष सिद्धात का एक उत्तम और प्रसिद्ध ग्रथ है। इसमे ज्योतिष सिद्धात की सभी बाते विस्तार और उपपत्ति के साथ बतायी गयी है जिनका वर्णन ब्राह्मस्फुट-सिद्धात अथवा महासिद्धात मे है। इसकी अनेक टीकाएँ है। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की एक टीका है। नृसिंह ने वासनाकल्पलता अथवा वासनावार्तिका नामक टीका १५४३ शक मे लिखी थी, मुनीश्वर या विश्वरूप की मरीचि नामक टीका बहुत उत्तम और विस्तार के साथ १५५७ शक मे लिखी गयी थी। आर्यभटीय के टीकाकार परमादीश्वर ने सिद्धात-दीपिका नामक टीका की थी। रगनाथ की मितभाषिणी नामक टीका शक १५८० के लगभग लिखी गयी थी। इस ग्रथ का ब्योरेवार विवरण आगामी अध्याय मे दिया जायगा।

[1] क्रमचय वह संख्या है जो बताती है कि दिये हुए समूह में से गिनती में दी हुई संख्या के बराबर वस्तुएँ निकाल कर कुल कितने विभिन्न क्रमो में रक्खी जा सकती हैं।

अध्याय १४

सिद्धांतशिरोमणि और करण-कुतूहल

गोलप्रशसा

सिद्धातशिरोमणि के गोलाध्याय मे पद्रह अध्याय है, जिनमे से पहले का नाम गोलप्रशसा है । मगलाचरण के बाद इस अध्याय मे बताया गया है कि ज्योतिषी को क्या-क्या जानना चाहिए। इस पर बल दिया गया है कि शुभाशुभ बताने के लिए भी गणित और गणित-ज्योतिष जानना आवश्यक है । अतिम श्लोक मे भास्कराचार्य ने अपनी पुस्तक की प्रशसा इन शब्दो मे की है

गोलं श्रोतु यदि मतिर्भास्करीयं श्रृणु त्व
नो सक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तरः शास्त्रतत्त्वम् ।
लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्यः स यस्माद्
विद्वन ! विद्वत्सदसि पठतां पडितोक्तिं व्यनक्ति ॥९॥

अर्थ—हे पडित ! यदि तुम्हारी इच्छा गणित-ज्योतिष सुनने की है तो भास्कराचार्य कृत पुस्तक को सुनो । वह न तो सक्षिप्त है और न व्यर्थ विस्तृत ही है । उसमे शास्त्र का तत्त्व है । उसमे सुन्दर पद है और मनोरम प्रश्न है । वह सुगमता से समझी जा सकती है और उसे पडितो की सभा मे सुनाने से पडिताई प्रकट होती है[१] ।

गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय

दूसरा अध्याय गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय है । इसमे दस श्लोक है और सभी मे पाठक ग्रथ के रचयिता से प्रश्न पूछता है । उदाहरणत , प्रथम श्लोक का यह अर्थ है

[१] पंडित गिरजाप्रसाद द्विवेदी का सटीक सस्करण (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ); यहाँ अर्थ अधिकतर इसी पुस्तक से लिये गये हैं ।

यह पृथ्वी ग्रह-नक्षत्रो से वेष्टित, भ्रमण करते हुए राशिचक्र के भीतर, आकाश मे कैसे ठहरी है जिससे नीचे नही गिर सकती ? इसका स्वरूप और मान क्या है ?

टेढे प्रश्न भी है, जैसे यह कि "हे गोलज्ञ ! रविमार्ग के बराबर-बराबर बारह भाग, जो बारह राशियाँ है, बराबर समयो मे क्यो नही उदित होते ? और वे सब देशो मे एक समय मे क्यो नही उदित होते ?"

भुवनकोश

भुवनकोश नामक तीसरे अध्याय मे विश्व का रूप बताया गया है। कहा गया है कि पृथ्वी क्रमानुसार चद्र, बुध, शुक्र, रवि, मगल, बृहस्पति और नक्षत्रो की कक्षाओ से घिरी हुई है। इसका कोई आधार नही है, केवल अपनी शक्ति से स्थिर है। इसके पृष्ठ पर सदा असुर, मनुष्य, देव और दैत्य आदि के सहित दुनिया स्थित है। कदब के फूल की गाँठ जैसे चारो ओर केसरो से घिरी रहती है वैसे ही पृथ्वी भी चारो ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, यज्ञशाला आदि से घिरी है।

उनके मत का जोरदार शब्दो मे खडन किया गया है जो कहते थे कि पृथ्वी किसी आधार पर टिकी है। लिखा है कि "यदि भूमि किसी साकार वस्तु के आधार पर स्थित है तो उस आधार का भी कोई आधार होना चाहिए। यो प्रत्येक वस्तु के लिए किसी दूसरे आधार की कल्पना करते चले तो अनवस्था[1] हो जायगी। यदि अत मे निजी शक्ति की कल्पना की जाय तो वह पहले ही से क्यो न की जाय ? . पृथ्वी मे आकर्षण-शक्ति है, उससे वह आकाश मे फेकी गयी भारी वस्तुओ को अपनी ओर खीचती है और वह भारी वस्तु गिरती हुई दिखायी पड़ती है, परतु पृथ्वी कही नही गिर सकती, क्योकि आकाश सब ओर समान है . ।

बौद्धो के कथन का कि पृथ्वी गिरती है और जैनो के कथन का कि दो सूर्य हैं, दो चद्र है, जिनका एकातर से उदय होता है बहुत बलपूर्वक खडन किया गया है। उनके मत का भी खडन किया गया है जो कहते है कि पृथ्वी समतल (सपाट) है और मेरु पर्वत के पीछे सूर्य के छिप जाने से रात्रि होती है। बताया है कि जैसे वृत्त की परिधि का छोटा-सा भाग सीधा जान पडता है, वैसे ही "इस बडी भारी भूमि की

[1] न्याय में एक प्रकार का दोष, यह उस समय होता है जब तर्क करते-करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो, जैसे कारण का कारण, और भी उसका कारण, फिर उसका भी कारण—हिंदी-शब्द सागर।

तुलना मे, मनुष्य के अत्यत क्षुद्र होने के कारण , भूमि के ऊपर उसकी दृष्टि जहाँ तक जाती है, वह सब सपाट ही जान पडती है ।"

फिर बताया गया है कि पृथ्वी कैसे नापी जा सकती है । कहा है कि भूमध्य रेखा से उज्जयनी की दूरी नाप कर उसे १६ से गुणा करने पर पृथ्वी की परिधि ज्ञात होगी, क्योकि उज्जयनी का अक्षाश २२½ अश, अर्थात $\frac{१}{१६}$ × ३६० अश, है । इसके बाद लका, यमकोटि, रोमकपत्तन, सिद्धपुर, सुमेरु और बडवानल की परिभाषाएँ या स्थितियाँ बतायी गयी है । फिर कुछ भौगोलिक बाते बतायी गयी है, जो बहुत ठीक नही है । वे केवल पौराणिक परपरा से सकलित जान पडती है ।

श्लोक ४८ मे बताया गया है कि भूमध्य रेखा पर खगोल (आकाशीय गोल) कैसा दिखायी पडेगा "भूमध्य रेखा पर मनुष्य दक्षिण और उत्तर दोनो ध्रुवो को क्षितिज पर देखेगा और आकाश को अपने सिर के ऊपर जलयत्र (रहट) की तरह घूमता हुआ देखेगा", जो पूर्णतया सत्य है । इसके बाद ध्रुव के उन्नताश और स्थान के अक्षाश मे सबध बताया गया है । फिर पृथ्वी की परिधि, उसका व्यास और उसके पृष्ठ का क्षेत्रफल बताया गया है । इसमे परिधि और व्यास का अनुपात बहुत शुद्ध (३ १४१६) लिया गया है । भास्कराचार्य ने पृष्ठ के क्षेत्रफल के सबध मे लल्लाचार्य की गणना को अशुद्ध बताया है, जो उचित ही है । लल्ल ने अशुद्ध सूत्र से गणना की थी, क्योकि उन्होने परिधि से वृत्त के क्षेत्रफल को गुणा किया था । भास्कराचार्य ने परिधि को व्यास से गुणा किया है, जो पूर्णतया शुद्ध है ।

मध्यमगतिवासना

मध्यगतिवासना नामक चौथे अध्याय में सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की मध्य गतियाँ दी गयी हैं । प्रथम तीन श्लोको में बताया गया है कि पृथ्वी के ऊपर सात स्तर वायुओ के है । पहले मे मेघ आदि है । उसके ऊपर वे वायु है? जिससे चद्रमा, सूर्य, मगल, आदि, चलते रहते है । विचार करने की बात है कि बहुत पहले ही आर्यभट ने आर्यभटीय मे लिखा था कि "जैसे नाव पर चढे हुए मनुष्य को, जिधर वह जाती है उससे विपरीत दिशा मे, किनारे के अचल वृक्ष आदि चलते हुए प्रतीत होते है, इसी प्रकार भूमध्य रेखा पर अचल नक्षत्र पूर्व से पश्चिम दिशा मे जाते हुए प्रतीत होते है"; परतु आर्यभट के इस सिद्धात को कि पृथ्वी घूमती है और तारे अचल है, न तो लल्ल, श्रीपति आदि ने माना, और न भास्कराचार्य ने ।

इसके बाद समझाया गया है कि क्यो सूर्य, चद्रमा आदि की गतियाँ विभिन्न होती है, यद्यपि ये सब पिड एक ही वायु से सचालित होते है । कारण यह बताया गया

है कि उनमे स्वगति भी होती है । "जैसे कुम्हार के चाक पर चीटी विलोम दिशा मे चलने पर भी चाक के घूमने के कारण कुल मिलाकर आगे ही बढती है", इसी प्रकार सूर्य आदि भी ।

फिर, श्लोक ८ से अध्याय के अत तक (श्लोक २५ तक) सौर वर्ष, चाद्र मास और अधिमास की परिभाषाएँ तथा उनके मान, कितने-कितने दिनो पर अधिमास लगते है, अधिमास सबधी कुछ अन्य प्रश्न और उनके उत्तर, तथा कुछ अन्य बाते बतायी गयी है । सौर वर्ष आदि बताने की वह रीति नही अपनायी गयी है जो सूर्य-सिद्धात मे है । यहाँ बताया गया है कि सौर वर्ष ३६५ दिन १५ घडी ३० पल और २२/३० विपल का होता है; सूर्य-सिद्धात मे युग मे वर्षो की सख्या बतायी गयी थी ।

ज्योत्पत्ति और छेद्यकाधिकार

पाँचवाँ अध्याय ज्योत्पत्ति है । इसमे त्रिकोणमिति के कुछ सूत्र दिये गये है और कुल ६ श्लोक है । आगामी अध्याय छेद्यकाधिकार है । इसमे वे नियम दिये गये है जिनसे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्फुट स्थितियाँ, अर्थात वे स्थितियाँ जिनमे ये पिंड वस्तुत दिखायी पडते है, जानी जा सकती है । इस अध्याय मे दोनो सिद्धात दिये गये है, एक तो वह जो सूर्य-सिद्धात के सबध मे बताया गया है, अर्थात सूर्य या चद्रमा एक छोटे वृत्त मे चलता है, जिसका केद्र एक बडे वृत्त मे चलता है, और दूसरा यह कि सूर्य आदि पिड वृत्त मे चलते है परतु पृथ्वी केद्र पर नही, उससे हट कर है । भास्कराचार्य के मत से भूमि ब्रह्माड के केद्र मे अवश्य है, परतु सूर्य, चद्र, ग्रहादि जिन वृत्तो मे चलते है उनके केद्र पृथ्वी से भिन्न है ।

भास्कराचार्य ने छेद्यक उस चित्र को कहा है जिसमे सूर्य आदि किसी पिंड की कक्षा दिखायी जाय । छेद्यक बनाने की रीति विस्तार से बतायी गयी है । यह भी बताया है कि सूर्य और चद्रमा का आभासी व्यास घटा-बढा क्यो करता है "अपने उच्च मे स्थित रहने पर पिड पृथ्वी से बहुत दूर रहता है और नीच मे समीप रहता है । इसलिए पिड का बिब क्रमानुसार छोटा और बडा दिखायी पडता है । इसके बाद कुछ प्राचीन आचार्यो के मत का खडन किया गया है ।

गोलबधाधिकार और त्रिप्रश्नवासना

सातवाँ अध्याय गोलबधाधिकार है । इसमे बताया गया है कि कैसे बीच में काठ के गोल से पृथ्वी, और उसके केद्र से जाने वाली छडी पर वृत्त बाँधकर चद्र, बुध आदि की कक्षाएँ प्रदर्शित की जा सकती है, और ज्योतिष-अध्ययन मे आने वाले याम्यो-

त्तर, क्षितिज आदि अनेक वृत्त कैसे दिखाये जा सकते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार का गोल केवल शिष्य को ज्योतिष समझाने के लिए है, ग्रहो और नक्षत्रो की स्थितियाँ नापने के लिए नही। यहाँ के वर्णन के अनुसार भी गोल वैसा ही बनेगा जैसा सूर्य-सिद्धात के सबध मे पहले बताया जा चुका है।

इसी अध्याय मे अयनाश, क्राति, शर, आदि, कई उपयोगी ज्यौतिष परिमाण ज्ञात करने के भी नियम दिये गये है।

आगामी अध्याय त्रिप्रश्नवासना है। उसमे सूर्योदय का समय जानने की रीति बतायी गयी है। वर्णन किया गया है कि कहा कब कितना दिन रात होता है। बताया गया है कि भूमध्यरेखा पर दिन-रात क्यो बराबर होते है। यह भी बताया गया है कि उत्तर ध्रुव वृत्त के भीतर (अर्थात वृत्त के भीतर जिसका अक्षाश लगभग ६६° उत्तर होता है) दिन-रात की व्यवस्था कैसी होती है, किस प्रकार वहाँ बहुत समय तक दिन ही बना रहता है, पृथ्वी के ठीक उत्तर ध्रुव या दक्षिण ध्रुव पर क्या दिखायी पडता है, और चद्रमा पर दिन और रात किस प्रकार होते है। कहा गया है कि "पितर लोग चद्रमा के पृष्ठ पर निवास करते है और इसलिए चद्रमा को अपने पैर के नीचे मानते है। वे हमारी अमावस्या पर सूर्य को अपने सिर पर देखते है। इसलिए उस दिन उनका मध्याह्न होता है। चद्रमा जब ६ राशि चल लेता है और हमारी पूर्णिमा होती है तब सूर्य चद्रमा के नीचे चला जाता है और पितरो की अर्ध-रात्रि होती है।"

कोई राशि क्यो शीघ्र उदित होती है, कोई क्यो देर मे, इसका यह उत्तर दिया गया है: "रविमार्ग का जो भाग तिरछा है वह थोड़े काल में और जो सीधा है वह अधिक काल मे उदित होता है", फिर बताया है कि कौन-सी राशियाँ अधिक तिरछी है, कौन-सी प्राय सीधी। यह भी बताया गया है कि कौन-से देश मे कर्क और मिथुन राशियाँ सदोदित रहेंगी, अर्थात क्षितिज के नीचे कभी जायँगी ही नही, और इसी प्रकार के कई अन्य प्रश्नो का भी उत्तर दिया गया है। इस सबध मे लल्ला-चार्य का एक कथन असगत बताया गया है।

अक्षाश जानने की रीति यो बतायी गयी है "ध्रुव का वेध द्वारा जो उन्नताश और नताश प्राप्त हो वे ही अक्षाश और लबाश[1] है, फिर, विषुव के दिन के मध्याह्न मे जो सूर्य का नताश और उन्नताश हो वे क्रमानुसार अक्षाश और लबाश होते है।

[1] ९० अंश से अक्षांश को घटाने पर प्राप्त शेष को लंबांश कहा गया है।

इस अध्याय मे कई एक परिमाणो की गणना की रीति बतायी गयी है और कहा गया है कि "इसी प्रकार विद्वान लोग अन्य हजारो क्षेत्रो की कल्पना करके शिष्यो को बताये।"

ग्रहणवासना, दृक्कर्मवासना और श्रृङ्गोन्नतिवासना

आगामी दो अध्यायो मे ग्रहण की गणना बतायी गयी है। उसके बाद वाले अध्याय मे बताया गया है कि चद्रमा के श्रृग (नोक) किस दिशा मे है यह कैसे जाना जाय। इन विषयो के कठिन होने के कारण अधिकाश बातो को यहाँ छोड दिया जा रहा है, केवल एक-दो अत्यत सरल बाते चुन कर यहाँ रक्खी जाती है। प्रथम श्लोक मे बताया गया है कि सूर्य-ग्रहण क्यो कही से दिखायी पडता है, कही से नही : "जिस प्रकार मेघ सूर्य को ढँक लेता है वैसे ही चद्रमा सूर्य से शीघ्र चल कर सूर्य-बिब को अपने काले बिब से ढक लेता है। इसलिए सूर्य-ग्रहण मे पश्चिम दिशा मे स्पर्श और पूर्व दिशा मे मोक्ष होता है। चद्रमा और सूर्य की दूरियो मे भेद रहने से सूर्य किसी देश मे ढँका हुआ दिखायी पडता है और किसी मे नही। चद्रग्रहण मे छादक (ढँकने वाला) बडा होता है। इसलिए ग्रहण के समय दिखायी पडने वाले चद्रमा के दोनो श्रृग मद (मोटे) होते है और ग्रहण की अवधि बडी होती है। परतु सूर्य-ग्रहण मे छादक के छोटा होने से सूर्य के श्रृग तीखे होते है और ग्रहण की अवधि छोटी होती है।"

ग्रहण के ब्योरो को जानने के लिए चित्र खीचने की रीति विस्तार से बतायी गयी है।

श्रृगोन्नतिवासना में यह भी बताया गया है कि चद्रमा मे क्यो कलाएँ दिखायी पडती है।

यंत्राध्याय

इस अध्याय का उद्देश्य प्रथम श्लोक मे बताया गया है. "काल के सूक्ष्म अवयवो का ज्ञान बिना यत्र के असभव है। इसलिए सक्षेप मे कुछ यत्रो का वर्णन करता हूँ। उन यत्रो के नाम ये है गोल, नाडी-वलय, यष्टि, शकु, घटी, चक्र, चाप, तुर्य, फलक और धी। परतु इन सब यत्रो मे एक धी-यत्र सब से उत्तम है।

इनमे से गोल-यत्र तो वही है, जो गोलबधाधिकार मे बताया गया है।

नाडीवलय-यत्र के लिए लिखा है कि काठ का चक्र बन कर उसकी परिधि को घटी आदि मे अकित करे। बीच मे कील, चक्र के समतल से लब दिशा मे, जड दे, तो यत्र तैयार हो जायगा। कील की छाया देख कर इससे समय ज्ञात किया जाता

है। चक्र के धरातल को इच्छानुसार चाहे क्षैतिज समतल मे अथवा विषुवत के समतल मे स्थिर किया जा सकता है।

यष्टि का अर्थ है छडी, बल्ली या स्तभ। नाम से ही यत्र का ज्ञान हो जाता है। बनाने के लिए कोई ब्योरा नही दिया गया है। शकु के लिए सिद्धात-शिरोमणि मे बहुत कम ब्योरा है, परतु शकु क्या होता था यह अन्य ग्रथो से ज्ञात है (पृष्ठ १४२ देखे)। शकु को हाथीदाँत का बनाना चाहिए केवल यही विशेष बात बतायी गयी है।

आधे घडे के आकार का ताबे का घटी-यत्र बनता था। पेदी में एक छेद रहता था। पानी मे इसके डूबने के समय से समय का ज्ञान होता था।

"किसी काष्ठ या धातु का वृत्ताकार चक्र-यत्र बना कर उसकी परिधि को ३६० अशो मे अकित करे और ढीली जजीर से लटका दे। . केद्र मे एक कील रहनी चाहिए"। इस प्रकार चक्र-यत्र ऊर्ध्वाधर धूप-घडी का काम देता था। इससे सूर्य का उन्नताश नापा जाता था।

"वृत्त का आधा चाप-यत्र और चाप का आधा तुर्य-यत्र कहा जाता है।"

फलक-यंत्र और धी-यंत्र

फलक-यत्र के वर्णन मे भास्कराचार्य ने बहुत भूमिका बाँधी है। एक श्लोक मे यंत्र की प्रशसा की गयी है। दूसरे मे सूर्य-बदना और यत्र की पुन प्रशसा। फिर इसे बनाने के लिए निम्न आदेश है

"फलक-यत्र को आयताकार, ९० अगुल चौडा और १८० अगुल लबा बनाना चाहिए। लबाई के बीच मे ढीली जजीर लगाकर इसे लटका दे, जिससे यह घूम सके (और सदा ऊर्ध्वाधर रहे)।" फिर इस पर विविध रेखाओ आदि के अकित करने के लिए आदेश है। बीच मे कील रहेगी और इसी कील के सहारे ६० अगुल लबी, अगुल भर
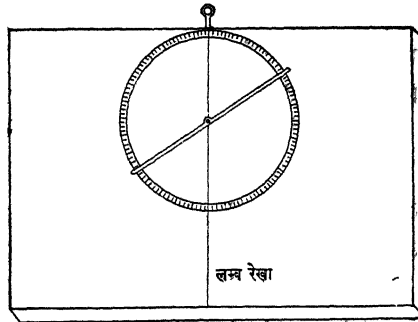
फलक-यंत्र।
यह चित्र भास्कराचार्य के वर्णन के अनुसार बनाया गया है।

चौडी, आधा अगुल मोटी पट्टी घूमा करेगी। इसमे छेद करके इसे कील पर इस प्रकार पिरोना चाहिए कि पट्टी घूम सके और घुमाने पर इसका एक किनारा केंद्रीय खडी रेखा पर पड सके।

यत्र की उपयोग-विधि यो बतायी गयी है "इस फलक-यत्र को इस प्रकार रखना चाहिए जिसमे इस यत्र के दोनो ओर सूर्य की रश्मियाँ पडे", अर्थात यत्र का समतल ऐसी दिशा मे हो जाय कि सूर्य उसी समतल मे रहे। फिर तो सूर्य का उन्नताश कील की छाया से जाना जा सकता है। मध्य की पट्टी के किनारे को किसी तारे या ग्रह की दिशा मे करके उसका भी उन्नताश नापा जा सकता है। वस्तुत यह यत्र अरब लोगो के अस्तरलाबर (यत्रराज) का पूर्वज जान पडता है (चित्र देखो)।

कुछ पाश्चात्यो की राय है कि भास्कराचार्य यत्रो के उपयोग को बहुत आवश्यक नही समझते थे, और इसलिए उन्होने ज्योतिष की उन्नति क्रियात्मक रूप से नही की, केवल अच्छी गणना बतायी। यह विश्वास भास्कराचार्य के निम्न श्लोक पर आश्रित है.

अथ किमु पृथुतन्त्रैर्धीमतो भूरियत्रैः
स्वकरकलितयष्टेर्दत्तमूलाग्रदृष्टे ।
न तदविदितमानं वस्तु यद्दृश्यमानं
दिवि भुवि च जलस्थं प्रोच्यतेऽथ स्थलस्थम् ।।४०।।

अर्थ—बुद्धिमानो को बडे ग्रथ और बहुत-से यत्रो से क्या प्रयोजन है? हाथ मे लकडी लेकर, उसके मूल मे आँख लगाकर, वेध करने से आकाश, भूमि और जल मे दिखायी पडने वाली सब वस्तुओ का मान ज्ञात हो सकता है।

धी-यत्र ।

यष्टि के अग्र तथा आँख की ऊँचाइयाँ और दोनों के बीच की क्षैतिज दूरी जान कर आकाशीय पिंडो का उन्नताश इस यत्र से नापा जाता था।

यही धी-यत्र है (धी=बुद्धि)। इसके उपयोग की विधियो बतायी गयी है · "जो हाथ मे यष्टि लेकर बाँस

का मूल और अग्र वेध कर अपना और बॉस का अतर और ऊँचाई जान लेता है, कहो वह धीयत्र-विशारद क्या नही जानता ?"

यद्यपि इस अध्याय के प्रथम श्लोक मे धी-यत्र की बडी प्रशसा की गयी है, तो भी इसमे सदेह नही कि यह यत्र बहुत ही स्थूल है। भास्कराचार्य ने धी-यत्र पर कई एक उदाहरण दिये है जिनमे गणित के दॉव-पेच बहुत सुन्दर है, परतु स्वय यत्र कितनी सूक्ष्मता से नाप सकेगा इसकी उपेक्षा की गयी है। कुछ प्रश्न तो विशुद्ध त्रिकोणमिति के है। उदाहरणत, एक प्रश्न यह है "हे मित्र! एक सम-भूमि मे ऊँचे सीधे बॉस का मूल किसी घर आदि से छिपा हुआ है, केवल उसका अग्र दिखायी देता है। यदि तुम यही बैठकर उसकी ऊँचाई और यहॉ से दूरी बताओ, तो हम धीयत्र-विशारदो मे तुम को श्रेष्ठ माने।" इसका उत्तर भास्कराचार्य ने स्वय दिया है जिसमे दो स्थानो से बॉस के अग्र के उन्नताशो को नाप कर त्रिकोणमिति से बॉस की दूरी और ऊँचाई की गणना की रीति बतायी गयी है।

स्वयचल यत्र

इसके बाद ऐसे यत्र का वर्णन है जो स्वय चले। आधुनिक विज्ञान का कहना है कि जब तक कोयला, पेट्रोल आदि से उत्पन्न हुई या अन्य प्रकार से आयी ऊर्जा (एनर्जी) खर्च न होगी तब तक कोई यत्र स्वय चलता न रहेगा। इसलिए स्पष्ट है कि भास्कराचार्य का बताया हुआ यत्र कभी बन न पाया होगा। निर्माण-विधि यो बतायी गयी है अच्छे काठ का खरादा हुआ एक चक्र बनाओ। उसकी परिधि मे बराबर-बराबर दूरियो पर आरे[१] लगाओ। ये आरे (त्रिज्या की सीध मे न रहे, उनके सापेक्ष) एक ओर कुछ झुके रहे। आरे सब एक समान छिद्रवाले (पोले) हो। इन आरो के छिद्रो मे इतना पारा छोडो कि वे आधे भर जायँ। इसके बाद छिद्रो के मुख को अच्छी तरह बद कर दो। फिर इस चक्र को खराद की भॉति दो आधारो मे पिरोये हुए लोह-दड के बीच मे कस दो। तब (चला देने पर) यह चक्र स्वय घूमता रहेगा।"

इसके बाद एक पनचक्की का वर्णन है जो स्वय बराबर चलती रहेगी। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह भी बेकार है—अपने आप नही चलती रह सकती है।

[१] केंद्र से परिधि तक जाने वाले डडो को आरा कहते है।

भास्कराचार्य ने स्वय कहा है कि इन यत्रो का गोल से कोई सबध नही है, केवल "पूर्व आचार्यो के कथनानुसार यहाँ पर वर्णन किया गया है"।

अतिम तीन अध्याय

तेरहवाँ अध्याय "ऋतुवर्णन" है। इसमे पद्रह श्लोको मे ऋतुओ का वर्णन रसिकतापूर्वक किया गया है। ज्योतिष से इस अध्याय का कोई सबध नही है। भास्कराचार्य ने स्वय लिखा है कि "यहाँ ऋतुवर्णन के बहाने कवियो की प्रीति के लिए रसिको का मन हरनेवाली यह छोटी कविता दी गयी है"।

आगामी अध्याय प्रश्नाध्याय है। इसमे ज्योतिष सबधी प्रश्न और उनके उत्तर है। दो उदाहरण देना यहाँ पर्याप्त होगा। एक प्रश्न यह है "अहर्गण के साधन मे जितने गत अधिमास और अवम हो उनका और उनके शेषो का योग जान कर जो गणक कल्पादि से सौर, चाद्र, सावन अहर्गणो को गणित से बताये वह बीज-गणितज्ञ पडित, सश्लिष्ट-स्फुट-कुट्टक मे उद्भट, बालकरूपी क्षुद्र मृग को भगाने मे सिह के समान विजयी होता है ॥१०॥"

"उज्जयनी से पूर्व मे नब्बे अश पर कोई नगर है और वही से पश्चिम नब्बे अश पर कोई (दूसरा) नगर है, और पूर्व मे जो नगर है उससे ईशानकोण मे नब्बे अश पर (तीसरा) और पश्चिम मे जो नगर है उससे वायुकोण मे नब्बे अश पर (चौथा) नगर है। हे गोलक्षेत्रचतुर! कुछ देर अपने चित्त मे इन प्रश्नो पर भली भाँति विचार कर, उक्त नगरो के अक्षाश बताओ।" भास्कराचार्य के उत्तर मे इन नगरो का अक्षाश ०°, ०°, ४५° और ३०° निकला है।

अतिम अध्याय का नाम ज्योत्पत्ति है। इसमे कोणो की ज्याओ की गणना करने की रीति बतायी गयी है और कुछ अन्य त्रिकोणमितीय प्रश्नो पर भी विचार किया गया है।

अन्य ग्रथ

करण-कुतूहल नामक ग्रथ मे ग्रहो की गणना के लिए सुगम रीति बतायी गयी है जिस पर कई टीकाएँ लिखी गयी है। इसके अनुसार पचाग बनाने का काम सरलता से किया जा सकता है।

अन्य भाषाओ मे भी भास्कर के ग्रथो का अनुवाद किया गया है। अकबर बादशाह के नवरत्न फैज़ी ने फारसी मे लीलावती का अनुवाद सन १५८७ ई० मे किया था। शाहजहाँ बादशाह के समय मे अताउल्लाह रसीदी ने १६३४ ई० मे बीजगणित का अनुवाद किया। कोलब्रुक ने १८१७ ई० मे लीलावती और बीजगणित का

अनुवाद अँग्रेजी मे किया। टेलर ने १८१६ ई० मे लीलावती का अनुवाद तथा ई० स्ट्रेची ने बीजगणित का अनुवाद १८१३ ई० मे अँग्रेजी मे किया। महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री ने गोलाध्याय का अँग्रेजी अनुवाद १८६६ ई० मे किया। पडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ने गोलाध्याय और गणिताध्याय दोनो पर सस्कृत और हिंदी मे एक अच्छी टीका लिखी है जो नवलकिशोर प्रेस से १९११ और १९२६ ई० मे प्रकाशित हुई है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य ने गणित ज्योतिष का विस्तार किया और उपपत्ति सबधी बातो पर पूरा ध्यान दिया, परतु आकाश के प्रत्यक्ष वेध से बहुत कम काम लिया। वेधो के लिए इन्होने ब्राह्मस्फुटसिद्धात को आधार माना।

किसी-किसी ग्रथ मे भास्कराचार्य रचित मुहूर्त ग्रथ तथा विवाह पटल नामक ग्रथ का भी वर्णन है परतु ये उतने प्रसिद्ध नही हुए।

अध्याय १५

भास्कराचार्य के बाद

उन्नति बद हुई

भास्कराचार्य के बाद कई ज्योतिषी हुए, परतु उनमे भास्कर के समान कोई विख्यात न हो सका, ज्योतिष मे विशेष उन्नति भी भास्कर के बाद न हो पायी, जैसा नीचे के विवरण से पता चलेगा। नवीन ज्योतिषी साधारणत भाष्य लिख कर या किसी प्राचीन सिद्धात को सत्य मान उससे करण-ग्रथ बनाकर या फलित ज्योतिष पर ग्रथ लिख कर ही सतोष करने लगे। फिर एक समय ऐसा भी आ गया कि उन्नति करना ही पाप समझा जाने लगा।

वाविलाल कोचन्ना

तैलग प्रान्त के वाविलाल कोचन्ना ज्योतिषी ने एक करण ग्रथ शक १२२० मे लिखा था[1] जिसमे फाल्गुन कृष्ण ३० गुरुवार शक १२१९ का क्षेपक[2] दिया है। यह पुस्तक वर्तमान सूर्य-सिद्धात के आधार पर लिखी गयी थी। इस पुस्तक मे कोई बीज-सस्कार नही दिया है जैसा मकरद मे है। मद्रास मे वारन नामक अँग्रेज विद्वान ने कालसकलित नामक एक ज्योतिष की पुस्तक १८२५ ई० मे लिखी है, जिसमे इस पुस्तक से बहुत कुछ सामग्री ली गयी है। इससे जान पडता है कि मद्रास प्रान्त मे इस पुस्तक से उस समय तक पचाग बनाये जाते थे।

[1] इस अध्याय के पृष्ठ २१६ तक की सारी बाते मेरे द्वारा सपादित सरल विज्ञान-सागर नामक ग्रन्थ मे छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी है।

[2] क्षेपक की परिभाषा के लिए पृष्ठ १८९ पर पाद-टिप्पणी देखो।

बल्लालसेन

मिथिलाधिपति श्री लक्ष्मणसेन के पुत्र महाराजाधिराज बल्लालसेन ने शक १०९० (११६८ ई०) मे अद्भुतसागर नामक सहिता का एक वृहत ग्रथ रचा जो वराहमिहिर की वृहत्सहिता के ढग का ग्रथ है। उसमे गर्ग, वृद्धगर्ग, पराशर, कश्यप, वराहसहिता, विष्णु धर्मोत्तर, देवल, वसन्तराज, वटकणिक, महाभारत, बाल्मीकि रामायण, यवनेश्वर, मत्स्यपुराण, भागवत, मयूरचित्र, ऋषिपुत्र, राजपुत्र, पच-सिद्धातिका, ब्रह्मगुप्त, भट्ट बलभद्र, पुलिशाचार्य, सूर्यसिद्धात, विष्णुचन्द्र और प्रभाकर के अनेक वचन उद्धृत है। वराहसहिता मे अध्यायो के नाम 'चार' से प्रकट किये गये है, जैसे ग्रहचार, राहुचार आदि, परतु अद्भुतसागर मे अध्यायो के नाम 'आवर्त' रक्खे गये है, जैसे अगस्त्यावर्त मे अगस्त तारे के उदय-अस्त के विषय मे है, इत्यादि। बल्लाल-सेन ने कई आकाशीय घटनाओ का उल्लेख किया है, जिससे जान पडता है कि यह केवल ग्रथकार ही नही थे, वरन् तारो और नक्षत्रो का भी वेध करते थे। बुध-पूर्य-युति और शुक्र-सूर्य-युति का भी परिचय इनको हो गया था। अयन-विन्दुओ के सबध मे भी इन्होने स्वय[1] परीक्षा करके लिखा है।

सब बातो का विचार करने से प्रकट होता है कि अद्भुतसागर वास्तव मे एक बडा और अद्भुत ग्रथ है।

केशवार्क

केशवार्क का बनाया हुआ विवाह-वृदावन नामक एक मुहूर्त ग्रथ है, जिसमें विवाह सबधी मुहूर्तो का अच्छा परिचय है। इसकी टीका भी पीछे की गयी थी। यह गणेश दैवज्ञ के पिता केशवाचार्य से भिन्न थे और उनसे बहुत पहले हुए थे। गणक-तरगिणी के अनुसार इनका समय शक ११६४ (१२४२ ई०) के लगभग ठहरता है, क्योकि गणेश दैवज्ञ की टीका से प्रकट होता है कि ग्रयनिर्माण-काल मे अयन १२ अश था।

[1] **सकलवसुधाधिनाथश्रीमद्बल्लालसेनदेवेन।**
अयनद्वय यथावत् परीक्ष्य सल्लिख्यते सवितुः॥
इदानीं दृष्टिसवादादयन दक्षिणं रवे।
भवेत्पुनर्वसोरादौ विश्वादावुत्तरायणम्॥
गणक-तरंगिणी, पृष्ठ ४४।

कालिदास

इतिहास के बहुत से विद्वान कालिदास को शकुन्तला के रचयिता प्रसिद्ध कालिदास समझते है और इनका समय विक्रमीय सवत के आरभ मे समझते है, परतु यह ठीक नही है। इन्होने ज्योतिर्विदाभरण नामक एक मुहूर्त ग्रथ की रचना की है जिसमे २० अध्याय है। अन्तिम अध्याय मे राजा विक्रमादित्य की सभा का वर्णन किया गया है और लिखा गया है कि कलि सवत् ३०६८ मे यह ग्रथ रचा गया[१]। परतु यह या तो लोगो को ठगने के लिए स्वय ग्रथकार ने लिखा है अथवा किसी अन्य ने भ्रम से यह लिख दिया है, क्योकि इसमे अयनाश निर्णय करने और क्रातिसाम्य का विचार करने की बाते सिद्ध करती है कि यह ग्रथ इतना पुराना नही हो सकता। अयनाश के सबध मे प्रथमाध्याय के १८वे श्लोक मे लिखा है. "शाक शराम्भोधियुगोनितो हृतो मान खतर्कैरयनाशका स्मृता"। क्रातिसाम्य कब सभव होता है, इस विषय मे चौथे अध्याय मे लिखा है

> ऐन्द्रे त्रिभागे च गते भवेत्तयो शेषे ध्रुवोपक्रमसाम्यसभव।
> यद्येकरेखास्थितभेशचण्डगू स्याताा तदाऽपक्रमचक्रवालके ॥

इससे प्रकट है कि कालिदास का समय वही है जो केशवार्क का है। इसलिए यह रघुवश या शकुन्तला के कालिदास से भिन्न है[२]।

महादेव

महादेव ने पैतामह, आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, भास्कर आदि आचार्यो के सिद्धातो के अगाध समुद्र को पार करने के लिए महादेवी सारणी नामक एक नौका शक १२३८ मे तैयार की थी। इसमे ग्रथारभकाल के ग्रहो का क्षेपक देकर ग्रहो की वार्षिक गति दे दी गयी है, जिसकी सहायता से ग्रहो की स्थिति बडी सरलता से ज्ञात हो जाती है। इसमे कुल ४२१ श्लोक है।

इसी के आदर्श पर नृसिह दैवज्ञ ने शक १४८० मे महादेवी नाम की एक दूसरी सारणी भी तैयार की, जिसमे अयनाश १३° ४५′ है और पलभा[३] ४½ अगुल।

---

[१] **वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैर्याते कलेः सम्मिते।**
मासे माधवसञ्ज्ञिके च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः।
गणक-तरंगिणी, पृष्ठ ४६।

[२] **गणक-तरगिणी, पृष्ठ ४६-४७।**

[३] **अर्थात विषुव के दिन मध्याह्न के समय १२ अंगुल के शंकु की छाया।**

महेंद्रसूरि

महेन्द्रसूरि फीरोजशाह बादशाह की सभा के प्रधान पडित थे। इन्होने यत्र-राज नामक यत्र भी १२९२ शक मे बनाया था। इनकी बनायी यन्त्रराज नामक पुस्तक की टीका इनके शिष्य मलयेन्दुसूरि ने लिखी थी जिसको उपपत्ति के साथ महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने शक १८०४ (१८८२ ई०) मे चन्द्रप्रभा प्रेस से प्रकाशित की थी। इन्होने सूर्य की परम क्रान्ति २३° ३५′ पायी थी और अयनाश की वार्षिक गति ५४ विकला लिखी है। इस ग्रथ मे पाँच अध्याय है जिनके नाम है—गणिताध्याय, यत्रघटनाध्याय, यत्ररचनाध्याय, यत्रशोधनाध्याय और यत्र-विचारणाध्याय। सुधाकर द्विवेदी समझते है कि यह ग्रथ शायद किसी फारसी ग्रथ का अनुवाद है[1]।

महादेव

महादेव ने पचाग बनाने की सुविधा के लिए कामधेनु नामक करण-ग्रथ शक १२७९ (१३५७ ई०) मे बनाया था।

पद्मनाभ

ध्रुवभ्रम यत्र नाम का ग्रथ पद्मनाभ ने १३२० शक के लगभग रचा था जिसमें केवल ३११ श्लोक है। इसमे ध्रुवभ्रमयत्र का वर्णन है जिससे रात को ध्रुवमत्स्य नामक नक्षत्र पुज को वेध कर के समय का ज्ञान करने की रीति बतायी गयी है। इस ग्रथ की टीका स्वय ग्रथकार ने की है। दिन मे सूर्य के वेध से समय का ज्ञान करने की रीति है जिससे लग्न का ज्ञान भी हो सकता है। २८ नक्षत्रो के योगतारो के मध्योन्नताश भी दिये गये है, जिससे प्रकट होता है कि यह २४ अक्षाश के स्थानो के लिये बनाया गया था।

दामोदर

दामोदर का भटतुल्य नामक आर्यभटानुसारी एक करण-ग्रथ है जिसका आरभ वर्ष शक १३३९ (१४२७ ई०) है, यह पद्मनाभ के शिष्य थे और इन्होने ध्रुवभ्रम यत्र पर टीका लिखी थी। इसमे अयनगति ५४ विकला वार्षिक बतायी गयी है। इन्होने नक्षत्रो के योगतारो के भोगाश और शर दिये है जो अन्य ग्रथकारो के

[1] गणक-तरगिणि पृष्ठ ४९।

भोगाशो से कुछ भिन्न है, इससे जान पडता है कि इन्होने स्वय वेध कर के इन्हे निश्चय किया है ।

गगाधर

गगाधर ने कलि सवत ४५३५ (शक १३५६) मे प्रचलित सूर्य-सिद्धात के अनुसार एक तत्र ग्रथ रचा है जिसका नाम है चान्द्रमानाभिधान तत्र। इसमे चाद्र मास के अनुसार ग्रहो की गति देकर ग्रह स्पष्ट करने की रीति बतायी गयी है ।

मकरद

मकरद ने शक १४०० (१४७८ ई०) मे सूर्य-सिद्धात के अनुसार तिथ्यादि साधन के लिए अपने ही नाम की एक सारणी काशी मे रची थी, जिसके अनुसार काशी और मिथिला आदि प्रान्तो मे अब भी पचाग बनाये जाते है । यह सारणी दिवाकर दैवज्ञ के मकरद-विवरण और विश्वनाथ के उदाहरण के साथ प्रकाशित हुई है और आज भी मिलती है । गोकुलनाथ ने १६८८ शक मे इसकी उपपत्ति भी लिखी है । इस सारणी का अनुवाद अग्रेजी मे बेटली ने किया था । इसी का विस्तार करके शहर मिरजापुर के प० रघुबीरदत्त ज्योतिषी ने सिद्धखेटिका नामक एक सारणी तैयार की थी जो शाके १८०५ (१८८३ ई०) मे भारतमित्र यन्त्रालय से प्रकाशित हुई थी । इस सारणी मे तिथि, नक्षत्र, योगो और ग्रहो की दैनिक गति दी गयी है जिससे इन विषयो की स्पष्ट गणना बहुत ही सुगमता से की जा सकती है । इसमे पचाग बनाने की प्राय सभी बाते बतायी गयी है । इसमे बीज-सस्कार करने के लिए भी कहा गया है और इसका नियम बताया गया है ।

केशव द्वितीय

विवाह-वृदावन के रचयिता केशव की चर्चा पहले हो चुकी है जिन्हे गणकतरगिणी मे केशवार्क कहा गया है । दूसरे केशव उनसे भिन्न है । यह ग्रहलाघव के प्रसिद्ध लेखक गणेश दैवज्ञ के पिता और ज्योतिष के महान आचार्य और सशोधक थे । इनका जन्म पश्चिमी समुद्र के तीर नदिग्राम मे हुआ था । इनके जन्म का समय कही नही लिखा मिलता । सूर्य, चन्द्रमा और ताराग्रहो का वेध कर के गणना ठीक करने के लिए इन्होने बडा जोर दिया है और भविष्य के लिए पथप्रदर्शक का काम किया है । इनकी प्रसिद्ध पुस्तक ग्रहकौतुक है जिसकी मिताक्षरा टीका भी इन्होने स्वय लिखी थी । इससे प्रकट होता है कि ग्रहो के वेध मे ये निपुण थे । ब्राह्म, आर्यभटीय और सूर्यसिद्धात, आदि के अनुसार आये हुए ग्रहो के स्थानो मे बहुत

अन्तर देख कर इन्होने लिखा है कि किस ग्रह के लिए कितना बीज-सस्कार देना चाहिए और बताया है कि सदैव वर्तमान घटनाओ को देखकर ग्रहगणित करना चाहिए —

एव बहुवतर भविष्ये सुगणकै नक्षत्रयोगग्रहयोगोदयास्तदिभि वर्तमानघटनामवलोक्य न्यूनाधिकभगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि। यद्वा तत्कालक्षेपकवर्ष-भोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्याणि[1]।

ग्रहकौतुक का आरम्भ शक १४१८ (१४९६ ई०) मे हुआ था। इसके अतिरिक्त इन्होने वर्ष ग्रहसिद्धि जातकपद्धति, जातकपद्धति निवृत्ति, ताजकपद्धति, सिद्धातवासना-पाठ, मुहूर्त-तत्त्व, कायस्थादि-धर्मपद्धति, कुण्डाष्टक-लक्षण, गणित-दीपिका नामक पुस्तको की रचना की थी। इससे प्रकट है कि य ज्योतिष की सभी शाखाओ के अच्छे विद्वान थे और ग्रहो की वेध सम्बन्धी बातो को आजकल के वैज्ञानिको की तरह लिखते थे।

गणेश दैवज्ञ

गणेश दैवज्ञ भी अपने पिता के समान ज्योतिष की प्राय सभी शाखाओ के अच्छे विद्वान थे और ग्रहो का वेध करके उनकी ठीक-ठीक गणना करने के पक्ष मे थे[2]। इनका मुख्य ग्रथ ग्रहलाघव है जिसमे गहो की गणना करने के लिए ज्या, कोटिज्या आदि से काम नही लिया गया है। यह बडे पाडित्य की बात है। ग्रहलाघव का आरम्भ शक १४४२ (१५२० ई०) है। यह इतना अच्छा ग्रथ समझा गया था कि इसकी कई टीकाएँ हुई। शक १५०८ मे गंगाधर ने, शक १५२४ मे मल्लारि ने और लगभग शक १५३४ मे विश्वनाथ ने, इसकी टीकाएँ लिखी थी। सुधाकर द्विवेदी ने इस पर उपपत्ति के साथ एक सुन्दर टीका लिखी है जिसमें मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाओ का भी समावेश है। इस ग्रथ का प्रचार महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक ग्वालियर आदि प्रान्तो मे अब भी है।

इस ग्रथ मे मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, पचताराधिकार, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, स्थूल ग्रहण साधन, उदयास्त, छाया, नक्षत्रछाया, शृगोन्नति,

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २५९।

[2] कथमपि यदिद चेद्भूरिकाले श्लथ स्यान्मुहुरपि परिलक्ष्येन्दुग्रहाद्यृक्ष-योगम्। सदमलगुरुतुल्यप्राप्तबुद्धिप्रकाशै. कथितसदुपपत्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये। वृहत्तिथि-चितामणि (गणक-तरगिणी, पृष्ठ ६३ के अनुसार)।

ग्रहयुति और महापात नामक १४ अधिकार है । विश्वनाथ और मल्लारि ने अपनी टीकाओ मे पचाग-ग्रहणाधिकार का नाम भी लिखा है ।

और लघुतिथिचितामणि नामक सारणियाँ भी गणेश दैवज्ञ की बनायी हुयी है, जिनसे पचाग के लिए तिथि, नक्षत्र, तथा योगो का साधन बहुत सरलता से और कम समय मे किया जा सकता है । इनके अतिरिक्त निम्न-लिखित ग्रथ भी गणेश दैवज्ञ के लिखे हुए है —

सिद्धात-शिरोमणि टीका, लीलावती टीका (शक १४६७), विवाह-वृन्दावन टीका (शक १४७६), मुहूर्त तत्त्व टीका, श्राद्धादि निर्णय छन्दोऽर्णव टीका, सुधीरञ्जनी, तर्जनी यन्त्र, कृष्ण जन्माष्टमी निर्णय और होलिका निर्णय ।

लक्ष्मीदास

लक्ष्मीदास शक १४२२ (१५०० ई०) मे भास्कराचार्य के सिद्धात-शिरोमणि की टीका उपपत्ति और उदाहरण के साथ की थी, जिसका नाम है गणिततत्त्व चिता-मणि ।

ज्ञानराज

सिद्धात-सुन्दर नामक करण-ग्रन्थ के कर्ता ज्ञानराज थे । यह वर्तमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार बनाया गया है । इसका क्षेपक १४२५ शक का है, इसलिए यही इसका रचना काल समझना चाहिए । पहले गोलाध्याय है जिसमे सृष्टिक्रम, लोकसस्था, आदि, १२ अध्याय है और गणिताध्याय मे मध्यमाधिकार आदि ८ अध्याय है । मध्यमाधिकार मे बीज-सस्कार की बात भी कही गयी है । यह नही बताया है कि इनके समय मे अयनाश क्या था, परतु अयनाश की वार्षिक गति एक कला बतायी है और लिखा है कि मध्याह्न छाया से जाने हुए स्पष्ट सूर्य और गणना से आये हुए स्पष्ट सूर्य का अतर निकाल कर अयनाश ठीक-ठीक ज्ञात कर लेना चाहिए, जैसा सूर्यसिद्धात मे बताया गया है ।

सूर्य

सूर्य ज्ञानराज के पुत्र थे । भास्कराचार्य के बीजगणित के भाष्य मे इन्होने अपना नाम सूर्यदास लिखा है और एक अन्य ग्रन्थ मे अपना नाम सूर्यप्रकाश लिखा है । लीला-वती की टीका गणितामृत-कूपिका इन्ही की लिखी हुई है, जो १४६३ शक मे लिखी गयी थी । उस समय इनकी अवस्था ३४ वर्ष की थी । इसलिए इनका जन्म शक १४२९ मे हुआ था । इनके लिखे ग्रन्थो के नाम ये है लीलावती टीका, बीज टीका,

श्रीपति पद्धति गणित, बीजगणित, ताजिक ग्रन्थ, काव्यद्वय और बोध-सुधाकर वेदात ग्रथ। कोलब्रुक लिखते है कि इन्होने सम्पूर्ण सिद्धात-शिरोमणि टीका भी लिखी है, परतु लीलावती की टीका मे इन्होने स्वय जिन अपने आठ ग्रथो के नाम लिखे है उनमे यह नाम नही आया है।

अनत प्रथम

अनत प्रथम ने शक १४४७ मे पचाग बनाने के लिए अनत सुधारस नामक ग्रथ लिखा था, जो सुधाकर द्विवेदी के मत से एक सारणी है।

ढुढिराज

ढुढिराज का बनाया जातकाभरण ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है, जिससे जन्मपत्री बनायी जाती है। इन्होने अनन्तकृत सुधारस की टीका भी की है, जिसका नाम सुधारसकरण-चषक है और ग्रहलाघवोदाहरण, ग्रहफलोपपत्ति, पचागफल, कुडकल्पलता ग्रथो को भी लिखा है। इन्होने अपना जन्मकाल कही नही लिखा है, परतु ज्ञानराज के ये शिष्य थे, इसलिए उनके पुत्र सूर्य के समकालीन अवश्य रहे होगे।

नीलकठ

नीलकठ ने ताजिक नीलकठी नामक बहुत प्रसिद्ध ग्रथ लिखा है, जिसे ज्योतिषी लोग वर्षफल बनाने के लिए अब भी काम मे लाते है। इसमे फारसी और अरबी के बहुत से शब्द आये है। ये अकबर बादशाह के दरबार के सभा-पडित थे और मीमासा तथा सांख्यशास्त्र के अच्छे विद्वान थे। नीलकठी का निर्माण-काल शक १५०९ (१५८७ ई०) है। इस पर विश्वनाथ ने उदाहरण के साथ एक टीका शक १५५१ मे की थी। सुधाकर द्विवेदी लिखते है कि इन्होने एक जातकपद्धति भी लिखी है, जो मिथिला प्रात मे बहुत प्रसिद्ध है।

रामदैवज्ञ

रामदैवज्ञ नीलकठ के छोटे भाई थे। इनका शक १५२२ का रचा मुहूर्त-चिंतामणि ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है और ज्योतिष के विद्यार्थियो को पढाया जाता है। इस प्रान्त मे यात्रा, विवाह, उत्सव आदि सभी बातो के लिए इसी ग्रन्थ के आधार पर साइत निकाली जाती है। इस ग्रथ पर पीयूषधारा नामक टीका इनके भतीजे नीलकठ के पुत्र गोविन्द ने लिखी है, जो बहुत प्रसिद्ध है।

इनका रचा रामविनोद नामक एक करण-ग्रथ भी, है जिसे अकबर बादशाह के कृपापात्र जयपुर के महाराजा रामदास की प्रसन्नता के लिए शक १५१२ मे

पचाग बनाने के लिए लिखा गया था। इसमे वर्षमान, क्षेपक और ग्रहगति वर्तमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार दिये गये है। बीज-सस्कार भी दिया है। इसमे ११ अधिकार और २८० श्लोक है।

कृष्ण दैवज्ञ बादशाह जहाँगीर के प्रधान पडित थे। भास्कराचार्य के बीजगणित की नवाकुर नामक सुन्दर टीका इनकी लिखी हुई है जिसमे कई नवीन कल्पनाएँ है। सूर्य-सिद्धान्त की गूढार्थप्रकाशिका टीका के लेखक रगनाथ लिखते है कि कृष्ण-दैवज्ञ ने श्रीपतिपद्धति की टीका और छादक-निर्णय भी लिखा है। इन्होने अपना समय नही लिखा है। सुधाकर द्विवेदी का अनुमान है कि इनका जन्मकाल शक १४८७ के लगभग होगा।

गोविद दैवज्ञ

गोविद दैवज्ञ नीलकठ दैवज्ञ के पुत्र और राम दैवज्ञ के भतीजे थे। इन्होने मूहूर्त चिन्तामणि की पीयूषधारा टीका काशी मे शक १५२५ (१६०३ ई०) मे लिखी थी। ये ज्योतिष, व्याकरण, काव्य, साहित्य, आदि, मे निपुण थे और १४७१ शक के आश्विन शुक्ल ७ रविवार पुनर्वसु नक्षत्र मे उत्पन्न हुए थे।

विष्णु

विदर्भ देश मे पाथरी नाम का एक प्रसिद्ध गॉव है जिससे पच्छिम १० कोस पर गोदा नदी के उत्तर किनारे पर गोलग्राम एक गॉव है। इसमे एक कुल ऐसा था जिसमे बहुत-से विद्वान और ग्रथकार हो गये है। विष्णु इसी कुल के थे। इनका लिखा सौरपक्षीय एक करण-ग्रथ है जिसका आरम्भवर्ष शक १५३० है। इसकी टीका उदाहरण के साथ इनके भाई विश्वनाथ ने शक १५४५ मे की थी। सिद्धात-तत्त्व-विवेक के कर्त्ता प्रसिद्ध कमलाकर इसी वश के थे।

मल्लारि

मल्लारि उपर्युक्त विष्णु के वश मे थे। इन्होने ग्रहलाघव पर उपपत्ति सहित एक सुन्दर टीका लिखी है जिससे जान पडता है कि वेध के कामो मे ये बडे निपुण थे और समझते थे कि प्राचीन ज्योतिष ग्रथो मे गणना का जो भेद पड जाता है उसका कारण क्या है और बीज-सस्कार की आवश्यकता क्यो पडती है। इन्होने अपना समय नही लिखा है परतु सुधाकर द्विवेदी का मत है कि ये शक १४९३ मे उत्पन्न हुए होगे।

विश्वनाथ

विश्वनाथ भटोत्पल के समान टीकाकार थे और पूर्ववर्णित गोलग्राम मे उत्पन्न हुए थे। ताजिक नीलकठी की टीका मे वे लिखते है कि शक १५५१ (१६२९ ई०) मे यह टीका पूरी हुई थी। विष्णुकृत करण-ग्रन्थ की टीका १५४५ मे की गयी थी। इन्होने जो उदाहरण दिये है वे शक १५३४ के है। इनके उदाहरण मुख्यत १५०८, १५३०, १५३२, १५४२ और १५५५ शक के है।

इन्होने सूर्य-सिद्धात पर गहनार्थप्रकाशिका तथा सिद्धातशिरोमणि, करण-कुतूहल , मकरद, ग्रहलाघव, गणेश दैवज्ञ कृत पातसारणी, अनत सुधारस, और रामविनोद करण पर टीकाएँ तथा नीलकठी पर समातत्रप्रकाशिका टीका (शक १५५१ मे) लिखी है। इन सब ग्रथो को इन्होने काशी मे लिखा था।

नृसिह

नृसिह भी गोलग्राम के प्रसिद्ध वश मे उत्पन्न हुए थे और अपने चाचा विष्णु तथा मल्लारि से शिक्षा पायी थी। शक १५३३ मे सूर्यसिद्धात पर सौरभाष्य नामक टीका उपपत्ति के साथ तथा सिद्धात-शिरोमणि पर वासना वार्तिक टीका १५४३ शक मे लिखी थी, जिनमे पर्याप्त विशेषता है। इससे प्रकट होता है कि ये गणित ज्योतिष मे बडे निपुण थे।

रंगनाथ

रगनाथ विदर्भ प्रान्त के पयोष्णी नदी के तीर पर दधिग्राम के प्रसिद्ध कुल मे उत्पन्न हुए थे। इन्होने सूर्यसिद्धात पर गूढार्थप्रकाशिका टीका लिखी है, जो शक १५२५ (१६०३ ई०) मे, जिस दिन इनके पुत्र मुनीश्वर का जन्म हुआ था, प्रकाशित हुई थी। ये ज्योतिष सिद्धान्त के अच्छे आचार्य थे, क्योकि अपनी टीका उपपत्ति सहित लिखी है।

मुनीश्वर

मुनीश्वर रगनाथ के पुत्र थे और शक १५२५ मे उत्पन्न हुए थे। इन्होने लीलावती पर निसृष्टार्थदूती लीलावती-विवृति नामक टीका, सिद्धान्त-शिरोमणि के गणिताध्याय और गोलाध्याय पर मरीचि नामक टीका और सिद्धात सार्वभौम नामक स्वतत्र सिद्धात ग्रन्थ शक १५६८ मे रचा था। गणक-तरगिणी के अनुसार इन्होने पाटी-सार नामक स्वतत्र गणित पर भी पुस्तक लिखी थी। ये प्रसिद्ध भास्कराचार्य के बडे

प्रशमक थे। सिद्धात सार्वभौम के वर्षमान, ग्रहभगण, आदि सूर्य-सिद्धात से लिये गये है।

इनका दूसरा नाम विश्वरूप था। ये शाहजहाँ बादशाह के आश्रय मे थे और उनके राज्याभिषेक का समय अपनी पुस्तक मे लिखा है।

दिवाकर

दिवाकर गोलग्राम के प्रसिद्ध ज्योतिषयो के कुल मे शक १५२८ मे उत्पन्न हुए थे। शक १५४७ मे जातक मार्गपद्म नामक जातक ग्रथ लिखा था। केशवी जातक पद्धति पर प्रौढमनोरमा टीका भी इन्ही की लिखी हुई है। इन्होने शक १५४१ मे मकरदसारिणी पर मकरद विवरण नामक उदाहरण सहित टीका भी लिखी थी।

कमलाकर

कमलाकर ज्योतिष के एक प्रसिद्ध आचार्य है। इनका जन्म शक १५३० (१६०८ ई०) के लगभग हुआ था।

सिद्धाततत्त्वविवेक कमलाकर का प्रसिद्ध सिद्धात-ग्रथ है, जिसे इन्होने काशी मे शक १५८० मे प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार लिखा था। इसमे बहुत-सी नवीन बातो का समावेश है, परतु इन्होने लिखा है कि सूर्य-सिद्धात की गणना से यदि वेधसिद्ध गणना मे अतर दिखाई पडे तो भी उसमे बीज-सस्कार करके गणना न करनी चाहिए। एक प्रकार से इन्होने अमावस्या, पूर्णिमा आदि की परिभाषा ही बदल दी, अमावस्या वह क्षण नही रह गयी जब सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का अतर वस्तुत शून्य हो, अमावस्या वह क्षण हो गयी जब सूर्य-सिद्धात के अनुसार सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का अतर शून्य निकले। इस प्रकार यह भी सभव हो गया कि सूर्य-ग्रहण का मध्य अमावस्या से कई घटे बाद या पहले हो! इस विषय पर इनके वचन[1] सूर्य-सिद्धात के अधभक्त बडे जोरो से अपने समर्थन मे उपस्थित करते है। इन्होने भास्कराचार्य और मुनीश्वर की कई ठीक बातो का खडन केवल इसलिए किया है कि ये सूर्य-सिद्धान्त के अनुकूल नही है। स्पष्ट है कि कमलाकर के समय मे ज्योतिष का पतन इतना हो चुका था कि उन्नति करना भी पाप समझा जाने लगा।

[1] **अदृष्टफलसिद्धचर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि।**
गणितं यद्धि दृष्टार्थं तद्दृष्टचुद्भवतः सदा ।।
मध्यमाधिकार, ३२६।

सिद्धाततत्त्वविवेक मे कुछ नयी बाते भी लिखी गयी है, जिनसे पता चलता है कि ये विदेशी ज्ञान को एक हद तक अपनाना अनुचित नही समझते थे। किसी भारतीय ज्योतिष ग्रथ मे ध्रुवतारा के चलने की बात नही लिखी है, परतु इन्होने लिखी है। स्थानो के पूरब-पच्छिम अतर को पुराने ज्योतिषी रेखाश या देशान्तर कहते थे, परतु इन्होने इसका नाम 'तूलाश' रक्खा है, जो फारसी के 'तूल' (लबाई) शब्द से निकला है। विषुववृत्त पर खालदात्त नगर को मुख्य याम्योत्तर वृत्त पर समझ कर २० नगरो के अक्षाश और तूलाश दिये गये है जिसके अनुसार कुछ नगरो के अक्षाश और तूलाश नीचे दिये जाते है —

	अक्षाश		तूलाश	
	अश	कला	अश	कला
उज्जयिनी	२२	१	११२	०
इद्रप्रस्थ	२८	१३	११४	१८
सोमनाथ	२२	३५	१०६	०
काशी	२६	५५	११७	२०
लखनऊ	२६	३०	११४	१३
कन्नौज	२६	३५	११५	०
लाहौर	३१	५०	१०९	२०
काबुल	३४	४०	१०४	०
समरकद	३९	४०	९९	०

इसमे स्वय काशी का अक्षाश डेढ अश के लगभग अशुद्ध है। तूलाशो मे भी २ अश तक न्यूनता और अधिकता है। खालदात्त का औसत देशातर यहाँ के आँकडो से ३४° ५२′ ग्रिनिच से पश्चिम निकलता है। वहाँ भूमध्य रेखा पर कोई नगर नही है। निकटतम नगर जिसका नाम सभवत खालदात्त हो सकता है काबेडेल्लो है जिसका देशातर ३४° ५०′ पश्चिम और अक्षाश ७°०′ दक्षिण है।

इन्होने तुरीययत्र से वेध करने की रीति विस्तार के साथ लिखी है। यह भी लिखा है कि सूर्यग्रहण काल मे चद्रमा पर रहनेवालो को पृथ्वी पर ग्रहण लगा हुआ दिखायी पडता है जो बिलकुल ठीक है। मेघ, भूकप, उल्कापात का कारण भी लिखा है जो कुछ-कुछ ठीक है। अकगणित, रेखागणित, क्षेत्रविचार और ज्यासाधन की रीतियाँ कई बातो मे बिलकुल नयी है। अधिकाश सिद्धात-ग्रथो मे ३४३८ की त्रिज्या के अनुसार ज्याओ की सारणी दी गयी है, परतु कमलाकर के ग्रथ मे त्रिज्या

६० मान कर प्रत्येक अश की ज्या दी गयी है जो गणना के लिए बडी सुगम है। ग्रह के भोगाश से विषुवाश निकालने की सारणी भी है। यह बात किसी और सिद्धात ग्रथ मे नही है। इन सब नवीन बातो को लिखते हुए भी ये ज्योतिष की शोध के बिलकुल विरुद्ध थे यह दु खजनक बात है।

पूर्वलिखित मुनीश्वर इनके समकालीन थे और दोनो एक दूसरे के प्रबल विरोधी थे। मुनीश्वर भास्कराचार्य के पक्ष मे थे और ये सूर्य-सिद्धात के पक्ष मे।

सिद्धाततत्त्वविवेक ज्योतिष की आचार्य परीक्षा मे नियत है और इस पर प्रतापगढ (अवध) के मेहता सस्कृत विद्यालय के ज्योतिष के अध्यापक प० गगाधर मिश्र ज्योतिषाचार्य की अच्छी टीका है। इसका एक सस्करण सुधाकर द्विवेदी और मुरलीधर झा की टिप्पणी सहित ब्रजभूषणदास कपनी ने सन १९२४ मे प्रकाशित किया था।

नित्यानद

नित्यानद कुरुक्षेत्र के समीप इद्रपुरी के रहने वाले थे और सवत १६९६ (१६३९ ई०) मे सिद्धातराज नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसमे गोलाध्याय और गणिताध्याय के प्राय सब अधिकार है। विशेषता यह है कि इसमे वर्षमान सायन है और इसी के अनुसार ग्रहो के भगणो के मान दिये गये है, और मीमासाध्याय मे कहा गया है कि सायन मान ही देवर्षि के मत के अनुसार ठीक है, निरयण नही। इनके अनुसार एक कल्प मे सावन दिनो की सख्या १५७७८४७७४८१०१ है। इसलिए १ वर्ष मे ३६५ २४२५ दिन अथवा ३६५ दिन १४ घडी ३३ पल ७ ४ विपल होते है। इस समय सूक्ष्म यत्रो से निकाला हुआ सायन वर्ष का मान ३६५ दिन १४ घडी ३१ पल ५३ ४ विपल है।

ग्रहो को स्पष्ट करने के लिए बीज-सस्कार करने को भी कहा गया है।

भग्रहयुत्यधिकार मे ८४ तारो के भोगाश और शर दिये गये है।

अध्याय १६

जयसिंह और उनकी वेधशालाएँ

जीवनचरित्र

महाराज सवाई जयसिह द्वितीय जयपुर के थे और उनका जन्म १६८६ ई०[1] मे हुआ था[2]। तेरह वर्ष की आयु मे वे अबर राज की गद्दी पर बैठे। उसके थोडे ही वर्ष बाद औरगजेब का देहात हुआ। अपना राज स्थापित करने मे उन्हे पहले तो कठिनाई हुई, परतु १७०८ मे उन्होने पूरे प्रात पर अपना अधिकार कर लिया। १७१९ मे मुहम्मदशाह ने उन्हे आगरा प्रात का शासक नियुक्त किया और कुछ ही काल बाद मालवा का। उनकी मृत्यु १७४३ मे हुई।

जयसिह का काल अत्यत अशातमय था, परतु उन्होने अधिकतर चाणक्य-नीति से काम लिया और सफलता पायी। उन्होने नयी राजधानी स्थापित की, जिसका नाम जयनगर अथवा जयपुर पडा। उनके समय मे वह विद्या का केंद्र बन गया। उन्होने बहुत-सी धर्मशालाएँ और सराय बनवाये, और पाँच प्रमुख नगरो में ज्यौतिष वेधशालाएँ बनवायी। उन्होने वैज्ञानिक अन्वेषण का नवीन मार्ग खोज निकाला और उसमे उन्हे पर्याप्त सफलता भी मिली। इस बारे मे उनकी लगन आज भी अनुकरणीय है। उनकी वेधशालाएँ भारतीय इतिहास के अंधकार-मय काल मे परम उज्ज्वल प्रकाश-स्तभ की तरह उत्पन्न हुई।

बाल्यकाल से ही जयसिह को ज्योतिष से प्रेम था और, जैसा उन्होने स्वय लिखा है, सदा अनुशीलन करते रहकर इसके सिद्धातो और नियमो का प्रगाढ ज्ञान

[1] यह वही वर्ष है जिसमें प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन की प्रिंसिपिया नामक पुस्तक समाप्त हुई। इस पुस्तक में गति-विज्ञान के आधुनिक सिद्धात हैं।

[2] इस अध्याय की अधिकांश बातें के महोदय द्वारा लिखित 'ए गाइड टु दि ऑबज़र्वेटरीज़ ऐट दिल्ली, जयपुर, उज्जैन ऐंड बनारस' से ली गयी हैं।

उन्होने प्राप्त किया। परतु उन्होने देखा कि उस समय की सारणियो से गणना करने पर परिणाम दृक्तुल्य नही निकलता, अर्थात उन्होने देखा कि आकाशीय पिडो की वेधप्राप्त और गगनाप्राप्त स्थितियो मे अतर रहता है। इसलिए उन्होने स्वय नवीन सारणियाँ बनाने का सकल्प किया। इस उद्देश्य के लिए उन्होने प्रत्येक रीति से सफलता पाने की चेष्टा की। उन्होने हिंदू, मुसलिम और यूरोपियन ग्रथो का अध्ययन किया। कई विदेशी ग्रथो को एकत्रित किया और उनका अनुवाद करा लिया। उन्होने इन सब कामो के लिए कई विद्वान लगा रक्खे थे और उनमे से कुछ को तो उन्होने विदेश भेजा कि वे वहाँ से काम सीख कर आये। उन्होने कुछ यूरोपियन तथा अन्य देश के ज्योतिषियो को अपने यहाँ आमत्रित कर लिया। पहले उन्होने दिल्ली मे एक बडी-सी वेधशाला बनवायी और सात वर्षो तक सावधानी से वेध आदि करते रहे, जिसका मुख्य उद्देश्य था एक नवीन तारा-सूची बनाना। पीछे उन्होने जयपुर, उज्जैन, बनारस और मथुरा मे भी वेधशालाएँ बनवायी।

ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया

जयसिह के लेखो से, तथा अन्य सामग्री से इस बात का पता चलता है कि वे निम्न ग्रथो से परिचित थे टालमी की ऐलमैजेस्ट, उलूगबेग की ज्यौतिष सारणियाँ, यत्रराज (ऐस्ट्रोलेब) पर कुछ ग्रथ, ला हायर की ज्यौतिष सारणियाँ, फ्लैमस्टीड की हिस्टोरिया सेलेस्टिस ब्रिटैनिका, यूक्लिड की ज्यामिति, समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति पर कुछ पुस्तके और लघुगणक (लॉगरिथ्म) बनाने की रीति। अवश्य ही उन्होने अन्य पुस्तके भी पढी होगी, परतु उनका पता लगना असभव है, क्योकि उनका पुस्तकालय अब नष्ट हो गया है।

टालमी के सिनटैक्सिस नामक ग्रथ ने यूरोप मे एक हजार वर्षो तक राज किया और अरब वालो मे भी अनुवाद के बाद इस ग्रथ का राज लगभग उतने ही काल तक बना रहा। जयसिह इस पुस्तक से अत्यत प्रभावित थे और उन्होने इसका अनुवाद अरबी पाठ से कराया। अनुवादकर्ता जगन्नाथ नाम के एक पडित थे जो जयसिह के ज्योतिषियो के प्रधान थे। जगन्नाथ ने इस पुस्तक का नाम सम्राट-सिद्धात रक्खा। जगन्नाथ ने लिखा है कि जयसिह को नवीन यत्र बनाने का और नवीन रीतियाँ निकालने का बडा शौक था और इसमे वे बहुत चतुर थे। वेधशाला के लिए नाडी-यत्र, गोल-यत्र, दिगश-यत्र, दक्षिणोदिग्भित्ति, वृत्त-षष्ठाशक, सम्राट-यत्र और जयप्रकाश ये यत्र आवश्यक बताये गये है।

जयसिह की सारणियाँ

जिज मुहम्मदशाही नाम का सारणी-समूह जयसिंह के आदेशानुसार बना। इसका नाम उस समय के सम्राट मुहम्मद शाह के नाम पर रक्खा गया था। इस ग्रथ की एक अपूर्ण प्रति जयपुर मे है, एक सपूर्ण फारसी अनुवाद ब्रिटिश म्यूज़ियम में है। यह सारणी उलूग बेग की सारणी को परिशोधित करके बनायी गयी थी। भूमिका के अनुसार "उलूग बेग की सारणी ८४१ हिजरी के लिए थी। ज़िज मुहम्मद-शाही ११३८ के लिए है, अर्थात उलूग बेग की सारणी को बने २९७ वर्ष हो गये है। इतने समय मे अयन ४ अश ८ विकला हुआ। ज़िज मुहम्मदशाही मे क्राति आदि का मान गोल से लिया गया है।" आगे चल कर यह लिखा है "जयसिह ने देखा कि तारो की स्थितियाँ प्रचलित सारणियो से, उदाहरणत सईद गुरगानी और खाकानी की नवीन सारणियो से या तसहीलात मुल्ला चाँद अकबरशाही से, या हिंदू या यूरोपीय ग्रथो से, अशुद्ध निकलती है और वेधप्राप्त स्थितियो से बहुत अतर पडता है। विशेष कर अमावस्या के बाद चाँद दिखायी पडने मे गणना और आँख से देखी बात मे मेल नही है। परतु इन बातो पर धर्म-कर्म और राज्य की बातें आश्रित है। फिर, ग्रहो के उदय-अस्त मे भी वेध और गणना मे अतर रहता है, सौर तथा चाद्र ग्रहणो मे, और अन्य कई बातो मे भी, बहुत अतर पडता है। तो उन्होने परम शक्तिमान सम्राट (मुहम्मद शाह) से इस बात की चर्चा की। उन्होने प्रसन्न होकर उत्तर दिया कि आप ज्योतिष के सब भेद को जानते है, आपने इसलाम के ज्योतिषियों और गणितज्ञो को, ब्राह्मणो और पडितों को, तथा यूरोप के ज्योतिषियो को एकत्रित किया है और वेधशाला बनवायी है, तो आप ही इस प्रश्न को हल करने का कष्ट उठाये, जिसमे गणना से मिले समय और घटना के वस्तुत होने के समय का अतर मिट जाय।

"यद्यपि यह अत्यन्त कठिन कार्य था, तो भी उन्होने इस आज्ञा का पालन करने के लिए कमर कसा और दिल्ली में वेधशाला के योग्य कई यत्र बनवाये जैसे समरकद मे बने थे और जो मुसलमानी ग्रथो के अनुसार थे, जैसे पीतल का ज़ातुल-हल्का, जिसका व्यास वर्तमान गज़ से तीन गज़ था, और ज़ातुल शब्तैन, और ज़ातुल-ज़कतैन, और सद्स-फखरी और शामला।

"परतु यह देखकर कि पीतल के यत्र उतने सूक्ष्म वेध नही कर सकते थे जितना उन्होंने समझा था, क्योकि ये यत्र छोटे होते है, उनमें कला के अक नही बन पाते, और उनकी धुरी घिस जाती है और उनमें हचक उत्पन्न हो जाता है, वृत्त के केंद्र हट

जाते है, और यत्र के समतल विचलित हो जाते है, वे इस परिणाम पर पहुँचे कि हिपार्कस और टालमी के वेधो मे अशुद्धियाँ इन्ही कारणो से उत्पन्न हुई होगी।

"इसलिए उन्होने दारुल-खिलाफत शाह जहानाबाद (दिल्ली) मे अपने आविष्कार किये यत्र बनवाये, जैसे जयप्रकाश और रामयत्र और सम्राट-यत्र, जिसका अर्धव्यास १८ हाथ है और जिसमे एक कला डेढ जौ के बराबर है। इन्हे पत्थर और चूने से बनवाया, जो पूर्णतया स्थिर रहते है, और उनके बनाने मे ज्यामिति के नियमो पर ध्यान रक्खा गया और उन्हे याम्योतर तथा स्थान के अनुसार साधा गया, और नापने तथा स्थायी करने मे सावधानी रक्खी गयी। इस प्रकार वृत्तो के हिलने, केद्रो के हिलने तथा हटने, और कलाओ की नापो मे सब असमानता दूर हो गयी। इस प्रकार वेधशाला बनाने की शुद्ध रीति स्थापित हुई और वह अतर जो तारो और ग्रहो की गणना-प्राप्त तथा वेधप्राप्त स्थितियो मे था दूर कर दिया गया।

"और इन वेधो की सचाई की परीक्षा लेने के लिए उन्होने उसी प्रकार के यत्र सवाई जयपुर, मथुरा, बनारस और उज्जैन मे बनवाये। जब ये वेधशालाएँ बन गयी तो देशातरो का सस्कार करने पर सब जगह के वेधो मे एकता पायी गयी।"

" जब वेधशालाएँ बन गयी तो तारो की स्थितियाँ प्रति दिन देखी जाने लगी। जब इस काम मे कई वर्ष बीत चुके तो समाचार मिला कि यूरोप मे हाल मे कई वेधशालाएँ बनी है और वहाँ के विद्वान भी इसी प्रकार के काम मे लगे है और वे बराबर परिश्रम कर रहे है कि ज्योतिष की सूक्ष्मताओ को शुद्धता से नापा जाय।

"इस कारण पादरी मैन्युअल के साथ कई चतुर व्यक्तियो को उस देश मे भेजा गया और नवीन सारणियाँ मँगा कर, जो तीस ही साल पहले रची गयी थी, और उसके पहले की भी सारणियाँ मँगा कर और उनकी जाँच करके वेधो से तुलना की गयी, तो पता चला कि चद्रमा की स्थिति मे आधे अश का अतर पडता है। इसलिए वे इस परिणाम पर पहुँचे कि यूरोप के यत्र उतनी नाप के और उतने बडे व्यास के नही बने थे, इसीसे उनसे जो गतियाँ नापी गयी थी वे पूर्णतया सच्ची नही थी[1]। "

यत्रराज

जयपुर मे यत्रराजो (ऐस्ट्रोलेबो) का अच्छा सग्रह है। जयसिह ने पहले बडे यत्रराजो से काम लेना चाहा, परतु ये सतोषप्रद न निकले। जयपुर मे सात यत्र-

[1] **फ्लैमस्टीड का अधिकाश काम भित्ति-यत्र से हुआ था, जिसका अर्धव्यास ७ फुट था। फ्लैमस्टीड के पास दो दूरदर्शक भी थे।**

राज है जिनकी रचना सब एक प्रकार की नही है। साधारण यत्र मे धातु का एक वृत्त होता है जो अकित रहता है और एक कडी से लटकता रहता है। उस पर एक पट्टी घूम सकती है जिसको आकाशीय पिंड की दिशा मे साधा जाता है। इस प्रकार उस पिंड का उन्नताश ज्ञात हो जाता है।

अरब वाले बहुत पहले से ही अच्छे यत्रराज बनाने लग गये थे। सत्रहवी शताब्दी तक यह प्रधान यत्र था। साधारणत यह पीतल का बनता था और इसका व्यास २ इच से लेकर कई फुट तक होता था। अच्छे यत्रराजो मे गगना की सुविधा के लिए कई पत्र रहते थे जिन पर विशेष रेखाएँ खिची रहती थी। इनसे लेखाचित्रीय रीतियो से वही फल प्राप्त किया जा सकता था जो लबी गगना से प्राप्त होती थी। सक्षेप मे यत्रराज की रचना निम्न प्रकार की होती है

यत्रराज का उदर यह धातु का गोल पत्र होता है जिसकी बारी उठी हुई होती है, अर्थात यह छिछली थाली के समान होता है। यत्र के अन्य भाग इसी मे डाले जाते है। इसको अरबी मे उम्म (=माँ) कहते है।

उम्म के भीतर जाने योग्य एक वृत्ताकार पत्र मे झँझरी की तरह कटा रहता है। देखने मे ऐसा जान पडता है कि बहुत-सी पत्तियाँ बनी है, परतु ये पत्तियाँ अनियमित स्थितियो मे नही रहती। प्रत्येक पत्ती की नोक सावधानी से ठीक स्थान पर बनायी जाती है और किसी तारे की स्थिति सूचित करती है। उम्म के भीतर रेखाएँ खिची रहती है, या उम्म के भीतर डाले जाने वाले पत्र पर रेखाएँ खिंची रहती है जो झँझरी के खुले भागो से दिखायी पडती है। इस प्रकार तारो के निर्देशाक पढे जा सकते है। इस झँझरी वाले पत्र को अरबी में अकबूत (=मकडी) कहते है।

यत्रराज की पीठ पर धातु की एक पट्टी घूमती है। इस पट्टी के प्रत्येक सिरे पर समकोण बनाती हुई एक छोटी पट्टी होती है। इन दो छोटी पट्टियो में एक-एक छेद होता है। तारे को इन्ही छेदो मे से देखा जाता है। इस प्रकार लबी पट्टी, जिसे अरबी मे अलहिदाद कहते है, किसी भी तारे की दिशा में कर दी जा सकती है। इसे हम दर्शनी कहा करेगे।

ऊपर बताये गये वृत्ताकार धातुपत्र और दर्शक एक कील के बल घूमते है जिसे अरबी मे कुत्ब कहते है। इस उद्देश्य से कि कील निकल न पडे उसमे चौकोर छेद करके एक कीलक पहना कर कस दिया जाता है। इस कीलक का मुड बहुधा घोडे के मुड की आकृति का बना दिया जाता था। इसी से अरब वाले इसे फरस (=घोडा) कहते थे।

कुछ यत्र एक छल्ले से लटका रहता है। यह छल्ला उस घुडी मे पिरोया रहता है जो उम्म की बारी मे जडा रहता है।

यत्र की पीठ पर, जिधर दर्शनी रहती है, अश आदि अकित रहते है। इसके अतिरिक्त अन्य रेखाएँ या सारणियाँ रहती है जिनका चुनाव यत्र बनाने वाले या बनवाने वाले की इच्छा पर निर्भर है।

यत्र मे नापने वाले भाग तो केवल पीठ पर लगी दर्शनी और पीठ पर अकित अश आदि ही है। अन्य सब भाग केवल गणना की सुविधा के लिए रहते है।

सम्राट-यत्र

जयसिह ने जिन यत्रो को अपने ढग का बनवाया वे थे सम्राट-यत्र, जयप्रकाश और राम-यत्र। प्रत्यक्ष है कि जयप्रकाश का नाम जयसिह के नाम पर पडा। राम-यत्र का नाम जयसिह के एक पूर्वज रामसिह के नाम पर था। इन तीनो यत्रो मे से अधिकतम महत्त्व का सम्राट-यत्र था। नाम से भी इतना स्पष्ट हो जाता है।

इस यत्र से प्रत्येक क्षण आकाशीय पिंड सबधी दो कोण पढे जा सकते है, एक तो होराकोण और दूसरा वह जिसे क्राति कहते है। होराकोण पढने के लिए सम्राट यत्र मे बेलनाकार वक्रतल पर अशाकन खुदे रहते है, और क्राति पढने के लिए सीधे समतल पर। यत्र का स्वरूप बगल के चित्र मे दिखाया गया है। यत्र मध्य समतल के हिसाब से सममित है, अर्थात यत्र जैसा बायी ओर है, ठीक वैसा ही दाहिनी ओर भी है। अब यदि हम एक ओर के भाग पर, मान ले बायी ओरवाले भाग पर, विचार करे तो हम देखते है कि खडी भीत (दीवार) की एक कोर **क ख** पृथ्वी के अक्ष के ठीक समानातर है। **च छ ज झ** एक बेलनाकार
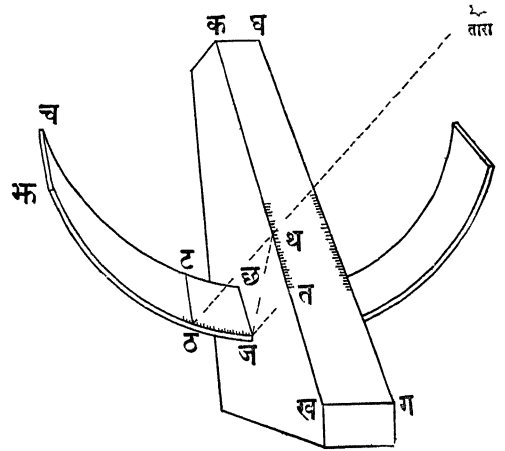
सम्राट-यंत्र।
इस यत्र से तारो के विषुवाश और क्रातियाँ नापी जाती है।

पृष्ठ है जिसका अक्ष **क ख** है। जब सूर्य याम्योतर[1] मे रहता है तो कोर **क ख** की परछाईं (प्रतिच्छाया) ठीक जड **छ ज** पर पडती है, परतु इसके कुछ समय पहले **च झ** और **छ ज** के बीच कही पडेगी। मान लो तब **क ख** की परछाईं **ट ठ** पर पडती है। तो बारी (किनारा) **च छ** अथवा **झ ज** पर खुदे अशाकनो से ठीक पता चल जाता है कि कितने घटो मे सूर्य मध्याह्न पर आयेगा। यही होराकोण है[2]।

कोर **क ख** पर अगुली या छडी रख कर और उसे आवश्यकतानुसार **क** या **ख** की दिशा मे हटा कर पता लगाया जा सकता है कि कोर के किस विंदु की परछाईं विंदु **ठ** पर पड रही है। मान लो कि पता चला कि वह विंदु **थ** है। फिर मान लो कि विंदु **ज** से रेखा **क ख** पर गिराया गया लब रेखा **ज त** है। तो **क ख** पर खुदे हुए अशाकनो को पढने से कोण **त ज थ** का मान ज्ञात हो जाता है। यही क्राति है।

यदि सूर्य के बदले किसी तारे का वेध करना हो तो **ज झ** के ऐसे विंदु पर आँख लगा कर देखना होगा कि वह तारा रेखा **क ख** पर दिखायी पडे, अर्थात वह समतल **ठ क ख** मे रहे ; फिर पता लगाना होगा कि **क ख** का कौन-सा विंदु तारे के सीध में है। तब **ज ठ** और **त थ** के मानो से तारे का होराकोण और क्राति इन दोनो का पता चल जायगा।

होराकोण से विषुवाश की गणना की जा सकती है, और विषुवाश और क्राति ये ही आकाशीय पिंड के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्देशाक है। इनके ज्ञात हो जाने पर आकाश मे पिंड की स्थिति पूर्णतया ज्ञात हो जाती है।

जब पिंड दक्षिण की ओर रहता है तब बेलनाकार पृष्ठ **च छ ज झ** की बारी **च छ** से काम लिया जाता है, परतु जब किसी उत्तर की ओर के पिंड का वेध करना रहता है तो बारी **च छ** पर आँख लगाना असुविधाजनक होता है। तब बारी **ज झ** पर आँख लगायी जाती है। बारी **च छ** के लिए भी कोर **क ख** पर अशाकन खुदे रहते है। **क ख** के बीच मे कुछ दूर तक दोहरा अशाकन रहता है, एक बारी **च छ** के लिए, दूसरा बारी **ज झ** के लिए।

[1] उत्तर, दक्षिण और शिरोविंदु से होकर जाने वाले समतल को याम्योत्तर कहते हैं।

[2] होराकोण वह है जो बताता है कि इष्ट क्षण से कितने घंटे बाद सूर्य (अथवा अन्य आकाशीय पिंड) याम्योत्तर में आयेगा।

जब आकाशीय पिंड याम्योत्तर के पश्चिम रहता है तब दाहिनी ओर के बेलनाकार खड का प्रयोग किया जाता है और कोर **ग घ** के अशाकनो को पढा जाता है।

कोर **क ख** और **ग घ** के अशाकनो को पढ सकने के लिए **क ख** और **ग घ** के बीच सीढी लगी रहती है। इसी प्रकार **च छ, ज झ**, इत्यादि की बगल मे भी कोई प्रबध रहता है कि वहाँ तक द्रष्टा सुगमता से पहुँच सके। दिल्ली के सम्राटयत्र का उत्तर-दक्षिण विस्तार १२० फुट है, पूरब-पच्छिम विस्तार १२५ फुट और ऊँचाई ६८ फुट।

इस यत्र से धूप-घडी का काम भी निकल सकता है, परतु यदि पाठक कभी अपनी घडी को ऐसे यत्र से मिलाना चाहे तो उसे स्मरण रखना चाहिए कि धूप-घडी और साधारण घडी के समयो मे अतर रहता है। यह अतर घटा-बढा करता है और घडी के समय से धूप-घडी का समय कभी आगे रहता है, कभी पीछे। महत्तम अतर १६½ मिनट तक पड सकता है।

जयप्रकाश

जयप्रकाश यत्र वस्तुत एक गोले का आधा भाग होता है जिसके भीतरी पृष्ठ पर रेखाएँ खुदी रहती है और अशाकन भी रहते है। गोले के केद्र को निर्धारित करने के लिए दो तार तने रहते है, जिनका मिलन-विदु गोले के ठीक केद्र पर रहता है। इस विदु की परछाई देखकर बताया जा सकता है कि सूर्य के निर्देशाक (जैसे होराकोण और क्राति) क्या है। यदि परछाई कटे हुए भागो मे कही पड रही हो तो ठीक उसी प्रकार के सहयोगी यत्र को देखा जाता है जिसमे ठीक वे भाग बने रहते है जो पहले यत्र मे कटे रहते है।

ग्रहो और तारो का वेध कर सकने के लिए गोले के पृष्ठ से कुछ भाग काट कर निकाले रहते है। इस प्रकार वेधकर्ता उचित स्थान पर आँख लगा कर देख सकता है कि जब आँख, केद्र और तारा तीनो एक ही सीध मे रहते है तब आँख किन अशाकनो पर रहती है।

राम-यत्र

राम-यत्र मे एक बेलनाकार ऊर्ध्वाधर भीत होती है और उस पर अशाकन रहते है। बीच मे एक ऊर्ध्वाधर स्तभ रहता है जिसकी परछाई देखी जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि सूर्य का उन्नताश इतना बढ जाय कि परछाई भीत पर न

पडकर यत्र के फर्श पर पडे। इसलिए फर्श पर भी अशाकन रहते है। तारो का भी वेध संभव हो सके इस उद्देश्य से भीत और फर्श दोनो थोडी-थोडी दूर पर कटे रहते है। फर्श भूमि से लगभग कमर की ऊँचाई पर बना रहता है। इस प्रकार उचित स्थान पर आँख लगायी जा सकती है। इस यत्र से आकाशीय पिंडों के उन्नताश (ऊँचाई) और दिगश (दिशा) ये दोनो निर्देशाक सुगमता से जाने जा सकते है। जयप्रकाश यत्र की तरह इस यत्र मे भी एक जोडी यत्रो की आवश्यकता पडती है, जिनमें से एक मे ठीक वे ही भाग कटे रहते है जो दूसरे मे नही कटे रहते।

दिगंश-यंत्र

दिगश-यत्र मे दो बेलनाकार ऊर्ध्वाधर भीते एक के भीतर एक रहती है और उनके केद्र मे खडा स्तभ रहता है। स्तभ लगभग ४ फुट ऊँचा होता है, भीतरी भीत ठीक उतनी ही ऊँची होती है और बाहरी उसकी दुगुनी ऊँचाई की। दोनो भीतों

दिगंश-यत्र, काशी।
इससे दिगश नापा जाता है।
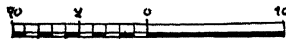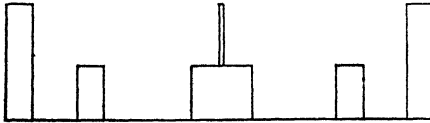
दिगंश-यंत्र, काशी।
इसमें पूर्वोक्त यत्र की काट दिखायी गयी है।

के सिरे अशाकित रहते है । भीतरी दीवार के सिरे पर आँख लगा कर देखा जाता है। केद्रीय स्तभ मे लोहे की सीधी खडी छड रहती है जिसका ऊपरी सिरा ठीक उतनी ही ऊँचाई पर रहता है जितनी बाहरी भीत की ऊँचाई होती है । इस यत्र से दिगश (दिशा) नापी जाती थी ।

नाडीवलय-यंत्र

नाडीवलय-यत्र वृत्ताकार पत्थर होता है, जिसके दोनो पृष्ठ समानातर और ठीक आकाशीय विषुवत के समतल मे रहते है । इससे तुरत पता चल जाता है कि सूर्य (या अन्य पिड) विषुवत के उत्तर है या दक्षिण । दिन मे बीच की कील की छाया देखकर समय भी जाना जा सकता है ।

दक्षिणोवृत्ति-यंत्र

याम्योत्तर मे बनी भीत पर कील लगी रहती है और इसे केंद्र मान कर दीवार पर एक अशाकित वृत्त खिचा रहता है, जिससे आकाशीय पिडो का याम्योत्तर उन्नताश
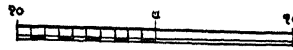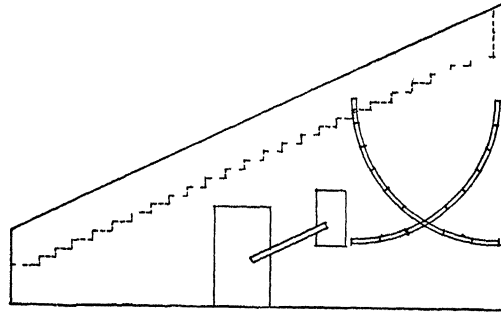
दक्षिणोवृत्ति-यत्र, काशी ।
इससे याम्योत्तर उन्नताश नापा जाता है ।

नापा जा सकता है । इसी को दक्षिणोवृत्ति-यत्र कहते है । सुविधा के लिए पूरे वृत्त के बदले वृत्त का केवल चतुर्थांश ही खिचा रहता है और शिरोविदु के उत्तर और

मापनी

१० ० १० २० ३० ४० ५० ६० ७० ८० ९० १०० फुट
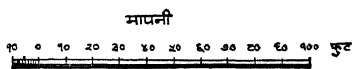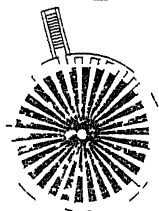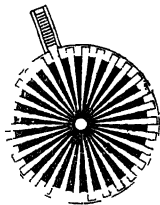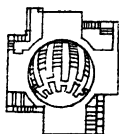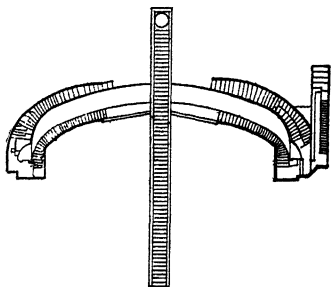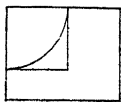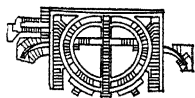
जंतर-मतर, दिल्ली ।

यह वेधशाला आज भी सुरक्षित अवस्था मे है ।

दक्षिण दोनो ओर वेध कर सकने के लिए दो कीले रहती है और दो वृत्त-चतुर्थांश बने रहते है।

षष्ठाश-यत्र

षष्ठाश-यत्र मे एक अँधेरी कोठरी मे वृत्त का छठवाँ हिस्सा याम्योत्तर-समतल मे बनी भीत पर अकित रहता है। सूर्य की रश्मियाँ एक छिद्र से आती है। वे कहाँ पडती है, यह देखकर सूर्य का उन्नताश जाना जा सकता है।

मिश्र-यंत्र

मिश्र-यत्र सम्राट-यत्र की तरह होता है, परतु बीच वाली सीढी और भीतो की अगल-बगल दो या अधिक अशाकित अर्धवृत्त होते है जिनके समतल क्षैतिज नही होते। दिल्ली मे जो मिश्र-यत्र है उसमे प्रत्येक ओर दो अर्धवृत्त है। एक अर्धवृत्त ग्रिनिच का याम्योत्तर प्रदर्शित करता है, दूसरा ज्यूरिच (जरमनी) का। इस प्रकार इस यत्र से दिल्ली मे बैठे-बैठे वे वेध किये जा सकते है जो ग्रिनिच या ज्यूरिच मे सम्राट-यत्र से हो सकते है।

दिल्ली और जयपुर की वेधशालाएँ

जयसिह की प्रत्येक वेधशाला मे पूर्वोक्त सब यत्र नही है। दिल्ली मे एक सम्राट-यत्र, एक जोडी जयप्रकाश, एक जोडी राम-यत्र और एक मिश्र-यत्र केवल ये ही है। मिश्र-यत्र की पूर्व भीत पर दक्षिणोवृत्ति-यंत्र भी बना है। मिश्र-यत्र की उत्तर वाली भीत ऊर्ध्वाधर होने के बदले उससे ५° का कोण बनाती है। इस भीत पर एक बडा-सा अशाकित वृत्त बना है। इसे कर्कराशि-वलय कहते है। जब सूर्य विषुवत से महत्तम उत्तर दूरी पर (कर्क राशि मे) पहुँचता है तो वह इस भीत के धरातल से कुछ कला (लगभग १० कला) उत्तर चला जाता है और इसलिए कुछ दिनो तक इस भीत पर धूप पडती है और केद्रीय कील की परछाही अशाकित वृत्त पर पडती है। इस यत्र से प्रत्यक्ष हो जाता है कि दक्षिणायन कब से आरभ हुआ।

दिल्ली की वेधशाला बहुत कुछ टूट-फूट गयी थी, परतु १८५२ मे जयपुर के राजा ने यत्रो की मरम्मत करवा दी। १९१० मे जयपुर के महाराजा ने वेधशाला का पुनरुद्धार कराया। इस कार्य मे कुछ यत्रो को फिर से बनवाना पडा और प्राय सभी अशाकनो को फिर से अकित करना पडा। खेद है कि अधिकाश अकन चूने मे किये गये और फिर मिट रहे है।

जयपुर की वेधशाला सुरक्षित दशा मे है। वहाँ पत्थर आदि के बडे यत्रो के अतिरिक्त धातु के भी कई यत्र है। सग्रहालय (म्यूजियम) मे अन्य कई यत्र भी है,

जो निस्सदेह जयसिह द्वारा सगृहीत हुए थे। जयपुर मे सम्राट-यत्र , षष्ठाश-यत्र, राशिवलय-यत्र, जयप्रकाश, कपाल, राम-यत्र, दिगश-यत्र, नाडीवलय-यत्र, दक्षिणोवृत्ति-यत्र, दो बडे यत्रराज, १७½ फुट व्यास का पीतल का उन्नताश चक्र यत्र और क्रातिवृत्त-यत्र है।

राशिवलय-यत्र सम्राट-यत्रो की तरह बने बारह यत्रो का समूह है। एक-एक राशि के लिए एक-एक यत्र बना है। इनमे चतुर्थाश बेलनाकार अशाकित खड विषुवत के धरातल मे न होकर ऐसे धरातलो मे है कि जब यत्र की विशेष राशि क्षितिज के ऊपर आती है तो उसका धरातल यत्र के धरातल मे रहता है।

कपाल बहुत कुछ जयप्रकाश की तरह है, परतु इससे "उदय होते समय राशियो का वेध किया जाता है"।

चक्र यत्र मे छ. फुट व्यास का धातु का एक अशाकित चक्र है, जिसकी धुरी पृथ्वी की धुरी के समानातर है। चक्र पर दर्शनी लगी है। वस्तुत यह आधु-

चक्र यंत्र, काशी।
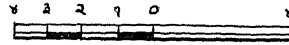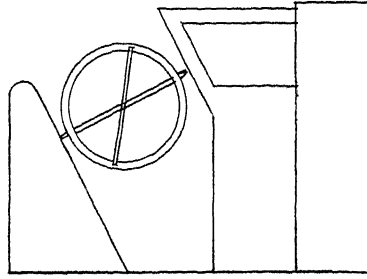
इस धातु के बने यत्र से विषुवाश और क्राति
की नाप हो सकती है।

निक इक्विटोरियल यत्र की तरह है, अतर केवल इतना ही है कि इसमे दूरदर्शी के बदले सरल दर्शनी है।

क्रातिवृत्त-यत्र मे पीतल के दो वृत्त है, जिनमे से एक सदा विषुवत के धरातल में रहता है और दूसरा रविमार्ग के धरातल मे लाया जा सकता है। सिद्धांततः
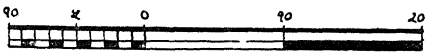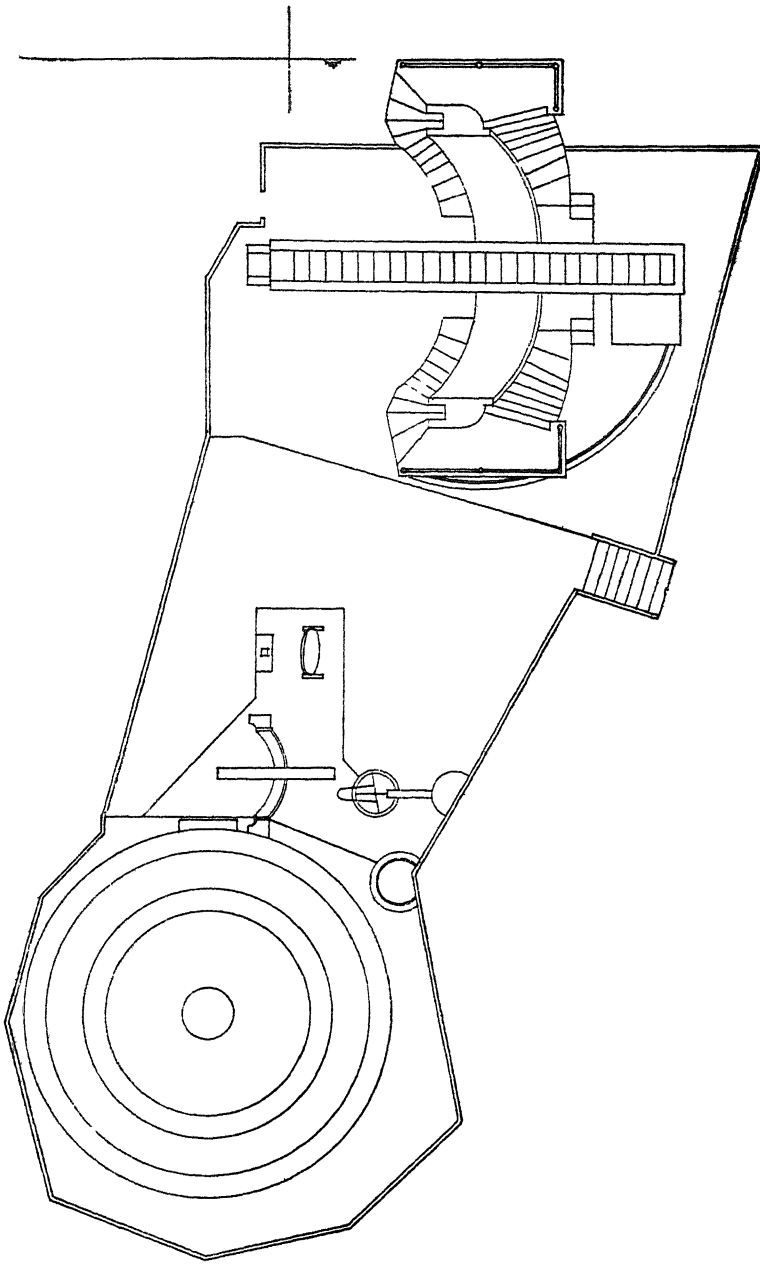
मानमंदिर, काशी।

जयसिंह की बनवायी यह वेधशाला आज भी देखी जा सकती है।

इससे भोगाश और शर नापे जा सकते है, परतु यह भद्दा यत्र है और इससे नापें सूक्ष्म नही हो पाती है ।

अन्य यत्रो का वर्णन पहले दिया जा चुका है । जयपुर का सम्राट-यत्र बहुत भव्य यत्र है । यह ९० फुट ऊँचा है और १४७ फुट लबा । इसके बेलनाकार चतुर्थाशो की त्रिज्या ४९ फुट १० इच है । इसके अशाकनो से एक विकला तक नाप सभव है, परतु वस्तुत इतनी सूक्ष्मता नही आ पाती, क्योकि परछाई पर्याप्त तीक्ष्ण नही पडती ।

काशी की वेधशाला

काशी मे जयसिह की बनवायी वेधशाला मानमदिर की छत पर है । मानमदिर को अबर-नरेश मानसिह ने बनवाया था । वेधशाला मणिकर्णिका घाट के पास है और साधारणत वेधशाला ही को लोग अब मानमदिर कहते है । वहाँ ये प्रधान यत्र है (१) सम्राट-यत्र, (२) नाडीवलय-यत्र, (३) दिगश-यत्र और (४) चक्र-यत्र ।

सम्राट-यत्र काशी मे वैसा ही बना है जैसा अन्य वेधशालाओ में, परतु नाप मे यह जयपुर के सम्राट-यत्र से छोटा है । इसकी ऊँचाई २२ फुट ३½ इच है, और तिरछी कोर, जिसकी परछाई देखी जाती है, ३९ फुट ८½ इच लबी है । प्रत्येक चतुर्थाश की त्रिज्या ९ फुट १½ इच है । तिरछी कोर और चतुर्थांशो की बारियाँ पत्थर की है और अशाकन सावधानी से बने है । चतुर्थांशों पर आधे घटे वाले चिह्नों पर धातु के छोटे वृत्त लगे है जिस पर अक खुदे है । उत्तर वाली बारी पर देवनागरी अक है, दक्षिण वाली पर अँग्रेज़ी अक । चतुर्थांशो के अकन मिनट की चौथाई तक बने है ; साथ ही वे अश और अश के दशम भी बताते हैं ।

पूरब वाली खडी भीत पर दक्षिणोवृत्ति-यत्र बना हुआ है । इस यत्र के प्रत्येक चतुर्थाश की त्रिज्या १० फुट ७ इच है । एक पृथक बना हुआ दक्षिणोवृत्ति-यत्र भी है ।

एक छोटा सम्राट-यत्र भी है, जिसकी ऊँचाई केवल सवा आठ फुट है ।

अन्य यंत्रो का ब्योरेवार वर्णन आवश्यक नही जान पडता । उनके निर्माण और प्रयोग की विधि पहले बतायी जा चुकी है ।

काशी की यह वेधशाला लगभग सन १७३७ ई० में बनी थी, परतु विविध यात्रियो और प्राचीन लेखको ने विविध दिनाक बताये है, जिससे यह दिनाक बहुत पक्का नही माना जा सकता ।

इति० १६

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे वेधशाला की एक बार मरम्मत हुई थी । १९१२ मे महाराजा जयपुर ने सारी वेधशाला का पुनरुद्धार कराया और कार्य बहुत सतोष-जनक रीति से हुआ ।

आधुनिक यत्रो से तुलना

बहुधा लोग यह जानना चाहते है कि आधुनिक यत्रो की तुलना मे जयसिह के यत्र कितने अच्छे ठहरते है । उत्तर यह है कि आधुनिक यत्र कही अधिक सूक्ष्म और शुद्ध मान देते है । सब से छोटा यत्र थियोडोलाइट भी, जिसमे दिगश और उन्न-ताश नापने के लिए चार इच या पॉच इच के वृत्त लगे रहते है, जयसिह के यत्रो से अधिक उत्तम मान देता है । कारण यह है कि इन वृत्तो का अशाकन चॉदी पर किया जाता है जो पीतल की अपेक्षा कम रवादार होती है और ये अशाकन इतने घने होते है कि उन्हे प्रवर्धक ताल द्वारा पढना पडता है । फिर यत्र की धुरी छेद मे नही पिरोयी रहती है । वह अग्रेजी अक्षर V की तरह द्विशूलो पर आरूढ रहती है । इससे धुरी मे हचक हो ही नही पाती । फिर, यत्र घडी की तरह सच्चा बनाया जाता है, और तिस पर भी उसकी सचाई पर भरोसा न करके उसकी त्रुटियो को नापा जाता है और गणना से इन त्रुटियो के प्रभाव को दूर किया जाता है। इन त्रुटियो को नापने मे एक आवश्यक क्रिया यह है कि यत्र के घूर्णशील भाग को उठाकर पलट दिया जाता है, जिसमे एक ओर की धुरी दूसरी ओर चली जाय । यह काम ईट-पत्थर के बने विशालकाय यत्रो से नही हो सकता । परतु सबसे अधिक सूक्ष्मता तो इससे आती है कि यत्र मे दूरदर्शी लगा रहता है । दूरदर्शी मे ऑख लगाने पर तारा तो दिखायी पडता ही है, साथ ही समकोण पर परस्पर काटती हुई दो महीन रेखाएँ दिखायी पडती है, जिन्हे स्वस्तिक तार कहते है, और तारा तथा ये रेखाएँ दोनो पूर्णतया तीक्ष्ण और स्पष्ट दिखायी पडती है । जब तारा ठीक स्वस्तिक के केद्र पर रहता है तब दूरदर्शी ठीक तारे की दिशा मे रहता है । स्वस्तिक और तारा दोनो के तीक्ष्ण और स्पष्ट दिखायी पडने के कारण दूरदर्शी को तारे पर साधने का काम बडी सूक्ष्मता से किया जा सकता है । बिना दूरदर्शी के यत्रो मे यत्र के दर्शनी नामक भाग के दोनो सिरे कभी भी स्पष्ट नही देखे जा सकते । जब निकट सिरे को स्पष्ट देखने की चेष्टा की जाती है तब केवल वही स्पष्ट दिखायी पडता है , जब दूर वाले सिरे को स्पष्ट देखने की चेष्टा की जाती है तब निकट वाला सिरा अस्पष्ट हो जाता है । यही कठिनाई सम्राट-यत्र, जयप्रकाश, राम-यत्र, इत्यादि सभी मे पडती है और उनसे सूक्ष्म वेध नही किया जा सकता ।

अध्याय १७

जयसिंह के बाद

जयसिह के बाद पाश्चात्य ज्योतिष भारत मे सुगमता से आने लगा क्योकि यहाँ अँग्रेजो की शक्ति बढने लगी। नीचे केवल उन्ही ज्योतिषियो की चर्चा की जा रही है जो प्राचीन भारतीय ज्योतिष के विद्वान थे।

मणिराम

ग्रहगणितचितामणि मे शक १६९६ चैत्र शुक्ल १ रविवार के प्रातकाल का क्षेपक दिया गया है, जो ग्रहलाघव से बहुत कुछ मिलता है और ध्रुवाङ्क उससे सूक्ष्म है।[1] ग्रथकार मणिराम सूर्य-सिद्धात के अनुयायी जान पडते है, परतु उन्होने ग्रहलाघव की पद्धति से काम लिया है। इन्होने स्वय वेध करके ग्रथ मे ध्रुवाक शुद्ध किये है। अयनाश सूर्य-सिद्धात के अनुसार माना है। इस ग्रथ मे कुल १२ अधिकार है और श्लोको की सख्या १२० है।

नृसिह उपनाम बापूदेव शास्त्री

बापूदेव शास्त्री बनारस मे ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य थे और इस प्रान्त में अब तक प्रसिद्ध है। भारतीय और पाश्चात्य ज्योतिष के ये अगाध विद्वान थे। इनका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के अहमदनगर जिले मे गोदा नदी के किनारे टोके गाँव मे शक १७४३ (१८२१ ई०) मे हुआ था। इन्होने नागपुर मे ढुढिराज मिश्र से बीजगणित, लीलावती और सिद्धातशिरोमणि का अध्ययन किया और अन्त मे काशी मे आकर सस्कृत कालेज के प्रधान गणिताध्यापक हुए। आप बगाल एशिया-

[1]इस अध्याय की सारी बातें मेरे द्वारा संपादित सरल विज्ञान-सागर नामक ग्रंथ में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी है।

टिक सोसाइटी के आदरणीय सभासद तथा कलकत्ता और इलाहाबाद विश्वविद्यालयो के सदस्य थे। आपको महामहोपाध्याय की पदवी भी मिली थी।

आप भारतीय ज्योतिष मे सुधार करने की आवश्यकता समझते थे और चाहते थे कि पचागो की गणना शुद्ध वेधसिद्ध मूलाको से करनी चाहिए। इसका प्रचार करने के लिए आपने पुस्तके लिखी और पचाग भी बनाना आरम्भ किया, परतु उस समय काशी के पडितो के दल ने इनका घोर विरोध किया। दैवदुर्विपाक से म० म० सुधाकर द्विवेदी इस विरोधी दल के अग्रणी थे, इसलिए ज्योतिष सबधी सुधार अब तक नही हो पाया। आश्चर्य तो यह है कि जिस सूर्य-सिद्धात को सुधाकर द्विवेदी स्वय आर्षग्रथ नही मानते थे[1] और कहते थे कि यह हिपार्कस नामक यवन ज्योतिषी के ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है[2] उसी को प्रामाणिक कह कर पचाग बनाने के लिए आवश्यक समझते थे और पहले के आचार्यो के चलाये हुए बीज-सस्कार की पद्धति को भी त्याज्य समझते थे। सुधाकर द्विवेदी का मत था कि तिथियॉ अदृश्य घटनाएँ है, उन्हे सूर्य-सिद्धात के अनुसार बनाना चाहिए, ग्रहण दृश्य घटना है, उसकी गणना आधुनिक ज्योतिष से करनी चाहिए। उत्तर प्रदेश के कई पचाग आज भी इसी सिद्धात पर बनते है, जिसका मुख्य कारण यही जान पडता है कि सूर्य-सिद्धात का नाता लोगो ने धर्म से जोड रक्खा है और इसलिए पूजा-पाठ की गणना के लिए उसके बदले किसी अन्य ग्रथ को ठीक मानना अनुचित समझते है, परतु यदि वे ग्रहण की भी गणना सूर्य-सिद्धात से करते है तो घटो का अतर पड जाता है और जनता भी देख लेती है कि ज्योतिषीगण अज्ञानी ढोगी है।

बापूदेव शास्त्री के बनाये हुए ग्रथो के नाम नीचे दिये जाते है

रेखागणित प्रथमाध्याय, त्रिकोणमिति, सायनवाद, प्राचीन ज्योतिषाचार्याशय-वर्णन, अष्ठादश विचित्र प्रश्न सग्रह सोत्तर, तत्त्वविवेक परीक्षा, मानमन्दिरस्थ यत्र वर्णन, और अकगणित। ये सब सस्कृत भाषा मे है और छपकर प्रकाशित हुए है। कुछ सस्कृत ग्रथ अप्रकाशित है, जैसे चलन-कलन सिद्धात के २० श्लोक, चापीय त्रिकोणमिति सबधी कुछ सूत्र, सिद्धातग्रथोपयोगी टिप्पणी, यत्रराजोपयोगी छेद्यक, और लघुशकुच्छिन्न क्षेत्रगुण।

[1] 'भटोत्पलानान्तरं भास्कराचार्यंत प्रागेव भारतवर्षेऽस्य सूर्यसिद्धान्तस्य प्रचारो जात'। सुधावर्षिणी टीका की भूमिका, पृ० १ (१९२५ ई० की छपी)।

[2] पंचांग विचार, पृ० ११, १२।

हिंदी मे इनके नीचे लिखे ग्रथ प्रकाशित हुए है अकगणित, बीजगणित, फलित विचार और सायनवादानुवाद । सिद्धातशिरोमणि के गोलाध्याय का अँग्रेजी अनुवाद इन्होने विलकिनसन के सहयोग से किया है। सूर्यसिद्धात का अँग्रेजी अनुवाद भी किया है। ये दोनो ग्रथ ई० सन १८६१-६२ मे प्रकाशित हुए थे ।

आपने सिद्धातशिरोमणि के गणित और गोल दोनो अध्यायो का शोधपूर्वक टिप्पणी के साथ एक सस्करण शक १७८८ (१८६६ ई०) मे और लीलावती का १८०५ शक मे प्रकाशित किया था ।

आप शक १७९७ से १८१२ तक नॉटिकल अलमनक के आधार पर पचाग बनाकर प्रकाशित करते थे । अब भी आपके नाम के पचाग मे यही विशेषता पायी जाती है । १८१२ शक मे आप का देहावसान हुआ ।

नीलाबर शर्मा

नीलाबर शर्मा का जन्म शक १७४५ (१८२३ ई०) मे हुआ था और आप गगा और गडकी के सगम से दो कोस पर पटना के रहने वाले मैथिल ब्राह्मण थे। आप ने यूरोपीय पद्धति के अनुसार गोलप्रकाश नामक ग्रथ सस्कृत भाषा मे लिखा है, जिसको १७९३ शक मे प० बापूदेव शास्त्री ने शोधकर छपाया था। इसमे पाँच अध्याय है ज्योत्पत्ति, त्रिकोगमितिसिद्धात, चापीयरेखागणितसिद्धात, चापीय त्रिकोण-मितिसिद्धान्त और प्रश्न ।

विनायक (उपनाम केरो लक्ष्मण छत्रे)

विनायक (उपनाम केरो लक्ष्मण छत्रे) का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त मे शक १७४६ (१८२४ ई०) मे हुआ था । आप गणित, ज्योतिष और सृष्टि-विज्ञान मे बडे निपुण थे और आपने बम्बई प्रान्त के अनेक स्कूलो और कालेजो मे उच्च पद पर काम किया । आपका लोकप्रिय नाम नाना था ।

आपने फ्रासीसी और अँग्रेजी ज्योतिष ग्रथो के आधार पर ग्रहसाधनकोष्ठक नामक एक मराठी ग्रथ शक १७७२ मे तैयार किया था, जो शक १७८२ मे छापा गया था। इस ग्रथ मे वर्षमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार लिया गया है परतु ग्रह-गतिस्थिति सायन लिया है, ज़ीटा पिसियम को रेवती का योगतारा माना है, जो शक ४९६ मे वसत विषुव पर था । अयन की वार्षिक गति ५० १ विकला मानी है । शक १७८७ (१८६५ ई०) से आपने नाविक पचाग के अनुसार पचाग प्रकाशित करना आरभ किया । इस बात मे आपा साहब पटवर्धन ने आप की सहायता

की, जिससे यह पचाग खूब चलने लगा और इसका नाम पड गया नानापटवर्धनी पचाग।

तिथि-साधन के लिए तिथि चितामणि के समान एक ग्रथ नाना साहब ने लिखा था, परतु अब इसका प्रचार नही है।

आपने स्कूलो के लिए मराठी मे पदार्थविज्ञान-शास्त्र और अकगणित की पुस्तके लिखी थी।

लेले

विसाजी रघुनाथ लेले का जन्म नासिक मे शक १७४९ (१८२७ ई०) मे हुआ था और शक १८१७ मे ६८ वर्ष की अवस्था मे देहान्त हुआ। आपने मराठी पत्रिकाओ मे इस बात का खूब आन्दोलन किया कि पचाग सायन पद्धति से बनाना चाहिए और इस बात मे केरोपत का विरोध किया। कई वर्ष तक ग्रहलाघव की सहायता से सायन पचाग बनाकर चलाते रहे। फिर नाविक पचाग की सहायता से काम लेते थे, परंतु इस काम के लिए अपना कोई स्वतत्र ग्रथ नही बनाया।

रघुनाथ

चितामणि रघुनाथ आचार्य का जन्म शक १७५० (१८२८ ई०) मे तामिल प्रान्त मे हुआ था। आप यूरोपीय ज्योतिष और गणित के अच्छे विद्वान थे और रायल एशियाटिक सोसायटी के फेलो थे। १८४७ ई० से आप मद्रास वेधशाला मे काम करने लगे और उसके प्रयम असिस्टेंट के पद पर पहुँच गये थे। आपने यहाँ से तारो की एक सूची तैयार की और दो रूपविकारी तारो की खोज की। ज्योतिष-चिंतामणि ग्रथ आपका ही का लिखा हुआ है जिसके तीन भाग है। पहले मे मध्यम गति, पृथ्वी आदि ग्रहो के आकार और उनके महत्त्व पर विचार किया गया है। दूसरे मे स्फुट गति आदि पर लिखा गया है और तीसरे का नाम करण-पद्धति है, जिसमे ग्रह-गणित करने के लिए बहुत से कोष्ठक है। यह ग्रथ तामिल भाषा मे लिखा गया था।

आप शक १७९१ से नाविक पचाग के आधार पर दृग्गणित पचाग बनाकर प्रकाशित करने लगे, जिसे आपके दो पुत्र शक १८०८ तक चलाते रहे। आपका वर्ष-मान सूर्यसिद्धात के अनुसार था और अयनाश २२°५′ था[1]।

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ ३०४-३०५।

गोडबोले

कृष्णशास्त्री गोडबोले का जन्म शक १७५३ (१८३१ ई०) मे बबई प्रात में हुआ था। उस प्रात के कई स्कूलो के शिक्षक के पद पर रह कर आप हेडमास्टरी से रिटायर हुए और पूना मे रहने लगे थे। आपने बम्बई की वेधशाला मे भी कुछ दिन काम किया था। १८८६ ई० मे आपका स्वर्गवास हुआ।

शक १७७८ मे आपने वामनकृष्ण जोशी गद्रे के सहयोग से ग्रहलाघव का मराठी भाषातर उदाहरण सहित किया, जो प्रधानत विश्वनाथ की टीका का भाषातर है। इस पुस्तक का दूसरा सस्करण भी छपा है। कृष्ण शास्त्री ने ग्रहलाघव की उपपत्ति भी मराठी मे लिखी है। शक १८०७ मे एक छोटा-सा ज्योतिषशास्त्र का इतिहास लिखा था। आपने पाठशालोपयोगी बहुत-सी गणित की पुस्तको की रचना की थी।

चद्रशेखर सिह

चन्द्रशेखर सिह सामन्त का जन्म शक १७५७ (१८३५ ई०) मे उडीसा प्रात मे कटक से ५०-६० मील पच्छिम खडपारा गाँव के एक राजवश मे हुआ था। बचपन मे आपने सस्कृत, व्याकरण, स्मृति, पुराण, तर्कशास्त्र और आयुर्वेद की शिक्षा पायी थी और सभी महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रथो को पढ लिया था। जब आप दस वर्ष के थे तब आपके एक चाचा ने आपको फलित ज्योतिष का कुछ पाठ पढाया और आकाश के कुछ नक्षत्रो और ग्रहो को दिखाया। धीरे-धीरे इस बालक का मन आकाश का दर्शन करने और तारो की बदलती हुई स्थिति को देखने मे लग गया। इन्होने घर के पुस्तकालय मे सस्कृत सिद्धात के जितने भी ग्रथ मिले सबको अपने-आप ही भाष्यो की सहायता से पढ डाला।

जब आप ग्रहो की स्थिति की गणना करने लगे तब आपको विदित हुआ कि गणना से ग्रहो की जो स्थिति निकलती थी, वह आकाश मे ग्रहो की प्रत्यक्ष स्थिति से नही मिलती थी, दोनो मे बडा अन्तर पडता था।

अपने बनाये स्थूल यत्रो से आपने सूर्य, चद्रमा और ग्रहो के मूलाको का सशोधन करके एक पुस्तक लिख डाली, जिसका नाम है सिद्धातदर्पण। यह ज्योतिष-सिद्धात का एक सुन्दर ग्रथ है। जगन्नाथपुरी और उडीसा प्रात मे इसी के अनुसार बनाये हुए पचाग शुद्ध माने जाते है।

सिद्धातदर्पण का मूल तालपत्र पर उडिया अक्षरो मे लिखा गया था, जिसको कटक कालेज के गणित के अध्यापक श्री योगेशचन्द्र राय ने अपनी अँग्रेजी भूमिका

के साथ सन १८९९ ई० (श० १८२१) मे छपाया है। यह ग्रथ उडीसा और बिहार के ज्योतिष के छात्रो को पढाया जाता है।

शकरबालकृष्ण दीक्षित

शकर बालकृष्ण दीक्षित का जन्म भी शक १७७५ मे आषाढ शुक्ल १४ भौमवार (ता० २०-२१ जूलाई, सन १८५३ ई०) को रत्नागिरी के मुरुड गॉव मे हुआ था। कठिनाई के कारण आपकी शिक्षा मैट्रिकुलेशन से अधिक नही हुई थी। महाराष्ट्र प्रान्त के अनेक मराठी और अँग्रेजी स्कूलो और ट्रेनिग कालजो मे आपने शिक्षक का काम किया। आपकी बुद्धि बडी प्रखर थी। आपने मराठी मे विद्यार्थी बुद्धिवर्धिनी (सन १८७६ ई०), सृष्टिचमत्कार (१८८२ ई०), ज्योतिर्विलास (१८९२ ई०) और धर्ममीमासा (१८९५ ई०) नामक पुस्तके छपाई थी। डब्ल्यू० एम० सिवेल के सहयोग से आपने इडियन कैलेडर नामक ग्रथ अँग्रेजी मे लिखा था। परन्तु आपका सबसे उपयोगी और गभीर विद्वत्ता का ग्रथ मराठी का भारतीय ज्योतिषशास्त्र है, जिसे आपने सन १८८७ ई० (शक १८०९) नवम्बर मास मे आरभ किया था और सन १८८८ (शक १८१०) के अक्टूबर तक समाप्त किया। इस पुस्तक पर आप को पूने की दक्षिण पुरस्कार कमेटी से ४५०) का पुरस्कार मिला था।

इस ग्रथ के पहले भाग के पहले विभाग मे वैदिक काल का वर्णन है, जिसमे वैदिक सहिता और ब्राह्मण मे आये हुए ज्योतिष सबधी वचनो का अवतरण देकर बताया गया है कि वैदिक ऋषियो को ज्योतिष सबधी बातो का कितना ज्ञान था।

दूसरे विभाग मे वेदागकाल की ज्योतिष का वर्णन है। इसमे आर्च और याजुष ज्योतिष का विस्तृत वर्णन है। इसके कुछ श्लोको का अर्थ भी जो पहले नही ज्ञात था किया गया है। अथर्व ज्योतिष की भी चर्चा है। इसी विभाग मे कल्पसूत्र, निरुक्त और पाणिनीय व्याकरण मे आये हुए ज्योतिष सबधी वचनो का विवेचन है। यह पहले प्रकरण मे है। दूसरे प्रकरण मे स्मृति और महाभारत मे आये हुए सब ज्योतिष सबधी वचनो का विवेचन किया गया है। इस प्रकार पहला भाग डिमाई अठपेजी नाप के १४७ पृष्ठो मे समाप्त हुआ है।

दूसरे भाग मे ज्योतिष सिद्धात-काल के ज्योतिष शास्त्र का इतिहास दिया गया है। पहले खड का नाम गणित-स्कध है, जिसके मध्यमाधिकार प्रकरण १ मे प्राचीन सिद्धातपचक के पितामह-सिद्धात, वसिष्ठ-सिद्धात, रोमक-सिद्धात और पुलिश-सिद्धात का विवेचन बडी विद्वत्ता के साथ किया गया है। फिर वर्तमान काल के

सूर्य-सिद्धात, सोम-सिद्धात, वसिष्ठ-सिद्धात और शाकल्य-सहितोक्त ब्रह्म-सिद्धात का उत्तम वर्णन है । इसके बाद प्रथम आर्यभट (शक ४२१) से लेकर सुधाकर द्विवेदी (शक १८०६) तक के ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्यो और उनके ग्रथो का वर्णन १११ पृष्ठो मे किया गया है । ग्रथो मे लिखे हुए काल की शुद्धता जाँचकर लिखी गयी है और यह भी बताया गया है कि किस ग्रन्थ मे क्या विशेषता है ।

इसके बाद भारतीय ज्योतिष पर मुसलमान ग्रथकारो, विशेषकर अलबीरूनी के मत का विवेचन किया गया है ।

दूसरे प्रकरण मे भुवनसस्था के सबध मे भिन्न-भिन्न आचार्यो के मतो का तुलनात्मक विवेचन है । तीसरे प्रकरण मे अयन (विषुव-चलन) पर विस्तृत विवेचन किया गया है । चौथा प्रकरण वेधप्रकरण है, जिसमे दिखाया गया है कि हमारे ग्रन्थो मे वेध सबधी बातो और यत्रो का कैसा वर्णन है ।

स्पष्टाधिकार के प्रकरण १ मे ग्रहो की स्पष्ट गति और स्थिति के सबध मे तुलनात्मक विवेचन है, प्रकरण २ मे पचाग और विविध सनो तथा सवतो का वर्णन किया गया है । इसी प्रकरण मे पचागशोधन विचार नामक एक अध्याय है, जिसके ३२ पृष्ठो मे दिखाया गया है कि पचाग का शोधन करना क्यो आवश्यक है, सायन-पचाग क्यो स्वाभाविक है ।

इस प्रकार कुल ४४२ पृष्ठो मे इतनी बाते लिखी गयी है । इसके आगे सक्षेप मे त्रिप्रश्नाधिकार, चद्रसूर्य-ग्रहणाधिकार, छायाधिकार, उदयास्ताधिकार, शृगोन्नति, ग्रहयुति, भग्रहयुति और महापात अध्याय है । भग्रहयुति अध्याय में योगतारो के भोगाशो और शरो पर तुलनात्मक विचार विस्तार के साथ किया गया है ।

सहितास्कध मे सहिता और मुहूर्त सबधी पुस्तको का वर्णन है ।

जातकस्कध मे जातकशास्त्र सबधी पुस्तको का वर्णन है और बताया गया है कि जन्मपत्री क्या है, कैसे बनायी जाती है और उसका सिद्धात क्या है । अत मे ताजिक पर भी थोडा-सा विचार है, जिससे वर्षफल बनाया जाता है । (ताजिक =फलित ज्योतिष के एक विभाग का मुसलमानी नाम)

उपसहार मे भारतीय ज्योतिष की तुलना अन्य देशो के ज्योतिष से की गयी है और इस सबध के अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानो के मतो का विवेचन किया गया है ।

अत मे सस्कृत और अन्य ज्योतिष ग्रन्थो की एक वृहत सूची तथा ज्योतिष ग्रथ-कारो की सूची दी गयी है । ज्योतिष के अतिरिक्त उन अन्य पुस्तको की भी सूची है

जिससे ज्योतिष सबधी अवतरण लिये गये है। अत मे विषयानुसार सूची देकर ५६० पृष्ठो मे पुस्तक समाप्त की गयी है।

केतकर

वेंकटेश बापूजी केतकर का जन्म पौष शुक्ल १४ शुक्रवार शक १७७५ (१८५४ ई०) मे हुआ था और १८७४ ई० से आप बबई प्रात के स्कूलो मे क्षिशक का काम करने लगे थे। आप बागलकोट के अँग्रेजी स्कूल मे हेडमास्टर के पद पर भी रहे है। आप प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान और ग्रथकार थे। आपकी मृत्यु शक १८५२ (१९३० ई०) मे ७६$\frac{1}{2}$ वर्ष की अवस्था मे हुई।

आपने ज्योतिष पर कई ग्रथ लिखे है, जिनके नाम ये है सस्कृत मे ज्योतिर्गणित, केतकीग्रहगणित, वैजयन्ती, केतकी परिशिष्ट, सौरार्यब्रह्मपक्षीय तिथिगणितम्, केतकी वासना भाष्यम्, शास्त्रशुद्धपचागअयनाश निर्णय और भूमण्डलीय सूर्यग्रहणगणित, और मराठी मे नक्षत्र विज्ञान, ग्रहगणितम्, गोलद्वयप्रश्न, भूमडलीयगणित।

ज्योतिर्गणित

यह बडे आकार के लगभग ५०० पृष्ठो का ग्रन्थ है, जिसमे पचाग बनाने, ग्रहण की गणना करने, नक्षत्रो के उदय और अस्त का गणित करने की सभी आवश्यक वातो के लिए कोष्ठक दिये गये है, जिनके आधार पर पचाग सुगमता और शुद्धता पूर्वक बनाये जा सकते है। जिन पाश्चात्य गवेषणाओ और गणनाओ के आधार पर यह कोष्ठक बनाये गये है उनके सूत्र भी दे दिये गये है। दशमलव भिन्न का उपयोग कर के गुणा भाग करने का काम बहुत सरल कर दिया गया है। भुजज्या, कोटिज्या आदि की सारिणी दे दी गयी है। यह एक अपूर्व ग्रथ है, जिससे ग्रयकर्ता के गभीर परिश्रम और विद्वत्ता का पता चलता है। इसके ध्रुवाक शक १८०० के है। इस ग्रथ मे इन्होने रेवती योगतारा को नक्षत्र चक्र का आदि विन्दु मानकर तथा चित्रा को नक्षत्र चक्र का मध्य मानकर दोनो प्रकार से अयनाश दे दिये है, क्योकि महाराष्ट्र प्रात मे इन दोनो पद्धतियो से पचाग बनाये जाते है और प्रत्येक के समर्थक बडे-बडे विद्वान है। परतु पीछे से ये केवल चित्रा मत के समर्थक हो गये और केतकी ग्रहगणित तथा पचाग अयनाश निर्णय मे यह सिद्ध किया कि प्राचीन परपरा के अनुसार चित्रातारा ही नक्षत्र चक्र का मध्य होना चाहिए, जिससे अश्विनी नक्षत्र या मेष का आदि विंदु चित्रा से १८०° पर ठहरता है। यह ग्रथ शक १८१२ के लगभग लिखा गया था।

केतकी ग्रहगणित

यह ग्रहलाघव के ढग पर, सस्कृत श्लोको मे, अर्वाचीन ज्योतिष के आधार पर पचाग बनाने के लिए उपयोगी ग्रथ है। पुराने ढग के पडित श्लोको को याद करके गणना करने का काम सुगमता से कर सकते है, अत उनके लिए यह बहुत उपयोगी है। इससे तिथि, नक्षत्र, आदि की तथा ग्रहो की, स्पष्ट गणना पर्याप्त शुद्ध होती है।

इस पर ग्रथकार ने अपनी अकविवृति व्याख्या भी की है, जिसमे उदाहरण देकर ग्रन्थ को और सुगम बना दिया है। इसके साथ ग्रथकार के सुयोग्य पुत्र दत्तराज वेकटेश केतकर ने केतकीपरिमलवासनाभाष्य नामक टीका लिखी है, जिसमे चित्र देकर वैज्ञानिक रीति से नियमो की उपपत्तियो का वर्णन विस्तार के साथ किया है। यह पुस्तक शक १८१८ मे लिखी गयी थी और शक १८५१ (१९३० ई०) मे आर्य-भूषण मुद्रणालय से प्रकाशित हुई। सस्कृत मे अर्वाचीन ज्योतिष पर यह अच्छी पुस्तक है।

वैजयन्ती—इसमे पचागोपयोगी तिथि, नक्षत्र और करणो की गणना करने के लिए सारणियाँ है जिनसे गणना बडी आसानी से की जा सकती है। इसमे चद्रमा मे केवल ५ सस्कार देकर काम लिया गया है।

नक्षत्र-विज्ञान—इसमे आकाश के विविध प्रकार के तारो का वर्णन, उनकी सूची, भोगाश, शर तथा आकाश के मानचित्र दिये गये है। जिन नक्षत्रो के नाम भारतीय ज्योतिष मे नही है, उनके नाम इन्होने स्वय बनाये है, जैसे 'ओफियूकस' के लिए 'भुजगधारि', 'पेगासस' के लिए 'उच्चैश्रवा', 'लायरा' के लिए 'स्वरमण्डल', आदि।

तिलक

बाल गगाधर तिलक का जन्म शक १७७८ (१८५६ ई०) मे हुआ। आप गणित, ज्योतिष, विज्ञान, प्राचीन इतिहास, दर्शन और वेद के अद्वितीय विद्वान थे। राजनीति के भी आप प्रकाड पडित और नेता थे, जिसके कारण आप को कई बार जेल जाना पडा था। इससे आप देश-विदेश सभी जगह प्रसिद्ध है और आप को 'लोकमान्य' कहा जाता है। आप 'मराठा' नामक अँग्रेजी पत्र तथा 'केसरी' नामक मराठी पत्र के सफल सम्पादक थे। आप के लिखे तीन ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है (१) ओरायन, (२) आर्कटिक होम इन दि वेदाज, और (३) गीता-रहस्य।

ओरायन

यह अँग्रेजी मे ज्योतिष-सबधी ग्रथ है और सन १८९३ ई० मे लिखा गया था। इसमे आप ने वेद, ब्राह्मण, सहिता तथा ज्योतिष के ग्रथो से सिद्ध किया है कि किसी समय वसत विषुव ओरायन (मृगशिरा) नामक नक्षत्र मे था, जिससे वेद का काल ४५०० वर्ष ईसा पूर्व ठहरता है। इसके पहले पाश्चात्य विद्वान कहते थे कि वेदकाल २००० ईसा पूर्व से अधिक पुराना नही है। आप के मत का समर्थन प्रोफेसर याकोबी ने भी अपनी स्वतन्त्र गणना से किया। इस ग्रथ की गभीरता और नवीनता पर विदेशी पण्डित मैक्समूलर भी मुग्ध थे।

आर्कटिक होम इन दि वेदाज भी अँग्रेजी का ग्रथ है, जिसमे आपने वेदो, पुराणो तथा ईरान की पौराणिक कथाओ और भूगर्भविज्ञान के आधार पर सिद्ध किया है कि प्राचीन आर्य उत्तरी ध्रुव के पास निवास करते थे और वही से जैसे-जैसे जलवायु प्रतिकूल होता गया वे भारतवर्ष मे आये। यह पुस्तक सन १९०३ ई० मे लिखी गयी थी।

गीतारहस्य

यह दर्शनशास्त्र का एक अपूर्व ग्रथ है। इसमे भगवद्गीता के अनुवाद के साथ-साथ प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन की तुलना कर के दिखाया गया है कि भगवद्गीता का सिद्धान्त क्या है। इसी के एक श्लोक 'मासाना मार्गशीर्षोहम्' के अर्थ की खोज मे आपन 'ओरायन' ग्रथ का निर्माण किया था।

इन पुस्तको के सिवा अपने केसरी समाचार पत्र के द्वारा महाराष्ट्र प्रात मे ज्योतिष सबधी बातो की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया और बताया कि पचाग बनाने की रीति मे किस प्रकार का सुधार करने की आवश्यकता है। आप के मत के अनुसार एक पचाग महाराष्ट्र प्रात मे चलता है जिसमे अयनाश का मान रैवत पक्ष के अनुसार माना जाता है[1]। आप का देहावसान सन १९२१ ई० मे हुआ।

सुधाकर द्विवेदी

सुधाकर द्विवेदी काशी के निकट खजुरी ग्राम के निवासी थे। आप का जन्म शक १७८२ (१८६० ई०) मे हुआ था। प० बापूदेव शास्त्री के पेशन लेने पर आप बनारस सस्कृत कालेज के गणित और ज्योतिष के मुख्य अध्यापक हुए। आप को सरकार से महामहोपाध्याय की पदवी मिली थी। आप शक १८४४ (१९२२ ई०) मे स्वर्गवासी हुए।

[1] अर्थात रेवती (जीटा पिसियम) नामक तारे से नक्षत्र-चक्र का आरंभ माना जाता है।

आप गणित और ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान थे। आपने अनेक प्राचीन ज्योतिष ग्रथो को शोध करके टीकाएँ लिखी है और अर्वाचीन उच्च गणित पर स्वतन्त्र ग्रथ भी लिखे है। आपके रचे ग्रथो के नाम ये है

(१) दीर्घवृत्त लक्षण (शक १८००), (२) विचित्र प्रश्न (शक १८०१) जिसमे २० कठिन प्रश्न और उत्तर है, (३) वास्तव चद्रशृगोन्नतिसाधन (शक १८०२) इसमे लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेश, कमलाकर, बापूदेव आदि की लिखी रीतियो मे दोष दिखा कर यूरोपीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वास्तव शृगोन्नति साधन कैसे किया जाता है, दिखाया गया है। इसमे ९२ पद्य है।

४—द्युचरचार (शक १८०४) मे ग्रह की कक्षा का विवेचन यूरोपीय ज्योतिष के अनुसार किया गया है।

५—पिडप्रभाकर शक १८०७ मे लिखा गया था, इसमे वास्तु (भवन-निर्माण) सबधी बाते है।

६—भाभ्रमरेखा निरूपण मे दिखाया गया है कि शकु की छाया से कैसा मार्ग बनता है।

७—धराभ्रम मे पृथ्वी के दैनिक भ्रमण का विचार किया गया है।

८—ग्रहणकरण मे इस पर विचार किया गया है कि ग्रहणो का गणित कैसे करना चाहिए।

९—गोलीय रेखागणित।

१०—यूक्लिड की ६ठवी, ११वी और १२वी पुस्तको का सस्कृत मे श्लोकबद्ध अनुवाद।

११—गणक-तरगिणी मे भारतीय ज्योतिषियो की जीवनी और उनकी पुस्तको का सक्षिप्त परिचय है, जिसकी चर्चा यहाँ कई जगहो पर आयी है। यह शक १८१२ मे लिखी गयी थी।

ये सब ग्रथ सस्कृत मे है। सुधाकरजी की सस्कृत टीका के ग्रथ ये है—

१—यत्रराज पर प्रतिभाबोधक टीका, शक १७९५।

२—भास्कराचार्य की लीलावती पर सोपपत्तिक टीका, शक १८००।

३—भास्कराचार्य के बीजगणित की सोपपत्तिक टीका, शक १८१०।

४—भास्कराचार्य के करण-कुतूहल की वासनाविभूषण टीका, शक १८०३।

५—वराहमिहिर की पचसिद्धान्तिका पर पचसिद्धातिकाप्रकाश टीका, शक १८१० मे, जो डाक्टर थीबो की अग्रेज़ी टीका और भूमिका के साथ शक १८११ मे प्रकाशित हुई थी।

६—सूर्यसिद्धात की सुधावर्षिणी टीका १९०६ ई० के जून मास मे पूर्ण हुई थी और इसका पहला सस्करण 'बिब्लियोथिका इडिका' के दो भागो (सख्या ११८७ और १२९६) मे सन १९०९ और १९११ ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसका दूसरा सस्करण बगाल की एशियाटिक सोसायटी ने १९२५ ई० मे प्रकाशित किया, जो इस समय काशी मे मिलता है।

७—ब्राह्मस्फुट-सिद्धात टीका सहित १९०२ ई० मे प्रकाशित हुआ था।

८—आर्यभट द्वितीय का महासिद्धात टीका सहित पहले बनारस सस्कृत सीरीज, सख्या १४८, १४९ और १५०, मे निकला था, जो १९१० मे पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया था।

९—याजुष और आर्च ज्योतिष पहले बनारस की 'पडित' पत्रिका मे सोमाकर और सुधाकर के भाष्य सहित निकला था, जो १९०८ ई० मे अलग पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया गया था।

१०—ग्रहलाघवकी सोपपत्तिक टीका, जिसमे मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाएँ भी सम्मलित की गयी है।

इन टीकाओ के अतिरिक्त हिदी मे चलनकलन, चलराशिकलन और समीकरणमीमासा नाम की उच्च गणित की पुस्तके भी सुधाकर जी की लिखी हुई है। अतिम पुस्तक दो भागो मे विज्ञान-परिषद, प्रयाग, से प्रकाशित है। आपने हिदी भाषा की भी कई पुस्तके लिखी है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि सुधाकर द्विवेदी इस प्रान्त मे ज्योतिष और गणित के अद्भुत विद्वान हो गये है। पता नही, आप ज्योतिष के आवश्यक सुधार के प्रतिकूल क्यो थे जब इस सबध मे बहुत प्राचीनकाल से यह परपरा चली आयी है कि दृक्तुल्यता के लिए आवश्यक सुधार करते रहना चाहिए। इस विषय पर आपका मत बापूदेव शास्त्री के सबध मे बताया जा चुका है।

पिल्लई

एल० डी० स्वामी कन्नू पिल्लई का जन्मकाल, जन्मस्थान आदि का पता नही मिल सका, परतु आपकी अँग्रेजी मे लिखी इडियन क्रोनॉलोजी एक अनोखा ग्रथ है। इसमे सौर और चाद्र तिथियो और ग्रहो की गणना करने की रीति, उपपत्ति और सारणियाँ दी गयी है और इससे ईसवी सन के २००० वर्षो की तिथि, नक्षत्र, जन्मपत्र तथा अन्य ऐतिहासिक लेखो की तिथियो की शुद्धता परखी जा सकती है। इसमे भारतवर्ष भर मे प्रचलित सभी प्रकार के सवतो, तिथियो और तारीखो के जानने

की रीति बहुत सरलता से समझायी गयी है । थोडे-से अभ्यास से किसी तारीख की शुद्धता की जाँच एक मिनट मे हो सकती है ।

इस पुस्तक मे बडे आकार के ११४ पृष्ठो मे भारतीय ज्योतिष के सभी व्यावहारिक अगो पर बहुत ही वैज्ञानिक रीति से प्रकाश डाला गया है । किस मास मे कौन-सी तिथि किस पर्व या त्योहार के लिए कैसे निश्चित की जाती है, पचाग कैसे बनाये जाते है, पचाग के अग क्या है, इसका पूरा विवेचन किया गया है । इसके बाद २३२ पृष्ठो मे २२ सारणियाँ है । पहली सारणी मे दक्षिण भारत मे प्रचलित ९६७ ई० से१९२६ ई० तक का सवत्सर-चक्र दिया गया है । दूसरी मे सूर्यसिद्धात और आर्यसिद्धात (आर्यभटीय) के अनुसार सौरमासो के मान, अधिमासो तथा क्षय मासो की सीमाएँ और तिथियो के मान बताये गये है । तीसरी मे नक्षत्र के नाम, उनके देवता और उनके मान वर्तमान प्रथा तथा गर्ग और ब्रह्मा के अनुसार दिये गये है । चौथी मे केवल एक पृष्ठ मे यूरोपीय तारीखो की शाश्वत जत्री दी गयी है, जिससे कोई भी ३००१ ई० पूर्व से लेकर २३९१ ई० तक की, अर्थात कलि सवत के आरभ से ५३९९ कलि सवत तक की ईसवी तारीखो के वार आध मिनट मे बिना गणना के निकल सकता है । पाँचवी मे नक्षत्रो, योगो और सवत्सरो के गुणक, छठवी मे सूर्यसिद्धात और आर्यसिद्धात के अनुसार शताब्दि ध्रुवाक और तिथि के अश, कला, विकला तक के गुणक दिये गये है । सातवी मे सूर्यसिद्धात और आर्यसिद्धात के अनुसार ३००० वर्ष के मेषसक्रान्तिकाल के सौर वर्ष और चद्रकेद्र के ध्रुवाक तथा सौर वर्ष की पहली अमावस्या के ध्रुवाक तथा सूर्य और चद्रकेद्र की विकलात्मक गति के गुणक दिये गये है । आठवी मे यह जानने की रीति बतायी गयी है कि किस अँग्रेजी तारीख मे कौन-सी सौर तिथि, चाद्र तिथि, नक्षत्र, योग या करण है । नवी सारणी मे तिथि, नक्षत्र और योगो को स्पष्ट करने की रीति सूर्यसिद्धान्त और आर्यसिद्धात के अनुसार बतायी गयी है । इससे पचाग बहुत ही सुगमता से बनाये जा सकते है । दसवी सारणी के १०८ पृष्ठो मे ईसवी सन के आरभ से १९९९ ई० के अत तक के प्रत्येक मास की अमावस्या की अँग्रेज़ी तारीख और वार, कलियुग, विक्रम और ईसवी सन, अधिमास और क्षयमास, सौर ग्रहण के दिन, और वर्ष के आरभ काल का समय, उस समय का चद्रकेद्र, आदि, दिये हुए है, जिनसे २००० वर्ष के किसी तारीख की तिथि और वार ५ मिनट मे जाना जा सकता है । ग्यारहवी मे नक्षत्र और योग जानने के ध्रुवाक है । बारहवी मे १८४० ई० से १९२० ई० तक के कलियुग, शक, विक्रम, ईस्वी, हिजरी, कोल्लम सनो के अक और प्रत्येक मास की अमावस्या का मध्यम और स्पष्टकाल और सूर्य, चद्रमा के मन्दकेद्र दिये गये है । तेरहवी मे ८ से लेकर ३५ अक्षाश तक के एक-एक

अश के अन्तर के स्थानो तथा बम्बई और कलकत्ता के वर्ष के प्रतिदिन के सूर्योदय का समय दिया गया है। चौदहवी मे नर्मदोत्तर भारत मे व्यवहार किये जाने वाले ११६९ ई० से १९४० ई० तक के सवत्सरचक्र की सारणी है। पद्रहवी मे आरभ से लेकर १४२१ हिजरी सनो के समानार्थक ईसवी सन और उन महीनो के नाम, जिनमे हिजरी वर्ष आरभ होता है, दिये गये है। सोलहवी मे अर्वाचीन चाद्र गणना के अनुसार स्पष्ट तिथि निकालने के कोष्ठक है। सत्रहवी मे सूर्य, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि और राहु को स्पष्ट करने के कोष्ठक है। अठारहवी मे उपर्युक्त ग्रहो की स्पष्ट स्थिति दस-दस दिन के अतर पर सन १८४० से १९१९ ई० तक की बतायी गयी है, जो जन्मपत्र मिलाने वालो के लिए बहुत ही उपयोगी है। उन्नीसवी मे घडी और पल के मान दिन के दशमलव भिन्नो मे तथा बीसवी मे घटा और मिनट के मान दिन के दशमलव भिन्नो मे लिखे गये है। एक्कीसवी मे नवमाशो का (प्रत्येक नक्षत्र के एक-एक चरण का) मान बताया गया है। बाईसवी मे कलियुग के आरभ से किसी दिन तक के दिनो की सख्या (अहर्गण) जानने के कोष्ठक है। अत मे एक दृष्टि-सारणी है, जिससे तिथियो की स्पष्ट गणना मौखिक ही की जा सकती है।

यह ग्रथ ज्योतिष के विद्यार्थियो, इतिहासज्ञो, पुरातत्त्व के अन्वेषको और अदालतो के लिए अत्यत उपयोगी है। इसके विद्वान लेखक का देहावसान अभी हाल ही मे हुआ है।

छोटेलाल

लाला छोटेलाल का जन्म कब और कहाँ हुआ था, यह नही ज्ञात हो सका। आप एक सुयोग्य इजीनियर थे। कुछ वर्ष हुए आप का देहावसान हो गया। वेदाग-ज्योतिष पर आपने अँग्रेजी मे एक सुन्दर भाष्य लिखा है, जो १९०६-७ के हिदुस्तान रिव्यू मे प्रकाशित हुआ था। इसकी चर्चा वेदाग-ज्योतिष के सबध मे आ चुकी है। उससे प्रकट होता है कि आपने भारतीय ज्योतिष का अच्छा अध्ययन किया था और इसके साथ यूनान, मिस्र, बैबिलन आदि के प्राचीन ज्योतिष का भी तुलनात्मक अध्ययन किया था। आपने वेदाग-ज्योतिष के कई श्लोको का अर्थ बडी विद्वत्तापूर्वक लगाया था और अपना उपनाम बार्हस्पत्य रक्खा था।

दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

दुर्गाप्रसाद द्विवेदी का जन्म सवत १९२० (शक १७८५) मे अयोध्या से ८ कोस पच्छिम 'पण्डितपुरी' गाँव मे हुआ था। आप जयपुर के सस्कृत पाठशाला

के अध्यक्ष बहुत दिन तक रहे और अपनी विद्वत्ता के लिए महामहोपाध्याय की पदवी प्राप्त की।

भास्कराचार्य की लीलावती और बीजगणित पर आप ने सस्कृत और हिंदी म उपपत्ति सहित टीका और सिद्धातशिरोमणि का प्राचीन और नवीन विचारो से पूर्ण उपपत्तीन्दुशेखर नामक भाष्य लिखा है। चापीय त्रिकोणमिति, क्षेत्रमिति, सूर्य-सिद्धातसमीक्षा, अधिमास परीक्षा, पचाग तत्त्व नामक पुस्तके और अन्य पुस्तिकाएँ भी आप ने लिखी है। जैमिनिपद्यामृत नामक जैमिनि सूत्र का पद्यानुवाद सरस छन्दो मे उदाहरण सहित किया है। ज्योतिष के अतिरिक्त दर्शन और साहित्य मे भी आप ने ग्रथ लिखे है। आप का देहावसान सवत १९९४ मे हुआ।

चुलैट

दीनानाथ शास्त्री चुलैट एक अद्वितीय ज्योतिषी है, और वेदो के मर्मज्ञ भी। आप ने वेदो के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि बहुत-से मत्रो मे गणित और ज्योतिष सबधी बाते है। आप ने कई ग्रथ लिखे है, जिनमे वेदकाल-निर्णय और प्रभाकर-सिद्धात मुख्य है।

वेदकाल-निर्णय—इस ग्रथ मे लेखक ने यह सिद्ध किया है कि वेदो का समय केवल छ या साढे छ हजार वर्ष ही पुराना नही है, जैसा लोकमान्य तिलक ने अपने 'ओरायन' ग्रथ मे सिद्ध किया है, वरन् इसके कुछ मत्रो से सूचित होता है कि वे लाखो वर्ष पुराने है। लोकमान्य तिलक ने तो भगवद्गीता के 'मासाना मार्गशीर्षोऽहम' से केवल यही सिद्ध किया, और बडी कठिनता से, कि मार्गशीर्ष पहला मास इसलिए समझा जाता था कि छ हजार वर्ष पहले इसी नाम के नक्षत्र मे, अर्थात मृगशिरा नक्षत्र मे, वसत विषुव था। परतु चुलैटजी ने इसके प्रतिकूल यह सिद्ध किया है कि मृगशिरा नक्षत्र मे नही वरन् मार्गशीर्ष मास मे ही वसत का आरभ होता था, अर्थात उस समय अनुराधा या ज्येष्ठा नक्षत्र मे वसत विषुव था, इस प्रकार वह समय १८००० वर्ष पुराना था।

इसी प्रकार कात्यायन श्रौतसूत्र के भाष्यकार कर्काचार्य के उद्धरणो से आप सिद्ध करते है कि उनके समय मे वसत-विषुव चित्रा और स्वाती नक्षत्रो के बीच मे था, इसलिए कर्काचार्य का समय चौदह, पन्द्रह हजार वर्ष प्राचीन है। इस पुस्तक मे आप भूगर्भविज्ञान के अनेक चित्र देकर यह सिद्ध करते है कि सस्कृत साहित्य मे वर्णित जलप्रलयो और भूगर्भविज्ञान के विविध कालो में बहुत सामजस्य है। पुस्तक

अदभुत है और हिंदी भाषा मे लिखी गयी है। भाषा सरल और शुद्ध नही है, इसलिए पढने वालो को कुछ कठिनाई पडती है।

प्रभाकर-सिद्धात—इसमे ग्रहलाघव के मूलाको मे अर्वाचीन ज्योतिष के आधार पर बीजसस्कार देकर ग्रहो की शुद्ध गणना करने की रीति बहुत सुगम कर दी गयी है। इसी के आधार पर शास्त्री जी पहले प्रभाकर पचाग बनाते थे, जिसमे ऐसा उपाय किया गया था कि वह सारे भारतवर्ष मे काम दे सके। इसी के आधार पर बनाया हुआ भारतविजय पचाग इन्दौर के ज्योतिष सम्मेलन के बाद, जिसका आयोजन आप-ने ही इन्दौर सरकार की सहायता से किया था, सवत १९९५ मे प्रकाशित हुआ था। इस पचाग मे भी इतनी सामग्री भर दी गयी है कि यह एक उपयोगी ग्रथ-सा हो गया है।

इन्दौर के ज्योतिष सम्मेलन की रिपोर्ट भी एक वृहदाकार ग्रथ है, जिसमे दृग्गणना के पक्ष और विपक्ष दोनो ओर की बाते रखकर सिद्ध किया गया है कि दृग्गणना ही उचित है।

आप्ते

गोविन्द सदाशिव आप्ते का जन्म शक १७९२ (१८७० ई०) मे महाराष्ट्र प्रात मे हुआ था। आप गणित के प्रोफेसर रहे है और अवकाश ग्रहण करने पर उज्जैन की वेधशाला के प्रधान बहुत दिन तक रहे। आप का देहावसान १९४१ मे हुआ। आप ने शक १८५१ (१९२९ ई०) मे सर्वानन्द-करण नामक ज्योतिष ग्रथ की रचना प्रसिद्ध ग्रहलाघव के ढग पर की है। इसके पूर्व खड मे कुल ११ अधिकार है, जिनमे सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की गणना करने की सरल रीतियाँ बतायी गयी है। चद्रमा मे केवल पाँच सस्कार करने को कहा गया है। इस ग्रथ की विशेषता यह है कि इससे ग्रहो के जो भोगाश आते है वे सायन होते है। सायन से निरयण बनाने के लिए अयनाश घटा देना पडता है, जो अपने-अपने मत के अनुसार लगाया जा सकता है। इसलिए यह पुस्तक प्रत्येक पक्ष के लिए उपयोगी हो सकती है। इस सबध मे आप केतकर के चित्रापक्ष के प्रबल विरोधी है। आप ने एक अँग्रेजी पुस्तिका मे कई प्रमाणो से सिद्ध किया है कि भारतीय राशिचक्र का आदि स्थान वह नही है जहाँ से चित्रा तारा ठीक १८० अश पर है वरन् रेवती नक्षत्र का ज़ीटा पिसियम तारा है, जिसके अनुसार अयनाश लगभग ४ अश कम ठहरता है। आप के इस मत के समर्थक महाराष्ट्र मे कई विद्वान है। इस पक्ष के अनुसार वहाँ कई पचाग भी बनते है। चित्रा और रेवती पक्ष के पचागो मे मलमास के सबध मे बहुत भिन्नता

रहती है जिसके कारण पर्वो और त्योहारो के निश्चय करने मे वहाँ बहुत गडबडी रहती है ।

इस खड मे एक उपकरणाधिकार है, जिसमे चद्रमा की सूक्ष्मगति निकालने की भी रीति बतायी गयी है । इससे चद्रग्रहण और सूर्यग्रहण का समय सूक्ष्मतापूर्वक बताया जा सकता है ।

सूर्यातिक्रमणाधिकार मे यह बताया गया है कि बुध और शुक्र सूर्य के बिम्ब का वेध कब करते है । इस खड के परिशिष्ट मे आप ने दस-दस कलाओ की भुजज्या, कोटिज्या और स्पर्शज्या की सारणी दी है, जिसमे त्रिज्या १०००० मानी गयी है ।

उत्तर खड मे आपने पहले दशमलव भिन्नो के गुणा-भाग की रीति बता कर नवीन रीति से ग्रहगणना करने की विधि लिखी है, जिसमे त्रिकोणमिति, और गोलीय त्रिकोणमिति के अनुसार गणना करने की रीति बतायी गयी है, क्योकि यह उन्ही को प्रिय हो सकता है जो उच्च गणित का ज्ञान रखते है । इसलिए इस खड का नाम प्रौढ-रजन रक्खा गया है ।

इसमे सौरार्यतिथि-साधन, सूक्ष्म नक्षत्रानयन, तिथि-तारिखानयन और उप-पत्तिकथन नामक अध्याय बहुत महत्त्व के है ।

यह ग्रथ उज्जैन मे लिखा गया था, जिसकी वेधशाला का आप ने फिर से उद्धार किया है ।

उपसंहार

भारतीय ज्योतिष और ज्योतिषियो के सबध मे यहाँ तक जो कुछ लिखा गया है उसकी बहुत-सी सामग्री महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी की गणक-तरगिणी और आचार्य शकर बालकृष्ण दीक्षित के मराठी भारतीय ज्योतिषशास्त्र से ली गयी है । इनमे आये हुए कुछ ज्योतिषियो और उनके ग्रथो की चर्चा विस्तार-भय से छोड दी गयी थी, जो नीचे की तालिका मे दी जाती है .

ग्रथकर्ता	ग्रथ	रचनाकाल शक	विशेष
बलभद्र	?	८८८ ?	कोई ग्रथ उपलब्ध नही है । भटोत्पल और पृथूदक स्वामी की टीकाओ मे कुछ श्लोको के अवतरण है ।

ग्रथकर्ता	ग्रथ	रचनाकाल शक	विशेष
वरुण	खण्डखाद्यक की टीका	९६२ ?	इस टीका मे ९६२ शक के उदाहरण है ।
दशबल	करणकमल मार्तण्ड	९८०	राजमृगाकोक्त बीजसस्कृत ब्रह्मसिद्धात के अनुसार करणग्रथ।
राजा ?	करणोत्तम	१०३८	इसकी चर्चा महादेव कृत श्रीपति रत्नमाला मे कई बार आयी है और जातक-सार मे भी एक श्लोक है ।
सोमेश्वर	अभिलषितार्थ-चितामणि	१०५१	अनेक विषयो का सग्रह जिसमे ज्योतिष का भी विषय है और १०५१ शक के क्षेपक है ।
भूलोकमल्ल	मानसोल्लास	?	
माधव	सिद्धातचूडामणि	?	भास्कराचार्य के सिद्धात शिरोमणि मे उल्लेख है परतु पुस्तक का अब पता नही है ।
ब्रह्मा	बीजगणित	?	भास्कराचार्य के बीजगणित मे उल्लेख है परतु पुस्तक का पता नही है ।
विष्णुदैवज्ञ	बीजगणित	?	
अनन्त दैवज्ञ	ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के छदश्चित्युत्तर और वृहज्जातक पर टीकाएँ	?	शक ११४४ के एक शिलालेख से ज्ञात।
भोजराज ?	आदित्यप्रताप-सिद्धात	?	श्रीपति की रत्नमाला की महादेवी टीका (शक ११८५) मे इसके कुछ वाक्यो का उल्लेख है और आफ्रेच सूची मे इसके कर्ता भोजराज कहे गये है ।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
चक्रेश्वर	ग्रहसिद्धि ?	?	
नार्मद	सूर्य-सिद्धांत की टीका या इसके आधार पर कोई ग्रंथ जिसका पता नहीं है	१३०० के लगभग	ये पद्मनाभ के पिता थे।
सूर्यदेव यज्व	आर्यभटीय प्रकाशिका टीका	?	ईसवी की १२वीं शताब्दी (दत्त और सिंह)।
रामचन्द्र	कल्पद्रुम करण	?	करण-कुतूहल की १४८२ शक की टीका में यह नाम है।
अनन्त	महादेवकृत कामधेनु की टीका, जातक पद्धति	१४८० ?	
रघुनाथ	सुबोधमंजरी (करण)	१४८४	ब्रह्मपक्षीय ग्रंथ
कृपाराम	वास्तुचंद्रिका	शक १४२० के बाद	बीजगणित, मकरंद, यंत्रचिंतामणि पर उदाहरण सहित टीका तथा सर्वार्थ चिंतामणि, पंचपक्षी और मुहूर्त-तत्त्व की टीका भी लिखी है।
रघुनाथ शर्मा	मणिप्रदीप (करण)	१४८७	सिद्धांतशिरोमणि और सूर्य-सिद्धांत के आधार पर।
नारायण	मुहूर्तमार्तण्ड और इस पर टीका, मार्तण्ड वल्लभ	१४९३-९४	मुहूर्त ग्रंथ।
दिनकर	खेटकसिद्धि, चंद्रार्की	१५००	ब्रह्मसिद्धांत के अनुसार करणग्रंथ।

ग्रथकर्ता	ग्रथ	रचनाकाल शक	विशेष
गगाधर	ग्रहलाघव की मनोरमा टीका	१५०८	
श्रीनाथ	ग्रहचितामणि (करण)	१५१२	
गणेश	जातकालकार	१५३५	जातक पर प्रसिद्ध पुस्तक।
नाग या नागेश	ग्रहप्रबोध	१५४१	दृग्गणितानुसार करणग्रथ।
विट्ठल दीक्षित	मुहूर्तकल्पद्रुम और उसकी टीका, मुहूर्त कल्पद्रुम मजरी	१५४९ ?	मुहूर्तग्रथ।
नारायण	केशवपद्धति टीका, नारायणीबीजम्		ये मुनीश्वर के गुरु थे, जो शक १५२५ मे पैदा हुए थे। दूसरी पुस्तक बीजगणित पर है।
शिवदैवज्ञ	अनन्तसुधारसविवृति (गणित), मुहूर्त-चूडामणि (मुहूर्त)	जन्मकाल १५२८	कृष्ण दैवज्ञ के पुत्र और नृसिह-दैवज्ञ के अनुज।
बलभद्रमिश्र	हायनरत्न (ताजिक ग्रथ)	१५६४	रामदैवज्ञ के शिष्य, शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहसुजा के आश्रित।
सोमदैवज्ञ	कल्पलता	१५६४	सवत्सर के राजा, मत्री, आदि, के शुभाशुभ फल पर विचार।
रगनाथ	सिद्धात-शिरोमणि की मितभाषिणी टीका, सिद्धात-चूडामणि	१५६२	ये नृसिहदैवज्ञ के पुत्र और कमलाकर के भाई थ। सूर्य-सिद्धात के अनुसार करण-ग्रथ की रचना की थी।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
कृष्ण	करणकौस्तुभ	१५७५	महाराज शिवाजी के समय मे ग्रहकौतुक, ग्रहलाघव तथा निज वेध के अनुसार करण ग्रंथ बनाया ।
यादव	ग्रहप्रबोध पर उदा-हरण सहित टीका	१५८५	
रत्नकंठ	पचागकौतुक	१५८०	खण्डखाद्यक के अनुसार पचाग बनाने के लिए उपयोगी ।
विट्ठण	वार्षिक तंत्र	१६००से पूर्व	वर्तमान सूर्य-सिद्धात के अनुसार ।
जटाधर	फत्तेशाह-प्रकाश	१६२६	श्रीनगर के चद्रवशी राजा के नाम पर ।
दादाभट	किरणावलि	१६४१	सूर्यसिद्धात की टीका।
शकर	वैष्णव करण	१६८८	भास्कराचार्य के अनुसार ।
परमानन्द-पाठक	प्रश्नमाणिक्यमाला	१६७०	जन्मकुडली के भावो का शुभा-शुभ फल विचार है । यह काशिराज बलवतसिंह के प्रधान गणक थे ।
भुला	ब्रह्मसिद्धातसार	१७०३	ब्रह्मपक्षानुसार सिद्धातग्रंथ,सिद्धात-शिरोमणि और ग्रहलाघव के आधार पर लिखा गया ।
मथुरानाथ शुक्ल	१—यत्रराज घटना, २—नक्षत्र स्थापन विधि	१७०४	राजा शिवप्रसाद, सितारे-हिद, के बाबा डालचद के आश्रित थे ।

ग्रथकर्ता	ग्रथ	रचनाकाल शक	विशेष
चितामणि दीक्षित	१—सूर्यसिद्धात की सारणी		
	२—गोलानन्द (वेधग्रथ)	१७१३	
राघव (खाडेकर)	१—खेटकृति २—पचागार्क ३—पद्धति-चद्रिका	१७३२ १७३९ १७४०	पहली पुस्तक ग्रहलाघव के अनु-सार है, दूसरी सिद्धात ग्रथ है और तीसरी जातक पर है।
शिवदैवज्ञ	तिथिपारिजात	१७३७	ग्रहलाघव के अनुसार।
यज्ञेश्वर (बाबा जोशी रोडे)	१—ज्योति पुराण-विरोध-मर्दन	१७५९	
	२—यत्रराज-वासना टीका	१७६४	
	३—गोलानद की अनुभावकी टीका ४—मणिकाति टीका ५—प्रश्नोत्तरमालिका		
विनायक पाडुरग	वैनायिकी ताजिकग्रथ		
खानापूरकर	सिद्धातसार		

भारतीय ज्योतिष का प्रसार (अरब देशों मे)

ब्रह्मगुप्त के वर्णन मे यह चर्चा की गयी थी कि इनके दोनो ग्रथो का अनुवाद अरबी मे कराया गया था। यहाँ इस सबध मे कुछ विशेष बाते बतायी जाती है। रोम के प्रोफेसर सी० ए० नलिनो 'इन्साक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐंड एथिक्स' अध्याय १२, ९५ मे लिखते है,[१] 'ज्योतिष के प्रथम वैज्ञानिक मूलाको के लिए मुसलमान

[१] जी० आर० के की हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी, पृष्ठ ४९ की पाद-टिप्पणी।

भारतवर्ष के ऋणी हैं । ७७१ ई० मे भारतवर्ष की एक विद्वन्मडली बगदाद गयी, इसके एक विद्वान ने अरबो को ब्राह्मस्फुट-सिद्धात का परिचय कराया, जिसे ब्रह्मगुप्त ने सस्कृत मे ६२८ ई० मे लिखा था । इस ग्रथ से (जिसे अरब वाले अल सिदहिंद कहते थे) इब्राहीम इब्न हबीब-अल-फजारी ने मूलाको और गणना की रीतियो को लेकर अपने ज्योतिष की सारणियाँ मुसलमानी चाद्र वर्ष के अनुसार तैयार की । प्राय इसी काल मे याकूब इब्न तारीक ने अपनी 'तरकीब-अल-अफलाक' (खगोल की रचना) लिखी, जो ब्राह्मस्फुट-सिद्धात के मूलाको और रीतियो पर तथा उन ध्रुवाको पर जिन्हे एक दूसरे भारतीय वैज्ञानिक ने एक दूसरी मडली के साथ १६१ हिजरी (७७७-७७८ ई०) मे बगदाद आकर दिया था, आश्रित था । ऐसा जान पडता है कि प्राय उसी समय खण्डखाद्यक का भी अरबी मे 'अलअर्कद' के नाम से अनुवाद किया गया, जिसे ६६५ ई० मे ब्रह्मगुप्त ने ही रचा था परतु जिसके मूलाक उसके पहले ग्रथ के मूलाको से भिन्न थे । अलफजारी और याकूब इब्न तारीक के समकालीन अबुल हसन अल अहवाजी ने विद्वान भारतवासियो के शायद मौखिक शिक्षाओ से प्रभावित होकर 'अल अर्जभद' (अर्थात आर्यभट) के अनुसार ग्रहगतियो का परिचय अरबो को कराया। मुसलिम ससार मे हिजरी की पचम शताब्दी के पूर्वार्द्ध (ईस्वी की ११वी शताब्दी) के अन्त तक इन भारतीय ग्रथो के बहुत से अनुगामी हुए । कुछ ज्योतिषियो ने (जैसे, हबश, अननैरीजा, इब्न अस्सभ ने) भारतीय मूलाको और प्रणालियो के आधार पर भी पुस्तके लिखी और यूनानी-अरबी मूलाको के अनुसार भी । दूसरो ने (जैसे मुहम्मद इब्न इसहाक अस सरहसी, अबुलवफा, अलबीरूनी, अलहजीनी ने) उन मूलाको को ग्रहण किया, जिनकी गणना मुसलमान ज्योतिषियो ने भारतीय ज्योतिषियो के अनुकरण मे कृत्रिम दीर्घ युगो के अनुसार की थी।"

इस सबध मे अलबीरूनी ने भारत पर अपने अरबी ग्रथ मे जिसका अँग्रेजी भाषान्तर बर्लिन के प्रोफेसर एडवर्ड सी० साचो ने किया है और जिसका हिंदी अनुवाद इडियन प्रेस ने प्रकाशित किया है, बहुत कुछ लिखा है । यह विद्वान ९७३ ई० मे खीवा मे उत्पन्न हुआ था और महमूद गजनवी के साथ भारतवर्ष मे आकर यहाँ सन १०१७ ई० से लेकर १०३१ ई० तक रहा था और सस्कृत भाषा सीख कर इसके साहित्य की बहुत-सी, विशेषकर ज्योतिष की, बाते जान कर अरबी मे पूर्वोक्त ग्रथ का निर्माण किया था । वह लिखता है कि पूर्वकालीन मुसलिम ज्योतिषियो ने आर्यभट और अन्य सिद्धात ग्रथो की चर्चा की है। आर्यभट का एक अरबी रूपान्तर आर्जवह था जो और बिगड कर 'आज्जभर' हो गया। अलबीरूनी लिखता है कि 'सिद-हिंद' नाम की अरबी पुस्तक को हिंदू लोग सिद्धात कहते है ।

यूरोप और अमेरिका में

ईसा की १७वी शताब्दी के अन्त मे यूरोप मे भारतीय ज्योतिष की चर्चा आरभ हुई, जिसमे लाप्लास बेली, प्लेफेयर, डीलाम्बर, सर विलियम जोन्स, जान बेटली, आदि ने भाग लिया। १६९१ ई० मे फ्रास के प्रसिद्ध ज्योतिषी जियोबनी डोमिनिको कैसिनी ने डी० ला० लूबियर के आसाम से लाये हुए कुछ ज्योतिष सबधी नियमो का प्रकाशन किया और उसके थोडी ही देर बाद 'हिस्टोरिया रेग्नी ग्रीकोरम बैक्ट्रीयानी' के परिशिष्ट मे टी० एस० बेयर ने हिंदू ज्योतिष की चर्चा की, जिसमे लियोनार्ड ऑयलर का एक निबध ३६५ दिन ६ घटा १२ मिनट और ३० सेकेड के हिंदू वर्ष पर था। १७६९ ई० मे लीवेटिल नामक ज्योतिषी पाडीचेरी मे शुक्र की वेधयुति देखने के लिए आया और १७७२ ई० मे उसने 'त्रिवेलोर' सारणी और हिंदू ज्योतिष पर एक लेख प्रकाशित किया। इस प्रकाशन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह पडा कि जीन सिलवेन बेली (पेरिस का पहला मेयर और नेशनल एसेबली का सभापति, जिसने १७३६ ई० मे जन्म लिया और जो १७९३ ई० मे शूली पर चढाया गया) इस ओर आकर्षित हो गया और १७८७ ई० मे भारतीय ज्योतिष पर एक ग्रथ[1] प्रकाशित किया। बेली की पुस्तक से लाप्लास और प्लेफेयर का ध्यान इस ओर बहुत आकर्षित हुआ। प्लेफेयर ने १७९२ ई० मे एशियाटिक सोसाइटी मे व्याख्यान देकर सुझाया कि हिंदू गणित और ज्योतिष का नियमपूर्वक अनुशीलन किया जाय।

इसी बीच मे एस० डेविस ने १७८९ ई० मे सूर्य-सिद्धात का विश्लेषण किया और लिखा कि इस ग्रथ मे रविमार्ग की परम क्राति २४ अश है, जो आकाश के प्रत्यक्ष अवलोकन से जानी गयी होगी और यह अवलोकन २०५० ई० पूर्व किया गया होगा। सर विलियम जोन्स ने इसका समर्थन किया और कहा कि भारतीय नक्षत्र-चक्र अरब या यूनान से नही लिया गया। १७९९ ई० मे जॉन बेटली ने बेली की इस बात का विरोध किया कि भारतीय ज्योतिष बहुत प्राचीन है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सूर्य-सिद्धात १०९१ ई० के आसपास का बनाया हुआ है। इस सबध मे कोलब्रुक, डीलाम्बर और बेटली ने १८२५ ई० तक अच्छा वादविवाद किया। परतु इसके साथ-साथ भारतीय ज्योतिष का अनुशीलन भी होता रहा। बगाल के सेनानायक सर डबल्यू० बार्कर ने काशी के जयसिह-निर्मित मान-मन्दिर के यत्रो का अध्ययन किया और इसके कुछ बाद ही प्लेफेयर ने अपना सुझाव उपस्थित किया।

[1] ट्रेट डी ला ऐस्ट्रॉनोमी इंडियन एट ओरियटल।

१७९९ ई० मे हटर ने उज्जैन की वेधशाला का ब्योरेवार वर्णन लिखा। परतु भारतीय ज्योतिष के इतिहास का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेबर (१८६०-६८ ई०), व्हिटनी (१८५८) और थीबो (१८७७-१८८९) ने नीव डाली। वेबर ने वेदाग-ज्योतिष , व्हिटनी ने सूर्य-सिद्धात का अनुवाद अपनी आलोचनात्मक टिप्पणियो के साथ और थीबो ने वराहमिहिर की पच-सिद्धातिका अपने अनुवाद और टिप्पणियो के साथ प्रकाशित किया। इनके साथ साचौ ने अलबीरूनी के भारत विषयक ग्रथ का अनुवाद किया और यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मध्यकालीन हिंदू ज्योतिष और यूनानी ज्योतिष मे घनिष्ठ सबध है। इसलिए प्राच्यविद्या विशारदो का ध्यान वैदिक और वेदोत्तर कालो की ओर गया। १८९३ ई०मे जैकोबी और तिलक ने अलग-अलग सुझाव उपस्थित किये कि वैदिक ग्रथो मे ऐसे प्रमाण मिलते है जिनसे सिद्ध होता है कि वैदिक-काल बहुत प्राचीन है, परतु व्हिटनी, ओल्डेनबर्ग और थीबो ने इसका घोर विरोध किया[1]।

बरजेस का कार्य

इस वादविवाद के बीच मे रेवरेड ई० बरजेस ने सन १८६० ई० मे सूर्य-सिद्धात का प्रसिद्ध अनुवाद अमेरिकन ओरिएटल सोसायटी के जरनल मे प्रकाशित किया, जिसमे भारतीय ज्योतिष के पक्ष और विपक्ष मे कहने वालो का वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया और दिखाया गया कि भारतीय ज्योतिष का महत्त्व क्या है। इस सुन्दर अनुवाद का दूसरा सस्करण कलकत्ता विश्वविद्यालय के फणीन्द्रलाल गगोली द्वारा सम्पादित होकर प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की भूमिका के साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा सन १९३५ ई० मे प्रकाशित हुआ।

भारतीय ज्योतिष का एक दूसरा ग्रथ डब्लू ब्रेनैंड ने सन १८९६ ई० मे लिखा था, जिसके प्रथम भाग के १३ अध्यायो मे हिंदू ज्योतिष पर यूनान, मिस्र, चीन और अरब के ज्योतिष के साथ तुलनात्मक विचार किया गया है और कई पौराणिक कथाओ का, जैसे शिव और दुर्गा का विवाह, सती की मृत्यु आदि का, सबध ज्योतिषिक घटनाओ से बताया गया है और दूसरे भाग मे सूर्य-सिद्धात का अँग्रेज़ी मे अनुवाद किया गया है। इस विद्वान का विश्वास था कि यूरोपवालो ने हिंदुओ को इनके साहित्य और गणितीय विज्ञान के लिए उतना श्रेय नही दिया जितने के वे अधिकारी है। यह ग्रथ लडन मे १८९६ ई० मे मुद्रित और प्रकाशित हुआ था। ब्रेनैंड महाशय बगाल मे बहुत दिन तक किसी कालेज के अध्यक्ष रह चुके थे।

[1] जी० आर० के की हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी की भूमिका का साराश।

इन ग्रथो के होते हुए भी जी० आर० के महाशय अपने विविध लेखो और हिंदू एस्ट्रॉनोमी मे हिंदू ज्योतिष के सबध मे कुछ बाते ऐसी लिखते है जिससे सिद्ध होता है कि ये भी भारतीय ज्योतिष को उतना श्रेय नही देना चाहते थे जितने का वह अधिकारी है। इसका उत्तर प्रयाग के श्री नलिनबिहारी मित्र ने १९१५-१६ के माडर्न रिव्यू मे और कलकत्ता विश्वविद्यालय के कई आचार्यो ने, विशेषकर डाक्टर विभूतिभूषण दत्त और प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त ने, भारतीय और यूनानी ज्योतिष का तुलनात्मक अध्ययन करके दिया है।

आधुनिक खोज

वर्तमान समय मे ज्योतिष मे बहुत लगन के साथ खोज जारी है। सारी दुनिया के ज्योतिषी इसी मे लगे है कि कोई नवीन बात निकाले। वह बात केवल एक देश के लिए ही नही, सारे ससार के लिए नवीन होनी चाहिए। ज्योतिषियो की खोज के परिणाम ज्योतिष और वैज्ञानिक पत्रिकाओ मे छपते रहते है और प्रति वर्ष कई हजार पृष्ठ नवीन खोजो के विवरण मे छपते है। हमारे भारतीय ज्योतिषी भी इसमे सहयोग देते है, यद्यपि बडी वेधशालाओ के अभाव से और प्रोत्साहन न मिलने से पिछले वर्षो मे अन्य देशो से भारत पिछडा हुआ था। तो भी डॉक्टर मेघनाथ साहा, प्रोफेसर एस० चद्रशेखर, इत्यादि ने ऐसा काम किया है कि विदेश मे भी भारत का नाम है। यो तो वे सभी जो ज्योतिष विषय लेकर विश्वविद्यालयो से डॉक्टर की उपाधि लेते है, थोडी-बहुत खोज अवश्य करते है और ज्योतिष मे नवीन बातो का पता लगाते है। उदाहरणत, इन पक्तियो के लेखक ने भी इस पर खोज की कि तारो की निजी गति और उनकी चमक मे क्या सबध रहता है। उत्तर प्रदेश के डॉक्टर चद्रिकाप्रसाद, डॉक्टर हरिकेशव सेन और डॉक्टर रामसिह कुशवाहा ने, तथा अन्य कुछ व्यक्तियो ने भी, ज्योतिष मे खोज की है और कर रहे है।

हमारे प्राचीन ज्योतिषी इसी मे जुटे रहते थे कि सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्थितियो की गणना कैसे की जाय। परतु यह विषय अब प्राय पूर्ण समझा जाता है। इस विषय पर सारे ससार मे इने-गिने ही व्यक्ति काम करते होगे। इन दिनो अधिकतर खोज तारों के सबध मे हो रही है और गत पचास वर्षो मे आश्चर्य-जनक ज्ञानवृद्धि हुई है। उदाहरणत, अब यह प्रमाणित हो गया है कि हमारे तारो की दुनिया का विस्तार सीमित है और हमारी ही जैसी तारो की बस्तियाँ असख्य है। वे एक दूसरे से दूर-दूर पर बसी है। अब यह चेष्टा की जा रही है कि पता चले

कि तारो की भीतरी सरचना कैसी है[१]। इसमे भी बहुत-कुछ सफलता मिली है। इस खोज मे इन दिनो ज्योतिष का भौतिक विज्ञान और रसायन से बहुत घना सबध हो गया है। एक प्रकार से ऐटम बम के बनने का सूत्रपात वहाँ से होता है जब से ज्योतिषियो ने इस प्रसग को उठाया कि सूर्य ठढा क्यो नही हो जाता, और यदि वह आग का गोला है तो अब तक जलकर भस्म क्यो नही हो गया।

ज्योतिष के अब कई विभाग हो गये है। वर्णनात्मक ज्योतिष मे आकाशीय पिडो के रूप-रग का अध्ययन किया जाता है, उनकी गति अथवा रासायनिक तथा भौतिक सरचना से विशेष सरोकार नही रहता। गतिक ज्योतिष मे इस विषय का अध्ययन किया जाता है कि आकाशीय पिडो के परस्पर आकर्षण से उनमे क्या गति उत्पन्न होगी। सूर्य, चद्रमा और ग्रहो की स्थितियाँ बता सकने का काम इसी विभाग के आधार पर सभव है। भौतिक ज्योतिष मे आकाशीय पिडो की रासायनिक तथा भौतिक सरचना पर विशेष ध्यान दिया जाता है। भौतिक विज्ञान की उस शाखा को ज्योतिष-भौतिकी कहते है, जिसमे तारो आदि की सरचना का अध्ययन किया जाता है। इसमे और भौतिक ज्योतिष मे कोई भेद नही है। गोलीय ज्योतिष मे आकाशीय पिडो की स्थितियो पर विशेष ध्यान दिया जाता है—उनकी स्थितियाँ कैसे नापी जायें, इन नापो मे क्या-क्या त्रुटियाँ रह जाती है, और वे कैसे दूर की जाती है, ग्रहणादि क्यों और कब लगते है, और समय कैसे नापा जा सकता है, इन सब विषयो पर ज्योतिष की इसी शाखा मे विचार किया जाता है।

[१] देखे : गोरखप्रसाद कृत 'नीहारिकाएँ' (बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद पटना)।

अध्याय १८

भारतीय पंचांग

पंचाग

पूर्वगामी अध्यायो को पूर्णतया समझने के लिए यह आवश्यक है कि पाठक को भारतीय पचाग का कुछ ज्ञान हो। इसलिए इस अध्याय मे इस विषय को सरल रीति से समझा दिया गया है।

पचाग बताता है कि वर्ष का आरभ कब हुआ, किसी दिन क्या दिनाक (तारीख) है, इत्यादि। पचाग के सबध मे प्राचीन समय के लोगो को कठिनाई इसलिए पडती थी कि लोग वर्षमान—वर्ष की लबाई—ठीक-ठीक नही नाप पाते थे। फिर, तब और अब भी, एक कठिनाई इसलिए उत्पन्न होती है कि एक वर्ष मे दिनो की सख्या, या चाद्र मासो की सख्या, कोई पूर्ण सख्या नही है, और न एक चाद्र मास मे ही दिनो की सख्या कोई पूर्ण-सख्या है।

यदि उद्देश्य यह हो कि वर्षारभ सदा एक ही ऋतु मे हो तो वर्षमान ठीक-ठीक सायन होना चाहिए, अन्यथा गडबडो पडेगी। उदाहरणत, मुसलिम धार्मिक वर्ष ठीक १२ चाद्र मासो के बराबर होता है, अर्थात उसका मान, मोटे हिसाब से २९½ × १२, अर्थात ३५४ दिन, होता है। परतु सायन वर्ष ३६५ २४२२ दिन का होता है। इसलिए किसी एक वर्ष मे यदि मुसलिम वर्ष का आरभ उस दिन से हुआ जब वसत मे दिन रात बराबर होते है, अर्थात वसत विषुव पर, तो आगामी वसत विषुव से लगभग ३६५¼—३५४, अर्थात ११¼, दिन पहले ही मुसलिम वर्ष का अत हो जायगा और नया वर्ष आरभ हो जायगा। अगली बार नया वर्ष वसत विषुव आने के २२½ दिन पहले ही आरभ हो जायगा, और इसी प्रकार आगे भी। यही कारण है कि मोहर्रम या रमजान का महीना किसी भी ऋतु मे पड सकता है। यदि किसी वर्ष रमज़ान जाडे मे है तो कुछ ही वर्ष बाद वह बरसात मे

पडेगा। अधिक समय बीतने पर वह गर्मी के ऋतु मे पडेगा और लगभग ३६५$\frac{१}{४}$—११$\frac{१}{४}$ वर्षो के बाद वह फिर जाडे मे पडेगा।

भारतीय पचाग

सस्कृत मे पचाग का नाम इसलिए पडा है कि इसमे पाँच वस्तुएँ बतायी जाती है (१) तिथि (जो दिनाक अर्थात तारीख का काम करती है), (२) वार, अर्थात कोई दिन रविवार, सोमवार, मे से कौन-सा दिन है, (३) नक्षत्र (जो बताता है कि चद्रमा तारो के किस समूह मे है), (४) योग (जो बताता है कि सूर्य और चद्रमा के भोगाशो का योग क्या है), और (५) करण (जो तिथि का आधा होता है)।

पूर्वोक्त पाँच बातो के अतिरिक्त हिदी पचागो मे साधारणत यह भी दिया रहता है कि अग्रेजी दिनाक (तारीख) क्या है, मुसलिम तारीख क्या है, दिनमान क्या है (अर्थात सूर्योदय से सूर्यास्त तक कितना समय लगेगा), चद्रमा का उदय और अस्त किन-किन समयो पर होगा, चुने हुए दिनो पर आकाश मे ग्रहो की क्या स्थितियाँ रहेगी और इनके अतिरिक्त फलित ज्योतिष की बहुत-सी बाते दी रहती है। नीचे हम तिथि आदि को अधिक ब्योरे के साथ समझायेगे।

तिथि और वार

चद्रमा और सूर्य के भोगाशो के अतर से तिथि का निर्णय होता है, जब यह अतर ०° और १२° के बीच रहता है तो तिथि को प्रतिपदा कहते है, अतर के १२° और २४° के बीच रहने पर तिथि को द्वितीया कहते है, इसी प्रकार तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी और चतुर्दशी होती है। आगामी तिथि अमावस्या या पूर्णिमा होती है। इस प्रकार एक चाद्र मास मे ३० तिथियाँ होती है। परिभाषा से स्पष्ट है कि तिथि दिन या रात के किसी भी समय बदल सकती है। इसलिए पचाग मे लिखा रहता है कि अमुक तिथि का अत अमुक समय होगा। पचागो मे समय की एकाई साधारणत १ घटी होती है (जो २४ घटे के एक दिन के $\frac{१}{६०}$ के बराबर होती है)। घटी के ६०वे भाग को पल और पल के ६०वे भाग को विपल कहते है। पचागो मे समय साधारणत सूर्योदय से नापा जाता है। उदाहरणत, यदि किसी विशेष तिथि (जैसे पचमी) के सम्मुख समय ४ घटी ५१ पल लिखा है तो उस का अर्थ है कि पचमी का अत उस दिन सूर्योदय के ४ घटी ५१ पल बाद हुआ।

लौकिक कार्यो के लिए सूर्योदय के क्षण की तिथि, उस क्षण से लेकर आगामी सूर्योदय तक, बदली नही जाती है। इस प्रकार, ऊपर बताये गये उदाहरण मे उस

दिन, जिसमे पचमी का अत सूर्योदय के लगभग २ घटे बाद हुआ, महाजन सारे दिन और सारी रात को पचमी मानेगा, यद्यपि उस दिन सूर्योदय के लगभग २ घटे बाद से ज्योतिष की परिभाषा के अनुसार षष्ठी का आरभ हो गया था ।

ऊपर की परिभाषा से स्पष्ट है कि तिथियो की अवधि (घटो या घटीयो मे नाप) बराबर नही होती, क्योकि चद्रमा और सूर्य के भोगाश समान अर्घ (दर) से नही बढते । वे तो केपलर के नियमो के अनुसार बढते है और ऊपर से कई विक्षोभ भी होते है । इसलिए तिथि की अवधि एक सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक के समय से छोटा भी हो सकता है, बडा भी । इसलिए ऐसा हो सकता है कि कोई तिथि इतनी छोटी हो कि किसी दिन सूर्योदय के थोडे ही समय बाद उसके आरभ होने पर आगामी सूर्योदय के पहले ही उसका अत हो जाय । इस से स्पष्ट है कि वैध (लौकिक) तिथियाँ क्रमागत नही होती । उदाहरणत, पचाग के अनुसार बुध, १३ दिसबर १९५०, को चतुर्थी का अत सूर्योदय के १ घटी के ५ पल बाद हुआ और आगामी तिथि का (अर्थात पचमी का) अत आगामी सूर्योदय होने के ५ घटी २५ पल पहले ही हो गया । इस प्रकार बुध के दिन सूर्योदय के समय ज्यौतिष तिथि चतुर्थी थी और अगले दिन बृहस्पति को सूर्योदय के समय तिथि षष्ठी थी । इसलिए बुध को सारे दिन वैध तिथि चतुर्थी थी और बृहस्पति को सारे दिन षष्ठी थी । इस प्रकार इस पक्ष (अर्धमास) मे पचमी किसी दिन थी ही नही ।

फिर, ऐसा भी हो सकता है कि कोई तिथि २४ घटे से अधिक की हो और वह किसी दिन सूर्योदय के थोडे समय पहले आरभ हो और आगामी दिन के सूर्योदय के कुछ समय बाद उसका अत हो । इसका परिणाम यह होगा कि दो क्रमागत दिनो मे एक ही तिथि रहेगी । उदाहरणत, सोमवार, १९ दिसबर १९५०, और मगल, २० दिसबर १९५०, दोनो ही दिन एकादशी थी । परतु चाद्र मास की अवधि लगभग २९½ दिन है और उतने मे ३० तिथियाँ है । इसलिए अधिकतर तिथियो का क्षय ही होता है, पुनरावृत्ति कम होती है ।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वैध तिथि सूर्योदय के समय पर भी निर्भर है, और इसलिए ऐसा हो सकता है, और होता भी है, कि विभिन्न स्थानो मे एक ही दिन विभिन्न तिथियाँ हो । परतु एक क्षेत्र के लोग साधारणत किसी केंद्रीय स्थान का पचाग मानते है और ठीक अपने स्थान का पचाग आवश्यक नही समझते । इसलिए व्यवहार मे वस्तुत कठिनाई नही उत्पन्न होती ।

अको से तिथि बताने की दो पद्धतियाँ है, या तो अमावस्या के बाद से आरभ करके उनकी सख्या १ से ३० तक दिखायी जाती है, या, पक्ष बता कर और

अमावस्या या पूर्णिमा के बाद से आरभ करके, १ से १५ तक। पक्ष आधे चाद्र मास को कहते है। एक पक्ष कृष्ण पक्ष कहलाता है जिसमे सध्या के समय चद्रमा का उदय नही हुआ रहता, दूसरा शुक्ल पक्ष कहलाता है।

वार सात होते है रविवार, सोमवार, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिवार। मगल, बुध, बृहस्पति और शुक्र को क्रमानुसार मगलवार, बुधवार, इत्यादि भी कहते है। रविवार को आदित्यवार (या हिंदी मे एतवार) भी कहते है।

नक्षत्र

रविमार्ग को २७ बराबर भागो मे बॉट कर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहते है। चद्रमा का तारो के सापेक्ष एक चक्कर लगभग २७⅓ दिन मे लगता है। इसलिए चद्रमा (वस्तुत चद्रमा से रविमार्ग पर डाले गये लब का पाद) एक नक्षत्र मे लगभग १ दिन तक रहता है। नक्षत्रो के नाम अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि है। अश्विनी का प्रथम विदु मेष के प्रथम विदु को ही माना जाता है (नीचे भी देखो)।

जब कहा जाता है कि इस क्षण अश्विनी नक्षत्र है तो साधारणत अर्थ यही रहता है कि चद्रमा अश्विनी नामक नक्षत्र मे है। परतु कभी-कभी यह अर्थ भी होता है कि सूर्य अश्विनी मे है। उदाहरणार्थ, जब कहा जाता है कि कृष्ण भगवान का जन्म रोहिणी नक्षत्र मे हुआ था तो अभिप्राय यह है कि उस समय चद्रमा रोहिणी नक्षत्र में था, परतु जब कहा जाता है कि वर्षा का आरभ आर्द्रा नक्षत्र मे होता है तो अभिप्राय यह होता है कि वर्षा का आरभ तब होता है जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र मे रहता है। नक्षत्र का अत कब होगा (अर्थात चद्रमा उस नक्षत्र को छोड कर आगामी नक्षत्र मे कब जायगा) यह पचागो मे दिया रहता है।

नक्षत्र का एक अर्थ तारा भी है, कुछ तारो के समूह को भी नक्षत्र कहते है, विशेषकर तारो के उन छोटे-छोटे समूहो को जो चद्रमा के मार्ग मे पडते है। ये समूह तारामडलो से छोटे है और इनके वे ही नाम है जो ऊपर रविमार्ग के खडो के लिए बताये गये है, अर्थात अश्विनी, भरणी, आदि। ऐसा जान पडता है कि अत्यत प्राचीन समय मे अश्विनी, भरणी आदि से तारो के समूह ही समझे जाते थे और ऑख से देख कर पता लगाया जाता था कि चद्रमा किस नक्षत्र मे, अर्थात किस तारका-पुज मे है। पीछे गणना की सुविधा के लिए नक्षत्र को रविमार्ग का ठीक सत्ताईसवॉं भाग मान लिया गया।

इति० १८

योग और करण

सूर्य और चद्रमा के भोगाशो के योगफल से योग ज्ञात किया जाता है। योगफल को सख्याओ मे न बताना पडे इस अभिप्राय से यह मान लिया गया है कि २७ योग होते है और उनके नाम रख दिये गये है, जैसे विषकभ, प्रीति, इत्यादि। योग ज्ञात करने के लिए सूर्य और चद्रमा के भोगाशो के योगफल को कलाओ मे व्यजित करना चाहिए और तब उसे ८०० से भाग देना चाहिए। भजनफल के पूर्ण सख्या मे एक जोड देने से योग की क्रमसख्या प्राप्त होगी। उदाहरणत, यदि भजनफल १ ३७२ मिले तो योग की क्रमसख्या २ होगी और इसलिए उस क्षण प्रीति नामक योग होगा। पचागो मे योगो के अतिम क्षण दिये रहते है। योग देने का उद्देश्य यही जान पडता है कि तिथि और नक्षत्र की गडबडी की जॉच हो सके।

करण—आधी तिथि का एक करण होता है। उदाहरणत, प्रतिपदा के पहले आधे को बालव नामक करण माना जाता है, दूसरे आधे को कौलव, इत्यादि। परतु ३० × २ नाम होने के बदले नाम थोडे ही है और करणो का क्रम जानने के लिए एक नियम है, जिसे यहाँ देना आवश्यक नही जान पडता।

लग्न

किसी क्षण क्या लग्न है यह इससे पता चलता है कि उस क्षण रविमार्ग का कौन-सा खड पूर्वीय क्षितिज को पार कर रहा है। लग्न के उल्लेख से वही उद्देश्य सिद्ध होता है जो आधुनिक प्रणाली मे घटा बताने से।

मास

पूर्वोक्त पाँच बाते प्रतिदिन (और कुछ तो दिन मे कई बार) बदलती है। इसलिए किसी घटना का समय बताने के लिए इनके अतिरिक्त अवश्य ही मास और वर्ष भी बताना पडता है। हिंदू पचागो मे चाद्र मासो का उपयोग होता है और नियमानुसार समय-समय पर एक वर्ष मे १२ के बदले १३ मास रख कर ऐसा प्रबध किया जाता है कि महीनो और ऋतुओ का सबध टूटने नही पाता। तेरहवे मास, अर्थात अधिमास, के जोडने के लिए वैज्ञानिक नियम बने है। यूरोप के लोगो के महीनो का अमावस्या-पूर्णिमा से कोई सबध नही रह गया है और उन्होने महीनो मे इच्छानुसार दिन रखकर १२ महीनो को एक वर्ष के बराबर बना लिया है। मुसलिम वर्ष, जैसा हम देख चुके है, १२ चाद्र मासो का होता है, जिससे मास और ऋतु मे कोई अचल सबध नही रहता। यह उनका धार्मिक वर्ष है। लगान वसूल करने के लिए मुसलमान

बादशाहो को एक अन्य वर्ष का प्रयोग करना पडता था जिसे वे फसली (=फसल वाला) वर्ष कहते थे और जिस की लबाई लगभग सायन थी।

वर्ष मे चाद्र मासो के नाम, और यदि अधिमास लगे तो उसका भी नाम, हिंदू पचाग मे सौर महीनो के नाम पर पडते है। एक विशेष बिंदु से आरभ करके रविमार्ग को १२ भागो मे बाँटा गया है, जिनमे से प्रत्येक को एक राशि कहते है। जब तक सूर्य प्रथम राशि मे रहता है उतने समय तक प्रथम सौर मास रहता है, दूसरी राशि मे जब तक सूर्य रहता है उतने समय तक द्वितीय सौर मास रहता है, इत्यादि।

इस प्रकार ज्यौतिष सौर मास, जिसकी परिभाषा ऊपर दी गयी है, दिन-रात के किसी क्षण पर आरभ हो सकता है। सुविधा के लिए वैध (अर्थात लौकिक व्यवहार वाला) सौर मास ज्यौतिष सौर मास के प्रथम सूर्योदय से आरभ होता है।

राशि नामो के अर्थ वे ही है जो यूरोपीय नामो के। वे यो है

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुभ, मीन।

उस क्षण को सक्राति कहते है जब सूर्य एक राशि से आगामी राशि मे जाता रहता है। मेष-सक्राति उस क्षण को कहते है जब सूर्य मेष राशि मे प्रवेश करता है। ज्यौतिष सौर मास एक सक्राति से आगामी सक्राति तक चलता है।

सौर महीनो के वे ही नाम है जो राशियो के है, परतु विकल्प से उनके वे नाम भी है जो चाद्र मासो के है। उदाहरणत, मेष सौर मास को बैसाख सौर मास भी कहते है।

सौर मासो मे दिनाक १ से २९, ३०, ३१, या ३२ तक हो सकते है, क्योकि सूर्य के न्यूनाधिक कोणीय वेग के कारण सौर मासो की लबाइयाँ विभिन्न होती है। बगाल, उडीसा और मद्रास के कई जिलो मे सौर मास ही अधिक चलते है, परतु इन स्थानो मे भी धार्मिक कृत्य, त्यौहार और फलित ज्योतिष की गणनाएँ चाद्र तिथियो पर आश्रित है।

ज्योतिष के काम के लिए उत्तर भारत मे चाद्र मास पूर्णिमा के क्षण के ठीक बाद से आरभ होकर आगामी पूर्णिमा के क्षण तक (और उस क्षण को सम्मिलित करके) चलता है। परतु लौकिक कार्यो के लिए चाद्र मास ज्यौतिष चाद्र मास के प्रथम सूर्योदय से आरभ होता है। दक्षिण भारत मे चाद्र मासो की गणना अमावस्या से अमावस्या तक होती है, यही प्रथा पहले उत्तर मे भी चलती थी। अब केवल शुक्ल पक्ष मे उत्तर और दक्षिण के महीनो मे एकता रहती है। कृष्ण पक्ष मे उत्तर भारत मे चाद्र मास का नाम दक्षिण की तुलना मे एक मास आगे बढा रहता है।

चाद्र मासो का नाम २७ नक्षत्रो मे से चुने हुए १२ नक्षत्रो पर पडा है। ये १२ नक्षत्र इस प्रकार चुने गये है कि वे यथासभव बराबर-बराबर कोणीय दूरी पर रहे और उनमे कोई चमकीला तारा रहे। महीने का नाम उस तारे या नक्षत्र पर पड जाता है जहाँ चद्रमा के रहने पर उस मास पूर्णिमा होती है। उदाहरणत, उस मास को चैत्र कहते है जिसमे पूर्णिमा तब होती है जब चद्रमा चित्रा (प्रथम कन्या, ऐल्फा वर्जिनिस) के पास रहता है। चैत्र को हिंदी मे चैत कहते है।

अधिमास का लगना सौर और चाद्र मासो के सबध पर आश्रित है। इसे समझने के लिए चाद्र और सौर मासो की लबाइयो पर ध्यान देना चाहिए

हम जानते है कि एक वर्ष मे लगभग ३६५¼ दिन होते है। इसलिए एक सौर मास इसका बारहवाँ भाग, अर्थात लगभग ३० दिन और १०½ घटे का होता है। यह चाद्र मास (२९½ दिन) से अधिक है। इसलिए बहुधा ऐसा होगा कि एक ही सौर मास मे दो अमावस्याएँ पडेगी। ऐसे अवसरो पर दो क्रमागत चाद्र मासो को एक ही नाम दे दिया जाता है। उस चाद्र मास को (अमावस्या से अमावस्या तक के समय को) अधिमास (या मलमास) कहा जाता है जिसमे सक्राति नही होती। इस प्रकार उस वर्ष १३ महीने होगे। स्पष्ट है कि चाद्र मास वस्तुत सौर मासो के आधीन होते है और अधिमासो का नियम अपने-आप चाद्र मासो और ऋतुओ का सबध बनाये रखता है, यदि अतर पडता है तो अधिक-से-अधिक १५ दिन इधर या १५ दिन उधर[१]।

सूर्य विभिन्न राशियो को बराबर समयो मे नही पार करता। कुछ सौर महीने २९½ दिन के चाद्र महीने से छोटे होते है। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उस छोटे सौर मास मे कोई अमावस्या नही पडती। ऐसे अवसर पर एक महीना पडता ही नही, परतु ऐसा विरले अवसरो पर ही होता है।

वर्ष

समय की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एकाई वर्ष है। आप्टेकृत अँग्रेजी-सस्कृत कोष मे वर्ष के अंग्रेजी शब्द के लिए वर्ष, सवत्सर, वत्सर, अब्द, हायन, समा, शरद और सवत ये शब्द दिये है, और इन सब शब्दो का सबध ऋतुओ से है। वर्ष और वर्षा का सबध तो स्पष्ट है ही, सवतसर का अर्थ है वह आवर्तकाल जिसमे सब ऋतुएँ

[१] यहाँ यह मान लिया गया है कि सौर मास स्वय ऋतुओ के साथ चलते है, अर्थात वर्ष का मान ठीक सायन है।

एक बार आ जायँ, इत्यादि। प्रत्यक्ष है कि भारत मे प्राचीन काल से ही वर्ष का अर्थ सायन वर्ष समझा जाता है। इसका प्रमाण इससे भी मिलता है कि वर्ष को दो भागो मे बाँटा जाता था, एक वह जिसमे सूर्य उत्तर जाता है (उत्तरायण) और दूसरा वह जिसमे सूर्य दक्षिण जाता है (दक्षिणायन)।

परतु हमारे प्राचीनतम ज्योतिषी अयन (विषुव-चलन) को नही जानते थे। बाद वाले ज्योतिषियो मे यह निर्विवाद नही था कि वसत विषुव एक मध्यक स्थिति के इधर-उधर दोलन करता है या बराबर एक ओर चलता रहता है। बात यह है कि गतिविज्ञान का उनका ज्ञान इतना अधिक नही था कि वे निश्चायात्मक रूप से जान सके कि वसत विषुव सदा एक दिशा मे चलता रहेगा। परिणाम यह हुआ कि भारतीय ज्योतिषी नाक्षत्र और सायन वर्षो मे बहुत समय तक भेद नही मानते थे, और यद्यपि वे सायन वर्ष का मान जानना चाहते थे, उन्होने नाक्षत्र वर्ष का मान नाप पाया। सूर्य-सिद्धात के अनुसार एक वर्ष ३६५ दिन ६ घटे १२ मिनट ३६ ६५ सेकड का होता है। परतु आधुनिक नापो के अनुसार सायन वर्ष की नाप इससे लगभग २४ मिनट छोटी है। सूर्य-सिद्धात और शुद्ध नाक्षत्र वर्ष मे कुल ३ मिनट का अतर है।

दुर्भाग्य की बात है कि आज के भारतीय पचागकार एकमत नही है। उनमे से रूढि को न मानने वालो ने नाक्षत्र और सायन वर्षो के लिए आधुनिक मानो को काम मे लाना आरभ कर दिया है, परतु रूढिवादी पचागकार नाक्षत्र वर्ष का प्रयोग करते है और प्राचीन ग्रथो मे से किसी एक के मान को ठीक समझते है। इसके अतिरिक्त मतभेद की एक बात और भी है, मेष के प्रथम विदु के लिए भी झगडा है। भारत की केद्रीय सरकार ने पचाग-सशोधन के लिए एक समिति बनायी थी। उसने हाल मे (१९५५ मे) अपना निश्चय सरकार के सम्मुख उपस्थित किया है। यदि सरकार, पचागकार, और सारे भारत की जनता इस समिति की बात स्वीकार करे तो बहुत अच्छा होगा। जनता के दैनिक जीवन से पचाग का इतना घनिष्ठ सबध है कि वर्तमान व्यवहार से कोई तीव्र विभिन्नता जनता ग्रहण नही करेगी। पचाग-सशोधन समिति ने इस पर ध्यान रक्खा है।

इस सबध मे स्मरण रखना चाहिए कि यदि हम सायन वर्ष को नही अपनायेगे तो महीनो के सापेक्ष ऋतुओ मे अतर बढता चला जायगा और कुछ समय मे बडा अनर्थ हो जायगा। आज-कल सावन भादो वर्षा के लिए प्रसिद्ध है, परतु यदि हम सूर्य-सिद्धात के ही वर्षमान का प्रयोग कुछ हजार वर्षो तक करते चले जायँगे तो उन महीनो मे जिन्हे हम सावन और भादो कहेगे कडाके का जाडा पडेगा! कालिदास के समय से आज २५ दिन का अतर ऋतुओ मे पड गया है। जैसी ऋतु कालिदास के समय मे कुआर के महीने के प्रथम पचीस दिनो मे रहती थी वैसी अब भादो के

अतिम पचीस दिनो मे रहती है, दूसरे शब्दो मे जिस महीने को ऋतु के अनुसार हमे कुआर कहना चाहिए उसे हम वर्षमान की अशुद्धि के कारण भादो कहते है। वेदाग-ज्योतिष के समय से तो लगभग ४४ दिन का अतर पड गया है।

कुडली

कुडली मे, एक विशेष रूप से बारह घर (कोष्ठ) बना कर, सूर्य, चद्रमा और पाँच प्राचीन ग्रह तथा चद्रकक्षा के पातो (राहु और केतु) की स्थितियाँ, किसी विशेष क्षण पर, विशेषकर किसी व्यक्ति के जन्म के क्षण पर, दिखायी जाती है। कुडली के बारह घर बारह राशियो को निरूपित करते है। ऊपरी पक्ति के बीच वाले घर मे उस राशि का क्रमाक लिखा जाता है जो अभीष्ट क्षण पर लग्न था, अर्थात पूर्वीय क्षितिज को काट रहा था। इसके बाद अन्य घरो मे क्रमानुसार अन्य राशियो की सख्या लिख दी जाती है (चित्र देखो)। इस प्रकार प्रत्येक घर अब उस राशि को निरूपित करता है जिसकी सख्या उस घर मे लिखी है (अवश्य ही, मेष को प्रथम राशि माना जाता है)। अब जिस राशि मे जो ग्रह उस क्षण आकाश मे था कुडली के उसी घर मे उसका नाम लिख दिया जाता है।
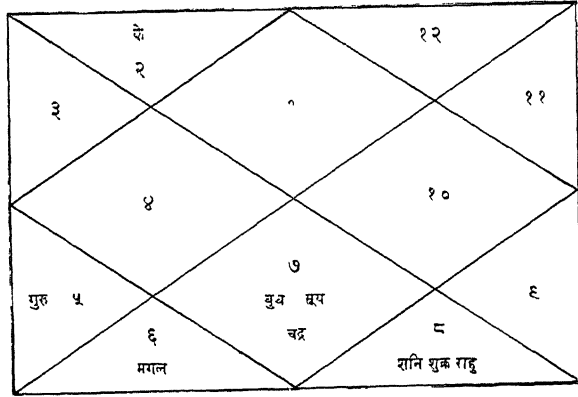
नूतन वर्ष २०१२ विक्रमी के आदिक्षण की कुंडली।

('जन्मभूमि' नामक खगोलसिद्ध निरयन कार्तिकी पचाग के अनुसार)

कुडलियाँ फलित ज्योतिष मे भविष्य बताने के काम मे आती है, परतु गणितज्ञो और इतिहासज्ञो के लिए भी वे महत्त्वपूर्ण है, क्योकि कुडली मे दी गयी ग्रहो और सूर्य

आदि की स्थितियो से उस क्षण के दिनाक और समय का पता चल सकता है जिसके लिए कुडली बनायी गयी थी[1]।

भारतीय पचाग-पद्धति वैज्ञानिक सिद्धातो पर आश्रित है और इसके अनुसार चाद्र मास और वर्षारभ दोनो ऋतु के अनुसार चलते है। एक दोष इसमे यह अवश्य है कि ज्योतिष न जानने वाली जनता स्वय दिनाको की गणना नही कर सकती, परतु मध्यकालीन दिनाको की सत्यता की जाँच मे यह अवगुण वस्तुत महान गुण सिद्ध हुआ है। यह खेद की बात है कि सारा भारत एक ही पचाग नही मानता, परतु इस बात का सुधार करने के लिए उपाय किया जा रहा है।

भारत सरकार की पचाग-सशोधन समिति

काउसिल ऑव सायटिफिक ऐड इडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली से प्रकाशित, भारत सरकार की पचाग-सशोधन समिति की रिपोर्ट अब जनता भी खरीद सकती है। इसमे लगभग ३०० पृष्ठ है और आकार बहुत बडा है। आरभ मे श्री जवाहरलाल नेहरू का सदेश है। भूमिका मे सभापति डॉक्टर मेघनाथ साहा ने बताया है कि पचाग और सरकार से क्या सबध है, फिर पचाग की मोटी-मोटी बाते बता कर समिति की विविध बैठको का विवरण है। इस समिति के परामर्शो से सब सदस्य सहमत थे, केवल एक सदस्य , डाक्टर दफ्तरी, एक बात मे नही सहमत हुए उनका विचार था कि उन धार्मिक त्योहारो की गणना सायन[2] नक्षत्रो से करनी चाहिए, जिनका सबध धर्मशास्त्रो के अनुसार नक्षत्रो से है, उनकी गणना निरयन[3] नक्षत्रों से करना अनुचित होगा। परिशिष्ट ४ मे डाक्टर दफ्तरी का लिखा हुआ इस मतभेद का समर्थन छपा है। परिशिष्ट ५ मे उन पचागो की सूची है जो पचाग-सशोधन समिति की विज्ञप्ति के अनुसार सारे भारत से आये थे। परिशिष्ट ६ मे इन सब पचागो के कर्त्ताओ का वह उत्तर है जो उन्होने समिति की प्रश्नावली पाने पर भेजा था। इन उत्तरो से पता चलता है कि ३६ पचाग आधुनिक रीति से बनते है, शेष १५ प्राचीन रीति से। परिशिष्ट ७ मे उन सब व्यक्तियो के सुझावो का साराश है जिन्होने समिति को पत्र लिखने का कष्ट उठाया था (समिति की ओर से सुझाओ की

[1] कभी-कभी दिनांक में तीन दिन का अंतर पड़ सकता है, क्योकि चंद्रमा एक राशि से दूसरे में जाने में दो दिन से अधिक समय लेता है।

[2] अर्थात वसंत विषुव के साथ चलने वाले।

[3] अर्थात तारो के हिसाब से स्थिर।

माँग सब समाचार पत्रो मे छपी थी)। इसके बाद शक १८७६ से शक १८८० तक (१९५४ मार्च से १९५९ मार्च तक) के लिए आधुनिक पचाग है। इसके बाद त्यौहारो के लिए नियम विविध धर्मशास्त्रो या लोकाचारो के आधार पर बताये गये है। साथ मे विविध प्रातो के लिए छुट्टियो की सूचियाँ भी सलग्न है।

यहाँ तक की सामग्री खड **क** और **ख** मे है। इसके बाद खड **ग** है जिसे डाक्टर मेघनाथ साहा और श्री निर्मलचद्र लहिरी ने मिलकर लिखा है। इसमे विविध देशो मे प्राचीनतम समय से आधुनिक समय तक पचाग का इतिहास दिया गया है।

समिति के परामर्श निम्नलिखित है

(१) वर्ष ३६५ २४२२ दिन का हो। इसका परिणाम यह होगा कि ऋतुओ के हिसाब से महीने भविष्य मे न खिसकेगे। जिन महीनो मे जैसा ऋतु आज रहता है वैसा भविष्य मे भी बना रहेगा। जो गडबडी पड चुकी है उसे ठीक करने की चेष्टा नही की गयी है। वर्षमान का बदल जाना जनता को पता ही न चलेगा, क्योकि अतर बहुत सूक्ष्म है।

(२) भारतीय वर्ष का आरभ वसत-विषुव दिवस से (अर्थात २२ मार्च से) हो। सौर महीनो का उपयोग करने वाले प्रातो मे इससे विशेष कठिनाई न पडेगी, केवल एक वर्ष कुछ असुविधा होगी। उत्तर प्रदेश मे इन दिनो हिदू वर्ष चैत से आरभ होता है, जो आगे-पीछे हटा करता है।

(३) वर्ष के दूसरे से लेकर छठे सौर महीनो मे ३१ दिन रहे, शेष मे ३० दिन, अधिवर्षो मे सातवे महीने मे भी ३१ दिन रहेगे। भारतीय प्रथा मे अधिवर्ष उसी वर्ष होगा जब यूरोपीय वर्ष मे अधिवर्ष (लीप इयर) होगा। यह बगाल आदि मे प्रचलित प्रथा के इतना निकट है कि वहाँ कोई कठिनाई न पडेगी।

(४) दिन का आरभ अर्ध-रात्रि से माना जाय।

(५) भारत सरकार का पचाग उज्जैन के अक्षाश और ग्रिनिच से ५$\frac{1}{2}$ घटा पूर्व देशातर के लिए बना करे।

(६) शक वर्षो का प्रयोग किया जाय।

भारतीय ज्योतिष संबधी संस्कृत ग्रथ

१. वेदांग-ज्योतिष—ग्रथकार लगध महात्मा

(क) मूल ओर सस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९०६।

(ख) मूल, अँग्रेजी अनुवाद और सस्कृत टीका, शामशास्त्री, मैसूर, १९३६।

२. सूर्य-सिद्धांत—ग्रथकार अज्ञात।

(क) मूल और रगनाथ कृत सस्कृत टीका, सपादक जीवानद विद्यासागर, कलकत्ता, १८९१।

(ख) मूल और सस्कृत टीका, कपिलेश्वर चौधरी, बनारस, १९४६।

(ग) मूल और सस्कृत टीका, सीताराम झा, बनारस १९४२।

(घ) मूल और सस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, द्वितीय सस्करण, कलकत्ता १९२५।

(ङ) मूल और परमेश्वर कृत सस्कृत टीका, सपादक डाक्टर कृपाशकर शुक्ल, लखनऊ, १९५६।

(च) अँग्रेजी अनुवाद और टीका, बापूदेव शास्त्री, कलकत्ता १८६१।

(छ) अँग्रेजी अनुवाद और टीका, ई० बरजेस, पुनर्मुद्रित, कलकत्ता, १९३५

(ज) हिंदी अनुवाद और टीका, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, इलाहाबाद, १९४०।

३. आर्यभटीय—ग्रथकार आर्यभट प्रथम (जन्म ४७६ ई०)

(क) मूल और परमेश्वर कृत सस्कृत टीका, सपादक एच० कर्न, लाइडेन (हॉलैंड), १८७४।

(ख) मूल और नीलकठ कृत सस्कृत टीका, सपादक के० एस० शास्त्री, ट्रिवैण्ड्रम १९३०-३१

(ग) अँग्रेजी अनुवाद, पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९२७।

(घ) अँग्रेजी अनुवाद, डब्ल्यू० ई० क्लार्क, शिकागो, १९३०।

(ङ) हिंदी अनुवाद, उदय नारायन सिंह, इटावा, १९०६।

४. पंच-सिद्धांतिका—ग्रथकार वराहमिहिर (लगभग ५५० ई०)।

मूल, सस्कृत टीका और अँग्रेजी अनुवाद, जी० थीबो और सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८८९।

५. **ग्रहचार-निबधन**—ग्रथकार हरिदत्त ।
के० वी० शर्मा द्वारा सपादित, मद्रास, १९५४ ।

६. **महाभास्करीय**—ग्रथकार भास्कर प्रथम (६२९ ई०) ।
मूल और परमेश्वर कृत सस्कृत टीका, सपादक बी० डी० आप्टे, पूना, १९४५ ।

७. **लघुभास्करीय**—ग्रथकार भास्कर प्रथम (६२९ ई०) ।
मूल और परमेश्वर कृत सस्कृत टीका, सपादक बी० डी० आप्टे, पूना, १९४६ ।

८. **ब्रह्मस्फुट-सिद्धात**—ग्रथकार ब्रह्मगुप्त (६२८ ई०) ।
मूल और स्वय ग्रथकार कृत सस्कृत टीका, सपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९०२ ।

९. **खंडखाद्यक**—ग्रथकार ब्रह्मगुप्त (६६५ ई०) ।
(क) मूल और पृथूदक कृत सस्कृत टीका, सपादक पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९४१ ।
(ख) मूल और आमराज कृत सस्कृत टीका, सपादक बबुआ मिश्र, कलकत्ता, १९२५ ।
(ग) अग्रेजी अनुवाद, पी० सी० सेनगुप्त, कलकत्ता, १९३४ ।

१०. **शिष्यधीवृद्धिद**—ग्रथकार लल्ल ।
सुधाकर द्विवेदी द्वारा सपादित, बनारस, १८८६ ।

११. **लघुमानस**—ग्रथकार मजुल (९३२ ई०) ।
(क) मूल और परमेश्वर कृत सस्कृत टीका, सपादक बी० डी० आप्टे, १९४४ ।
(ख) अँग्रेजी अनुवाद, एन० के० मजूमदार, कलकत्ता, १९५१ ।

१२. **महासिद्धात**—ग्रथकार आर्यभट द्वितीय (लगभग ९५० ई०) ।
मूल और स्वय ग्रथकार कृत सस्कृत टीका, सपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १९१० ।

१३. **राजमृगांक**—ग्रथकार किवदती के अनुसार राजा भोज (१०४२ ई०) ।
सपादक के० माधव कृष्ण शर्मा, आद्यार, १९४० ।

१४. **सिद्धात-शेखर**—ग्रथकार श्रीपति (लगभग १०३९ ई०) ।
सपादक बबुआ मिश्र सस्कृत टीका सहित, अज्ञात मक्कि भट्ट कृत और अज्ञात सपादक कृत, कलकत्ता, १९३२, १९४७ ।

१५. **करण-प्रकाश**—ग्रथकार ब्रह्मदेव (१०९२ ई०)।
मूल और सस्कृत टीका, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९९।

१६. **भास्वती**—ग्रथकार शतानद (१०९९ ई०)।
मूल और स्वय ग्रथकार कृत सस्कृत तथा हिदी टीकाएँ, सपादक एम० पी० पाडे, बनारस, १९१७।

१७. **सिद्धात-शिरोमणि**—ग्रथकार भास्कर द्वितीय (११५० ई०)।
(क) बापू देव शास्त्री द्वारा सपादित और गणपति देव शास्त्री द्वारा सशोधित, बनारस, १९२९।
(ख) भाग १, मूल और गणेश दैवज्ञ कृत टीका, सपादक बी० डी० आप्टे, पूना, १९४३।
(ग) भाग २, अँग्रेजी अनुवाद, एल० विल्किनसन, कलकत्ता, १८६१।
(घ) हिदी अनुवाद, गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, लखनऊ, भाग १ (१९२६), भाग २ (१९११)।

१८. **करण-कुतूहल**—ग्रथकार भास्कर द्वितीय (११५० ई०)।
मूल और सुमति हर्ष कृत टीका, सपादक माधव शास्त्री, बबई, १९०१।

१९. **यंत्रराज**—ग्रथकार महेद्र सूरी।
मूल और मलयेन्दु सूरी कृत टीका, सपादक कृष्णशकर केशव वर्मा रैक्क, बंबई, १९३६।

२०. **गोलदीपिका**—ग्रथकार परमेश्वर (१४३० ई०)।
सपादक टी० गणपति शास्त्री, ट्रिवैण्ड्रम, १९१६।

२१. **राशिगोलस्फुटानीति**—ग्रथकार अच्युत।
मूल और सस्कृत टीका, के० वी० शर्मा, आद्यार, १९५५।

२२. **सिद्धात-दर्पण**—ग्रथकार नीलकठ (लगभग १५०० ई०)।
मूल तथा अँग्रेजी अनुवाद, के० वी० शर्मा, आद्यार, १९५५।

२३. **ग्रहलाघव**—ग्रथकार गणेश दैवज्ञ (१९४५ ई०)।
मूल और मल्लारि कृत, विश्वनाथ कृत तथा अपनी टीकाएँ, सुधाकर द्विवेदी, बबई, १९२५।

२४. **सिद्धात-सार्वभौम**—ग्रथकार मुनीश्वर।
सपादक, मुरलीधर ठाकुर, बनारस, १९३२, १९३५।

२५. **सिद्धांत-तत्व-विवेक**—ग्रथकार कमलाकर ।
(क) सपादक सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८८५ ।
(ख) मूल और सस्कृत टीका, भाग १, लखनऊ, १९२८, भाग २, भागलपुर, १९३५, भाग ३, बनारस, १९४१ ।

अन्य ग्रंथ

१. **गणक-तरंगिनी**—सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९२ ।

२. **बृहत्संहिता**—वराहमिहिर कृत—मूल और भट्टोत्पल कृत सस्कृत टीका सहित, सुधाकर द्विवेदी, बनारस, १८९५, १८९७ ।

३. **सिद्धात-दर्पण**—चद्रशेखर सिह कृत—योगेशचद्र राय ।

४. **भारतीय ज्योतिषशास्त्र** (मराठी मे)—शकर बालकृष्ण दीक्षित, पूना, १९३१ ।

५ **एनशेण्ट इंडियन मैथिमैटिक्स ऐंड वेध**—एल० वी० गुर्जर, पूना, १९४७ ।

६. **हिदू ऐस्ट्रॉनोमी**—जी० आर० के ।

७. **ऐस्ट्रोनॉमिकल ऑबजरवेटरीज ऑफ जयसिंह**—जी० आर० के ।

८. **दि जयपुर ऑबजरवेटरी ऐंड इट्स बिल्डर**—आर० ई० गैरट ।

९. **गाइड टु दि ऑबजरवेटरीज ऑफ जयसिंह**—जी० आर० के (१९२०) ।

१०. **अस्ट्रोनोमी, अस्ट्रोलोजी उंड मथिमटीक** (जरमन मे)—जी० थीबो ।*

***संपूर्ण सूची डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल की थीसिस से संकलित ।**

अनुक्रमणिका